

नानेशवाणी-20

बनो अभय तो पाओ जय

आचार्य श्री नानेश



राम चमक रहे भगवु समान

प्रकाशक

साधुमार्गी पब्लिकेशन

नानेशवाणी-20

बनो अभय तो पाओ जय

आचार्य श्री लालेश

प्रथम संस्करण : जनवरी, 2004, 1100 प्रतियाँ

द्वितीय संस्करण : मार्च 2012, 1100 प्रतियाँ

तृतीय संस्करण : जुलाई 2017, 1000 प्रतियाँ

चतुर्थ संस्करण : नवम्बर 2019, 1000 प्रतियाँ

मूल्य : 80/-

प्रकाशक :

साधुमार्गी पब्लिकेशन

उन्नतर्गत - श्री अखिल भास्तवर्णी साधुमार्गी जैन संघ

समता अवन, जागार्य श्री लालेश लार्ज,

श्री जैन नी.जी. कॉलेज के सामने, नोखा रोड,

जंगाईहर-बीकानेर - 334401 (राज.) दूरभाष : 0151-2270261

visit us : www.shriabsjainsangh.com

e-mail : absjsbknl@yahoo.co.in

आवरण सज्जा व मुद्रक :

तिलोक प्रिंटिंग प्रेस

भोहता चौक, बीकानेर - 01 भो. 09314962474/75

प्रकाशकीय

हुक्मगांठ के अष्टनाचार्य चुगायुरुष समता विभूति आचार्यश्री नानेश्वर विश्व की उन विश्व विभूतियों में से एक रहे जिन्होंने अपने कर्तृत्व एवं व्यक्तित्व से सनात को सम्बन्ध जीवन जीने की वह राह दिखायी जिस पर चलकर भव्य जात्माएँ आपने बन्ने का आय कर मोक्ष पथ की अधिकारिगी बन सकती है। यद्यपि आचार्यश्री नानेश्वर ने नैतिक व्यक्तित्व का अवसान हो चुका है लेकिन उनके द्वारा रचित साहित्य के रूप में इगारे पास एक बहुत बड़ी निधि उपलब्ध है। निश्चित ही आचार्यश्री नानेश्वर ने अपने विचारों से सम्पूर्ण समाज में जन चेतना और जो रदिमाँ प्रवाहित की हैं वे युगों-युगों तक जनमानस का पथ प्रदर्शित करती रहेंगी।

आचार्यश्री नानेश्वर का वह दिव्य साहित्य जन-जन तक पहुँचे एवं सर्व सुलभ हो इसी उद्देश्य से प्रेरित होकर श्री अखिल भानुतबर्धी शाशुमार्गी जैन संघ ने इन अनन्तेल साहित्यिक धरोहर को नानेश्वारी पुस्तक मूर्त्तक के अन्तर्गत प्रकाशित करने का निर्णय लिया। आज उन्हीं सुप्रयासों का सुफल है कि नानेश्वाराणी भाग 1 से 52 तक प्रकाशित हो सकी है।

समय परिवर्तन के साथ संघ ने नानेश्वाराणी के प्रकाशन को नवीन स्वरूप देने का निर्णय लिया। उसी के अनुरूप उपरोक्त पुस्तक को पूर्व की अपेक्षा और अधिक श्रेष्ठ स्वरूप देने का प्रयास किया गया है ताकि इस पुस्तक की महत्ता के साथ आवरण सज्जा में और अधिक निखार आ सके। इसी क्रम में नानेश्वाराणी भाग - 20 'बनो अभय तो पाओ जय' का चतुर्थ संस्करण आपके हाथों में है।

मैं संघ एवं अपनी ओर से इस पुस्तक के प्रकाशन में प्रत्यक्ष एवं परोक्ष सहयोगी बने समर्पत आत्मीयजनों का जगार प्रकट किये बिना नहीं रह सकता जिनके सहयोग से ही यह भागीरथी कार्य सम्पन्न हो सका। सम्पादन में आचार्य-प्रवर के नूल भावों को सुगक्षित रखने का पूर्ण प्रयास किया गया है। अज्ञानवश यदि कोई बुद्धि रह नहीं हो तो उनके लिए हम हृदय से क्षमाप्राप्ति हैं।

संयोजक
साशुमार्गी पब्लिकेशन

अहोभाव

संघ के प्रति अहो भाव

हे पितृ तुल्य संघ! हे आश्रवदाता संघ!

संसार के प्रत्येक जीव की रक्षा के लिए सतत प्रयत्नरत संघ। तुम्हारी इनील छाँव तले हम अपने परिवार के साथ तप-त्याग से युक्त आध्यात्मिक, सुखद जीवन जी रहे हैं। तुम्हारे ही आश्रव में रहकर हमने अपने नन्हे चरणों को आध्यात्मिकता की दिशा में बढ़ाया है। तुमने ही हमें आत्मा के अन्वेषण हेतु प्रेरित किया। तुम्हारी ही प्रेरणा से प्रेरित होकर हमने अपने जीवन को सन्मार्ग की ओर बढ़ाया है। इस हेतु हम संघ का अभिवादन करते हैं।

संघ ने हम अकिञ्चन को इस पुस्तक ‘बनो अभय तो पाओ जय’ नानेशबाणी भाग - 20 के माध्यम से सेवा का अनुपम अवसर प्रदान किया। इस हेतु हम अपने आपको सौभाग्यशाली समझते हैं। अन्तर्भाविना से संघ का आभार व्यक्त करते हुए यह विड्वास करते हैं कि भविष्य में भी परम उपकारी श्री संघ शायन हमें सेवा का अवसर प्रदान करता रहेगा।

अर्थ सहयोगी
श्रीमान् राजकरण बरड़िया
सरदारशहर/अहमदाबाद

अनुक्रमणिका

जीवन का प्रथम रूत्र	:	7
प्रार्थना याचना नहीं है	:	17
समता का अमृत	:	26
आत्मघात का सही अर्थ	:	36
आदर्श और सहयोग का आश्रय	:	44
अमृतपान या विषपान	:	53
कर्मयुद्ध में विजय	:	62
काम—जय से आत्म—जय	:	74
चिन्ता की धारा में	:	85
अनुकरण: अंधे और जागृत	:	97
आगमों के गूढ़ रहरय	:	107
तार्क, श्रद्धा और विश्वास का संकट	:	118
आत्मा और शरीर का गति—भेद	:	130
आत्मशक्ति का मूल	:	141
अहिंसा की आराधना	:	153
रोवा और उराकी गहनता	:	164
बनो अभय तो पाओ जय	:	174
परिणामों का परिणमन	:	187
रुचि और अरुचि के क्षेत्र	:	199
आनन्द के प्रवाह में	:	210
चरम आवर्त्त के लक्ष्य की ओर	:	221
कर्तव्यनिष्ठा की भावना	:	232
साधु से परिचय, पर कैसा ?	:	244
सहयोगी से भोगी जीवन क्यों ?	:	257
अपरियुक्त की आवाज	:	269
व्यक्ति, रामाज और रामन्वय	:	281
संवत्सरी की हार्दिकता	:	292

जीवन का प्रथम सूत्र

“ अभिनन्दन जिन दर्शन तरसिये.....”

ये अभिनन्दन प्रभु की प्रार्थना की पंक्तियां हैं। नंगलाचरण क-
उच्चारण एक बाह्य रूप है, किन्तु इन पंक्तियों के भीतर जो गूढ़ार्थ छिप-
हुआ है, उसे ही प्रकटित एवं अन्वेषित करने के लिये इन पंक्तियों क-
ब रागार उच्चारण समीक्षा कहलायेगा। यही उच्चारण जब चिन्तन
की सरणि के माध्यम से हृदय की गहराई में पैलता है तो वह गूढ़ार्थ
रपष्टतर होता। यला जाता है और आपा जागृति के पश्च पर अग्ररार
होती है।

वह गूढ़ार्थ क्या है, इसे गम्भीर॥पूर्वक समझने की आवश्यकता
है। भगवद्‌स्वरूप के दर्शन करने की जब अन्तर में प्रेरणा॥ पैदा होती है
तो आत्मा की शक्ति अपने शुद्ध चैतन्य स्वरूप को जानने के लिये भी
छटपटाने लगती है। उसी छटपट हट के भव को जब साधक अपने
वचन के गाथ्या रो बाहर प्रकट करता है तो वही प्रकटीकरण एक
प्रकार रो प्रार्थना का रूप बन जाता है। अतः प्रार्थना का गूढ़ार्थ यही
होता है कि अन्तरात्मा को झकझेर कर और भाव विभोर बना कर
गेद विज्ञान को दिशा में आगे बढ़ा देता है। आत्मा अपनी वर्तमान
पतानावस्था रो आन्दोलित होकर भगवत्‌स्वरूप की प्राप्ति के लिये
प्रयासारत बने—यह प्रार्थना की गूल प्रेरणा होती है।

भेद-विज्ञान की महत्ता

यह राय है कि आरिक-शक्ति के साथी रूप के जग ये बिना उसके आनंद की शक्ति का तेज और ज्ञान का इलाश प्रस्फुटित नहीं होता। इसके बिना भेद-विज्ञान की गहनता भी प्रकट नहीं हो सकती। भेद-विज्ञान किसे कहें? आत्मा को यथारूप व्यवस्थित ज्ञान हो जए तो उसके द्वारा ज्ञान गें शेद-विज्ञान भी निहित होता है। शेद का अर्थ है—वर्त्तगान आग—रवरूप एवं शूद्ध परगात्मा—रवरूप के बीच का भेद। उसका विज्ञान होता है इस भेद के कारण क्या है, इस भेद को कैसे धटाया और मिटाया ज सकता है? सारा भेद समाप्त हो जाता है तो वह दिव्य स्वरूप कैसा होता है अदि विशिष्ट विषयों पर सम्पूर्ण ज्ञान हो, गहरी आस्था हो तो कर्मण्यता की लौ लग जाए।

कई लोग कहने को कह देते हैं कि उन्हें भेद-विज्ञान ला रपछ ज्ञान हो गया है और वे जानते हैं कि जाब आगा आपने लो शशीर से सर्वथा मिन्न समझ कर कर्मरहित एवं विषयकषाय रहित बने और वे यह भी देख रहे हों कि आत्मा सिद्ध परमात्मा के पुल्य स्वरूप ग्रहण कर रही है तो इस प्रकार का कथन आपेक्षिक दृष्टि से माना जा सकता है, क्योंकि या तो वह शेद-विज्ञान की गूढ़ दृष्टि के हिल्कुल नजादीक पहुंचा हुआ गाना जाए अथवा यदि वह राघवा वर्त्तगान पर्याय में एकान् रूप रो कथन कर रहा है तो वह भेद-विज्ञान के बदले भ्रम विज्ञान में चल रहा है ऐसा कहना चाहिए।

भेद-विज्ञान भ्रम में तो नहीं ?

आत्मा और परगात्मा के बीच रहे हुए भेद को धर्मार्थ धृष्टि से समझाना और उसे मिटाने की विद्य की सम्पूर्ण जानकारी करना ही शेद-विज्ञान का सार है। आत्मा वर्तमान पर्याय में मनुष्य या अन्य प्राणी के शरीरिक चौले में रहते हुए भी योग्यता की दृष्टि से सिद्धत्त्व की धारिणी होती है— परगात्मा का रवरूप गुण रूप रो उर्गें विद्यान रहता है। किन्तु उसके राथ उसकी वर्त्तगान तथ्यात्मक स्थिति यह होती है कि वर्तमान पर्याय में वह स्वरूप अप्रलट है कर्ने

के अवरण से आक्षयिता है। उन कर्मों के साथ संलग्नता होने से ही आत्मा शरीर के साथ जु़़ती है और इस शरीर से जन्मकित शुश्रा या अशुश्रा विचारों व कार्यों के प्रवाह में रहती हुई अन्य कर्मों का उपार्जन भी करती रहती है।

अर्थात् आत्मा के मूल शुद्ध स्वरूप पर दृष्टि रखते हुए भी वर्तमान पर्याय को आँखों से ओझल नहीं कर सकते हैं। प्राणी विज्ञान के नाम पर इस स्थिति को ज्ञुठला नहीं सकते हैं। वस्तुस्थिति को वस्तुस्थिति के रूप में लेना ही होगा। वर्तमान में शरीर पर्याय में रहते हुए आला शिद्धत्व पर्याय के तुल्य अपने आपको रावथा प्रकट रूप में नहीं बना राकती है, क्योंकि वह अभी शरीर के धेरे में हन्दी हुई है। राधना के बल से जब कर्मों को जंजीर को तोड़ देंगे और शरीर के बंधन से मुक्ति पा लेंगे तभी परमत्म स्वरूप का उद्भव हो सकेगा।

अतः शेद-विज्ञान लो यदि सही रूप से नहीं सनज्ञा जाए तो उसमें लिंगिध भ्रमों के उत्पन्न होने की संदैव आशंका बनी रहती है। भेद-विज्ञान में भ्रा धुरा गय तो विज्ञान अज्ञान का रूप ले लेगा।

जीवन का प्रथम सूत्र

जीवन का प्रथम रूप इर दृष्टि रो गह गाना जाना चाहिये कि इस भेद-विज्ञान को भ्रम रहेता बना कर जानने, मानने और आजमाने के लिये अन्तरात्मा में निर्णायिक शक्ति का वैकास होना चाहिये मैंने जो सूत्र बताया है कि—

“सम्यक् निर्णायिकं, समतामयञ्च यत् तज्जीवनम्।”

इसमें “सम्यक् निर्णायिकम्” को इसी कारण पहले स्थान पर लिया गया है कि यदि रिथिति को यथार्थ दृष्टि रो रागझ कर उरगे सही निर्णय ले सकने की क्षमता का विकास नहीं हो सकता तो आगे की समस्या प्रगति ही अवरुद्ध हो जाएगी। निर्णायिक शक्ति नहीं जगी तो जीवन को समतामय बनाने की स्थिति भी पैदा नहीं हो सकेगी।

सम्यक् रूप से निर्णय करने की शक्ति को जागृत करना एवं पूष्ट बनाना, इसी कारण जीवन का प्रथम रूप गाना गया है। प्रथम रूप

दृढ़ता से पकड़ लिया तो फिर अन्य सून्हों को पकड़ने में अधिक कठिनाई का सामना नहीं करना पड़ेगा। इसी के विपरीत यदि पहली ही सीढ़ी पर नहीं चढ़ सके तो ऊपर की सीढ़ियों पर चढ़ना तथा उंचाई तक पहुंचना कौरों राम्र हो राकेगा॥ २

निर्णायिक शक्ति कैसी और किसके लिये ?

जीवन ले सत्त्व-मार्ग के दर्शन हेतु यह निर्णायिक शक्ति गिरध्यात्म तथा भ्रांति रो रहित हेत्तर राम्यकर्य नै छलनी याहिये और इस प्रकार के बाद यह इति इस प्रकार रपष्टतर एवं पुष्टतर बनती जानी याहिये कि विकास की गति में यह प्रकाशस्त्राभ का काम देती रहे। पथ पर जब कहीं अधेरा नहीं रहेगा तो यह भय भी नहीं रहेगा कि उत्साह से आगे बढ़ने का इच्छुक पथिक कहीं भी मार्ग से भटक राकेगा। ऐसी निर्णायिक शक्ति बन जाती है तो उस आत्मा के लिये भ्रम के मायाजाल में कंसने की आशंका नहीं रहती है, वहींकि जहाँ कहीं भी विपदा आई संकट सामने हुआ तो वह निर्णायिक शक्ति स्पष्ट निर्णय लेकर विकास की गति को पुष्ट और तीव्र बना देती है।

यह निर्णायिक शक्ति लिसले लिये है— यह भी उमझ लेना चाहिए। ऐसी निर्णायिक शक्ति व्यक्ति और रागाज दोनों के लिये शुभ परिणाम लाने वाली होगी। व्यक्ति वाहे सांसारिक कार्यों में लग। हो या कि आत्मिक साधना में यदि उसके वास सम्बन्ध निर्णायिक शक्ति है तो वह हर मोड़ पर सदाशययुक्त गिर्षय ले सकेगा। ऐसे निर्णय अवश्य ही सामाजिक वातावरण जर भी अपना श्रेयस्कर प्रणाल छोड़े बिना नहीं रहेंगे। अतः यह कहा जा सकता है कि यदि अन्तरात्मा गैं राहीं निर्णय ले राकेने की क्षमता एवं शक्ति का विकारा होता है तो वह एक प्रकार से समूये प्राणी समाज ले हित में ही होगा।

निर्णायिक शक्ति का सर्वोच्च ध्येय

एक राष्ट्र की आत्मा के अन्दर जगने वाली यह निर्णायिक शक्ति राबरो उन्नर रवय उत्तमा के उत्तर विकारा गैं निर्णयित होनी

वाहिये जो सभे परमात्म स्वरूप की उपलब्धि की ओर अग्रगानी बनाता है। यही निर्णायक शक्ति क सर्वोच्च ध्येय माना जाना चाहिये।

रार्थोच्च ध्येय के लिये ही रिद्ध प्रश्न की प्रार्थना की जाती है कि जिरा दिव्य रवरूप को उन्होंने प्राप्त किया है, उरी की उपलब्धि के लिये हम अपनी निर्णायक बुद्धि ले माध्यम से सत्य साधना और सम्पादन साधना के पथ पर प्रगति करें। यह ध्येय भी स्पष्ट और पुष्ट हो सकता है, जब प्रार्थना की तल्लीगता में सिद्ध स्वरूप ले अपने अन्तःकरण में समाहित किया जाए और उस स्वरूप को अपनी भावना एवं राधना का रार्थोच्च ध्येय बनाया जाए।

केवल ज्ञान, केवल दर्शन रूपी उच्छ्वलतग आलोल जिनके अन्दर जाग्रत्त्य रूप से प्रकटित हो दुक् है। ऐसे सिद्ध परमात्मा की अवस्था को वर्तमान जीवन में साध्य बना कर जब उसका नित्य—प्रति चिन्तन किया जाएगा, साधना एवं साधन की दृष्टि से इसी जीवन को तद हेतु कार्यसत बनाया जाएगा तथा जीवन ले राम्यक् निर्णायक य सामराज्य हनाया जाएगा तो रार्थोच्च ध्येय जी पिशा गें अग्ररार भी बना जा सकेगा।

भ्रान्ति से दूर रहें !

विचारणा की इन दोनों स्थितियों को ध्यान में लेने जी परन वश्यकता है ताकि भेद—विज्ञान की जानकारी लेने में प्रारम्भ में ही कहीं भ्रान्तियों का प्रवेश न हो जए। भ्रान्ति से दूर रहने के लिए मूल स्थिति की अवधारणा सही हो जानी चाहिये।

वैसे सीधा—सा सत्य है कि आत्म के वर्तमान पर्याय में जी परन्तु स्वरूप को प्राप्त करने की योग्यता रही हुई है किन्तु कर्मों के आवरण ने उस योग्यता को ढक रखा है—इस कारण उस आवरण को छेद लालने पर वह योग्यता प्रकट की जा सकती है और उसका उच्चतम विकास साधा जा सकता है। जैसे एक सड़क है उसकी दृढ़ योग्यता है कि उस पर कोई भी वाहन चल कर एक स्थान से दूसरे स्थान पर निर्बाध रूप से पहुँच सकता है, लेकिन कल्पना करें कि उसे

पर एक जगह पहाड़ की बहानों का समूह आ गिरा है और उसने उस सड़क को रोक दिया है, जिससे कि वाहन में एक स्थान से दूसरे स्थान तक पहुंचाने की योग्यता होने के बावजूद उस क्षवरोद्ध ने उसकी उस योग्यता को आयोग्य बना दिया है परन्तु उस आवरोध को छाने पर फिर रो वैरी ही योग्यता बन जाती है। इरी ४ कार्य कर्म मैल से मालिन आत्मा भी साधना के जल से धुल कर सिद्धात्मा की तरह ही प्रकशमान बन सकती है।

अब कोई यह कहे कि सिद्धात्मा के तुल्य स्थिति वर्तमान में भी आत्मा में आ गई है तो ऐरा॥ कथन उवश्य ही भान्ति—पूलक होगा॥। इस कारण इस भान्ति रो दूर रह कर शांति के राथ यह छिन्नन करना याहिए कि हमारा वर्तमान स्वरूप मूल द्वाष्टि से एवं योग्यता की द्वाष्टि से भले ही परमात्म स्वरूप के तुल्य हो किन्तु इस शरीर संलग्न पर्याय में जब तक निर्णय एवं पुरुषार्थ की शक्तियाँ प्रबल बन कर राक्रिय नहीं बनेगी, तब तक न तो बरत्—रवरूप का यथार्थ ज्ञान एवं निर्णय ही प्राप्त हो सकेगा और न ही पुरुषार्थ की कर्महरा मिलेगी।

भ्रम कटेगा, भेद-विज्ञान फलेगा

भेद-विज्ञान जिसना भ्रम हीन एवं भ्राति—रहित बनेगा, उसनी ही निर्णायक शक्ति सन्तुलित होकर भेद विज्ञान लै क्रियन्विति लो सफलता की ओर ले चलेगी। भ्रम कटेगा तो गेद विज्ञान फलेगा ही उसका यह फलना निर्णायिल एवं कर्गंठ शक्तियों पर आधारित रहेगा। इनका लार्य—रांचालन पररपर राम्भन्धित एवं पररपर अनुपूरुक हेगा। निर्णायिक शक्ति के बल से पुरुषार्थ वृद्धि को सही दिशा मिलेगी तो ज्यों ज्यों पुरुषार्थ वृद्धि सफलता की ओर आगे बढ़ेगी—उससे चारों ओर समता का वातावरण बनने लगेगा और उस प्रगाव से निर्णायक शक्ति भी सुस्पष्ट और सुषुद्ध होती चली जाएगी।

ये दोनों शक्तियाँ जब इस तरह तालगोल बिठा कर रागूची प्रगति के हित में काग करेंगी तो भ्रातियाँ रखत ही नष्ट होती चली जाएंगी एवं भेद विज्ञान के सैद्ध निक एवं व्यावहारिक दोनों पक्ष

प्रभावशाली बन सकेंगे। आत्मा की अनास्त्रम भावनाओं में जह परन्तु—स्वरूप को पा लेने की ललक तीव्रता से जग उठेगी, तर बर्तमान जीवन के सभी पहलू ल्याग और बलिदान से गर उतेंगे तथा रवार्थ ले प्रबल शब्द रो लरो गुक्कि गिल राकेगी। रवार्थ धटता है तो विषय—कषाय भी कहती है तथा इसके साथ ही जीवन ने राहजता और निर्मलता ला उदय होता है। यही सहजता जब अप्ने विकास के अन्तिम बिन्दु तक पहुँच जाती है तो उसे ही सिद्ध की जान्ना दी जाती है। यह राहजता शरीर—राहित आत्मा के रागरत्न बन्धनों रो गृक्त होने पर ही प्राप्त हो राकती है।

निर्णयशून्य ज्ञान वृथा है

ज्ञान जानकारी है तथा राम्यक् ज्ञन राही जानकारी है। लेकिन उसके अनुसार अपने कार्यों को ढालना पग पर लिये जाने वाले स्वस्थ निर्णयों के फलस्वरूप ही संव बन सकता है। यदि निर्णय ले राकने की क्षमता नहीं है तो कर्णठता के पांच उठ नहीं चाकेंगे और बिना कर्गठता के भला ज्ञान का गोल ही कितना माना जा सकता है ?

सामान्य समस्याएं भी जब सामने आती हैं तो उधिकांश व्यक्ति अधिकांश अवसरों पर सही निर्णय लेने में असमर्थ रहते हैं। ऐसी अवस्था में सामान्य ज्ञान के लिये भी कहा जाता है कि यह वृथा है किन्तु बहाँ आना के विकार। ५५ राम अधिक लीवन के शुद्धार ली तृष्ण रामरथा हो तो रोचिये कि उन पर कितनी गंभीरता रो विचार करके सम्यक् निर्णय लेने की आवश्यकता होती है। सफल यस्तु स्वरूप का जब तक अन्तर में यथार्थ निर्णय नहीं उपजे तो परगात्मा के दर्शन एवं उनके दिव्य रखस्त पर गार्विक विन्नत की वृत्ति केरा चुम्बक बन राकती है ? प्रार्थना की जाती है और आगर उसला बाहरी धृष्टि से ही आप उत्पादण करके रह गये, उसके गूँडार्थ में आप विनानशोल नहीं बने तो भेद विज्ञान आपके समझ स्पष्ट कैसे हो सकत है और कैसे उस विज्ञान में पारंगत बनाने तथा सम्भगा में निरस होने ला आप निर्णय ले सकते हैं ?

व स्वाविकता तो यह है कि ज्ञानार्जन करने में भी निर्णय करने की शक्ति का अस्तित्व होना चाहिये। ज्ञान के नाम से जितने तरह की जानकारियाँ सुनने और समझने को मिलती हैं, उन्हें भी सत्य और गिरिध्या का निर्णय करने की योग्यता का होना अनिवार्य है।

ज्ञानार्जन और निर्णय

ज्ञानार्जन में निर्णय की महता एक उदाहरण से स्पष्ट हो जाए। समुच्चय रूप में किसी ने कह दिया कि आत्मा एक है। यह कथन सून लिया गया किन्तु इस कथन के अन्दर निर्णय नहीं है। आत्मा सामान्य दर्शि और उपशोगी लक्षण की परिणामा से सात नयों में से एक नये की अपेक्षा रो एक है। इस कथन पर भी जब तक रातों-न्यों की रामी अपेक्षाओं से येचार नहीं करें तब तक व्यथार्थ दराताल पर यह निर्णायक नहीं बनता है। यदि एक ही आत्मा है तो पिछरे ये भिन्न भिन्न रूप क्यों? यदि एक ही आत्मा है तो एक ला ज्ञान होने पर रात्रि आलाओं का ज्ञान क्यों नहीं हो जाता? तब तक रोग रो रामी शारीरिकी आत्माएं रोगी हो जाएंगी और एक की गृह्य से सभी की मृत्यु एक साथ हो जाएगी। लोकेन यह प्रत्यक्ष स्थिरि नहीं है। 'एष अ या' यह शास्त्र वाक्य है और सत्य है किन्तु इस वाक्य को भी सभी अपेक्षाओं से समझना पड़ेगा।

नयदाद, सापेक्षवाद, स्पाद्धाद या अनेकान्तवाद की जो जै-दर्शन की गौलिक विचारणा है उत्तराके गूल में निर्णायक शक्ति ली ही गहत्ता छिपी दृढ़ है। ज्यों—ज्यों ज्ञानार्जन किया जाएगा, त्यों—त्यों सत्य के विविध रूप भी सामने आएंगे और असत्य के हजारों रूप भी होंगे। इन सब के बीच निर्णायक शर्ति—न सिर्क सत्य के अन्यान्य रूपों की परत रहेगी बल्कि उन रूपों में सामंजस्य बना कर थोड़—विज्ञान को सम्बन्ध रख से हृदयगन भी करारेगी। मिथ्या से दूर रहना और सत्य को धारण करना—ज्ञानार्जन की अवश्या में यह राम्यक् निर्णायक—शर्ति, रो ही बन पड़ेगा।

भेद विज्ञान, साधना और निर्णय

आत्मा एक है— इस के बाब रामी अपेक्षाओं रो रानाहाने जा यज्ञ होग। तो भेद-विज्ञान की गहराइयां रागक आएंगी। आत्मा जी निर्णायक शक्ति एक अपेक्षा से यह कहेगी कि अपनी आत्मा और सिद्ध की आत्मा मूल स्वरूप से एक है किन्तु अभी जो पर्याय भेद है, उरो अपनी राधना के बल रो द्वारा करना होगा। ज्ञानर्जुन की अवश्था गें रामाकृष्ण निर्णय रो भेद-विज्ञान रपष्ट होगा तो राधना की अवश्था गें रामाकृष्ण निर्णय से पुरुषार्थ एवं त्याग की भावना को बल मिलेगा।

आत्मा गें निर्णायक शक्ति की अभिव्यक्ति होने पर यह रागङ्गा जा सकेग कि आत्माएं जितनी हैं, अत्मिक भाव की दृष्टि से एक है लेकिन उन सबका स्वतंत्र अस्तित्व अलग अलग है। यह आपने—आपने रखरूप के रूप गें रही दृद्ध हैं। रामी के भिन्न-भिन्न क्रग हैं—भिन्न—भिन्नानुरुपार्थी हैं तथा विकास के भिन्न-भिन्न तरीकें हैं इन दृष्टियों के साथ वर्तमान मानव जीवन की पर्याय में रहने वाले आप वैदान्य स्वरूप जब भेद विज्ञान को गमीरतापूर्वक सनझाने का यत्न करेंगे और यह यत्न शी योग्यता की दृष्टि से आपने आपलो सिद्ध—स्वरूप समझ कर करेंगे, तब आपको अनुशब्द होगा कि सिद्ध स्वरूप की वारतविकता तक पहुंचने के लिये आपने गन, वयन और कर्म को विचा रूप गें छालने गें विचा उकार के निर्णय लेने होंगे ?

निर्णय के बाद तन्मयता

ज्ञान और साधना के मार्ग पर स्वस्थ निर्णय ले लेने के उपरान्त तन्मयता की आवश्यकता होगी। सामान्य स्थिति में भेद-विज्ञान नहीं आता— निर्णायक स्थिति में आता है और उसके बाद नहरी आस्था का जो फैलाव होगा— उससे तन्मयता का विकास हो राकेगा। कवि की पंडियों गें यही रांकेता है—

मत मतभेदे रे जो जई पूछिये सहु आपे अहमेव।

सामान्ये करि दर्शन दोहिलुं निर्णय सकल विशेष ॥

मरम्मेदों के बीच सभी अपने अपने अहं को थोपना चाहते हैं। अतः निर्णायक शक्ति से ही उन सब के बीच उपना सही मार्ग सुसिधर किया जा सकता है। इस स्थिरता से ही तन्मयता की स्थिति बनती है और चारों ओर जो अन्तियां, आज्ञान एवं अशान्त दशाएं धेरा छाले बनी रहती हैं— उनसे पूरे तौर पर छुटकारा पाया जा सकता है।

सम्यक्‌निर्णय की विजय सुनिश्चित

अपने अनार्मन ने इस स्त्र्य की गांठ बांध लीजिए कि जिस आत्मा में सम्यक्‌निर्णय ले सकने की क्षमता पैदा हो गई, उसली सांसारिक और धार्मिक दोनों क्षेत्रों ने विजय सुनिश्चित है। यह विजय कोई शरत्रारत्रों और हिंसा के बल पर पाई जाने वाली विजय नहीं, बल्कि आत्मारांयण, कर्मजय एवं त्याग के धरातल पर प्राप्त होने वाली विजय होगी। पहले अपने मन को जीतना होगा, निर्णायक बनाना होगा और समता की श्रेणियों में उसे ढालना होगा, तब जीवन में उगरने वाली विजय अपनी रनेहगयी प्रेरणा से रारे रांगार को प्रभावित करेगी।

गौंथली रांकेत देना चाहता हूं कि अपने जीवन में प्रत्येक कार्य के उन्पर इसी जीवन का पहला रूप्र गान कर निर्णायक पद्धति का टिकास कीजिये, जो अपनी चिन्तन की भूमिका पर होगा और इस पद्धति को शाँ: शाँ: शक्ति रूप में बदल कर गेद विज्ञान के राथ प्रभु की प्रार्थना कीजिये।



प्रार्थना याचना नहीं है

“दर्शन दुर्लभ देव.....”

यह परमात्मा की प्रार्थना है और यहाँ तो परमात्मा का नाम ही अग्निगन्दन है। अग्निगन्दन वही, जो अग्निगन्दन करने के योग्य हो और रात्रि यह है कि प्रभु का अभिनन्दन जो र दैव रो ही किया जाए। रहा है। जिन्होंने उपनी आत्माज्योति को पूर्ण रूप से प्रज्वलित करली, वे पस्तुतः अग्निगन्दनोय बन ही गये। किन्तु जो आत्माएं अपने जीवन में अगी तक उन दिव्य गुणों को प्रकट नहीं कर सकी हैं, उन अत्माओं के लिये प्रभु के अभिनन्दन रहस्य, उनकी प्रार्थना एक अति गहरापूर्ण अनुष्ठान होता है।

प्रार्थना एक कड़ी है

कड़ी दो वीजों को जोड़ती है और इस राह प्रार्थना भी अपने सब्वे अर्थों में दो तत्वों को जोड़ने वाली कड़ी होती है। ये दो तत्त्व हैं— आत्म—तत्त्व और परमात्म—तत्त्व। असल में इन दोनों में तत्त्व—देव नहीं हैं, केवल पर्याय नेद ही उरे लह रकते हैं। दोनों दात्व मूल रूप में १८ ही हैं। आत्म ही जब अपने जमरा कर्म मैल को धो डालती है, तब वही परमात्मा बन जाती है। एक दात्व मैला है तो दूसरा तत्त्व स्वच्छ है। एक दर्पण होता है, धीरे—धीरे उस पर मैल जमता जाता है। कभी उस पर इतना मैल होता है कि आकृति दिखाई तो देती है किन्तु कुछ धुंधली दिखाई देती है और कभी इतना भी गैल जाग राकता है कि उस के सामने जने पर उसमें तानिक भी प्रतिक्षया नहीं दिखाई दे और जब वह पूर्णतः स्वच्छ

होता है तो समव है स्वयं आकृति से भी अधिक स्वत्त प्रति छाया उसमें दिखाई दे। यही रूपक आत्मा के साथ घटया जा सकता है। कर्म—मैल के अन्तर से आत्मा के मैले और स्वच्छ स्वरूप में अन्तर होता है और याब वह पूर्णतः स्वच्छ हो जाता है तो वह रवरूप परमात्मा—रवरूप गें ढल जाता है।

प्रार्थना मूलिन स्वरूपी आत्मा को स्वच्छ स्वरूपी परमात्मा के दिव्यस्वरूप की झलक दिखा कर मूलिन को स्वच्छ बनने की दिशा में अद्वार होने के लिये प्रेरित करती है और इस प्रकार पर्याय—शेद ली दृष्टि रो पृथक् दो पार्वों को पररपर जोड़ने के प्रयार करती है। यानी आत्मा अपनी गालेनना पोकर प्रार्थना के गाथ्यग रो परमात्मा—रवरूप के दर्शन लेती है। यही कही प्रार्थना की है।

क्या प्रार्थना याचना है ?

प्रार्थना का सामान्य अर्थ यावना के रूप में लिया जाता है। याचना का अर्थ होता है मांगना—जैसे कि एक शिखारी मांगता है। रोटी के एक दुकड़े के लिये रहां से वहां वह हाथ फैलाता छिरता है। भिखारी का हाथ ऐरा होता है, जिसने अनार—दृष्टि नहीं होती है। वह द तार के सामने भी हाथ फैलाता है और कंजूस के सामने भी। अब की अतिरुष्णा से शिलारी में यह विचार नहीं उठता कि वह कैसके सामने हाथ फैलाए और किसके सामने नहीं फैलाए ? किरी भी तृष्णा के गशीमूत होकर जो हाथ फैलाया जाता है उरे याचना कहा जा राकता है किन्तु प्रभु के दिव्य रवरूप का वित्रण करने वाली जो प्रार्थना है, उसमें और यावना में दिन रात का अन्दार है।

इस कारण अपने सामान्य अर्थ में भी प्रार्थना को यावना कहना गलत होगा। जहां किसी भी तृष्णा की लालसा में कैसी भी याचना जीवन की दृष्टि से अंधकारपूर्ण होती है, वहां प्रार्थना आत्मा के लिये जागृति—सूखक बन कर प्रकाशमान रूप द्वारा लिये रहती है। याचना गें सुख रूप रो लेने—देने की रेति होती है—दात र कुछ देत है और यावक कुछ लेता है। यह अलग बात है कि दातार कंजूस मिल जाए

और माँगने पर भी कुछ नहीं दे, किन्तु यावक को लेने की भावना तो होती ही है। किन्तु प्रार्थना में लेन—देन का कोई वास्ता नहीं होता।

परमात्मा से क्या भौतिक पदार्थ मार्गे ?

जो प्रार्थन के रूपरूप को राही द्वष्टि रो नहीं रगझते हैं, वे प्रथन जो भी यावना का रूप ही देते हैं और यह मानते हैं कि प्रार्थना के माध्यम से देवी देवताओं और ईश्वर से कुछ मांगन ली जाए। किन्तु सही स्थिति यह है कि जब आत्मा को परमात्मा स्थिति प्राप्त होती है तो उसका रंगार और रंगार के रागरत्न भौतिक पदार्थों से कोई भी संबंध नहीं रहता है। वह आत्मा, परमात्मा बन कर एकदम ज्योरि रूपरूप बन जाती है। अब जिसका सम्बन्ध किसी भी रूप में भौतिक पदार्थों से नहीं रह गया हो जैसे कोई उसको भौतिक पदार्थ की याचना—प्रार्थना करे तो क्या वह कामयाब होगी ? जिस के पास जो वीज है ही नहीं, वह उसे किसी को देगा कैसे ?

अब यदि परमात्मा से प्रार्थना के जरिए भौतिक पदार्थों की उपलब्धि की कामना की जाती है तो निश्चित रूप रो यह गानिये कि प्रथना करने वाले ने अभी तक परगाता के रात्य-रवरूप जा उंकन ही नहीं केदा है। विश्व गे भौतिक पदार्थों की पूर्ति के अन्य अनेक साधन हो सकते हैं किन्तु परमात्मा निश्वय ही ऐसी पूर्ति के कठई साधन नहीं हैं। प्रमुख रो भौतिक तत्त्वों की याचना उनके अनुरूप नहीं है।

तब उनसे क्या याचना करें ?

जह परगाता रो भौतिक पदार्थों की याचना उनके अनुरूप नहीं है, तब यह विचार उठना रवाभाविक है कि फिर कौन-री याचना उनके अनुरूप है ?

जहाँ पक शक्ति और समृद्धि का प्रश्न है, परमात्मा उपने समझ स्वरूप से परिपूर्ण हैं और अनन्त-शक्ति के स्तामी बन कर सरे विश्व का अवलोकन कर रहे हैं। वे किसी भी रूप में किंचित् मात्र भी ही-

नहीं है, फिर भी एक अन्य स्थिति उनके साथ है और वह यह है कि उनका संसार से कोई संबंध नहीं है—भौतिकता से कोई जाता नहीं है। वे गिरपेण्डा शाव से अपने में ही स्थित होते हैं। अतः जब भी कोई याचना उनसे करने का भाव पैद हो तो इस विद्यति को ध्यान में रख कर पैरी याचना करनी चाहिये।

यह स्पष्ट हो गया कि उनसे भौतिक पदार्थों की भावना नहीं करनी चाहिये, क्योंकि वे उनकी पूर्ति नहीं करते। लेकिन यिन गी प्रश्न खड़ा है कि तब उनके अनुरूप उनसे किस बात ली याचना की जाए? प्रभु कौन—सी याचना की पूर्ति अवश्य करेंगे, यह प्रश्न भी वारतव में विचारणीय है। भौतिकता रो हठ कर हग आध्यात्मिकता की बात ली और मुँहे। हम सर्वे सोचते हैं कि हमारा आज का यह नलिन स्वरूप भी एक दिन अलौकिक बन कर प्रकाशित हो, जीवन के पूर्ण विकास की दृष्टि रो हगारी रागग्र आन्तरिक वृत्तिशां पवित्रतग बन जावें। यह भी एक भावना है और रोचना है कि इस भावना की भी पूर्ति स्वयं भगवान् करेंगे या नहीं?

स्वयं भगवान् बनने की भावना

सांसारिक या भौतिक के मनाउओं को छोड़ दीजिये किन्तु क्या गगवान् से आप गी स्वयं गगवान् बनने की याचना करें तो क्या गगवान् अपनी आन्तरिक शक्तियों को निकाल कर आपको दे देंगे? क्या परनामा अपने तेज को आपकी आत्मा में ढाल देंगे? क्या किरी भी आध्यात्मिक भावना ली भी पूर्ति आपके कुछ भी किये बिना भगवान् कर देंगे? यह संझी है कि भगवान् रेसा कुछ भी नहीं करते। न तो भगवान् अपनी शक्तियों को वृत्तियों को और न गुणों को किसी दूसरे को दे सकते हैं न अपने तेजोमय प्रकाश को ही दूसरों में वितरित कर सकते हैं।

अतः स्वयं गगवान् बनने की भी भावना है तो साक्षणा के पथ पर बलना होगा। और रवयं विकारा की रीढ़ियों पर बढ़ना होगा।। परमात्मा का स्वरूप तो अपने जाप में परिपूर्ण रथा अपने भीतर उल्लील है। वे किसी भी याचना की पूर्ति करने वाले नहीं हैं। इस कारण अपने

मन में यह स्पष्ट हो जाना चाहिये कि यदि प्रभु की प्रार्थना करनी है तो उसमें किसी प्रकार की याचना, वसना या लमगा नहीं होनी चाहिये।

तब प्रार्थना क्यों और किसके लिये ?

इतने रारे विश्लेषण के बाद प्रभु-प्रार्थना में रुचि रखने वाले किसी भी भावुक—गन गें यह प्रश्न उठ राकता है कि तब यह प्रार्थना क्यों और किसके लिये की जाए ? परमात्मा न तो भौतिक उपलब्धियाँ छुड़ाते हैं और न आध्यात्मिक शब्दाओं की ही पूर्ति करते हैं, फिर उनकी प्रार्थना का कैन सा उपयोग बव रहेगा ? तब क्या उनकी प्रार्थना में खर्च किये गये समय का अपव्यय नहीं होगा ? जब भगवान् कुछ लेते—देते नहीं हैं तो उनसे फिर किस प्रकार का सम्बन्ध रखें ?

प्रश्न तर्क की दृष्टि से योग्य है किन्तु इस सम्बन्ध में वारतविक रिति पर अवश्य ही चिंतन लिया जाना चाहिये। दर्पण के सामने जब आप खड़े होते हैं तब यदा वह आपको कुछ देता—लेता है ? हाँ, उरांगे आपकी आकृति जब प्रतिबिग्रहित होती है तो आपको अपने स्वरूप का भान होता है के उसका हाइरी दिखावा कैसा है ? इसी प्रकार सिद्ध—स्वरूप को दर्पणवत् मान लीजिये और प्रार्थना वह गाथ्यग है, जिसको आप इस दर्पण के सम्बन्ध पहुंचते हैं, यानी पूर्ण स्वरूप के सामने जब अपने स्वरूप ली तुलना की जाती है तो उरारो पूर्ण रवरूप को प्राप्त करने ला पुरुषार्थ जागरा है। परनात्मा कुछ लेरो देरो नहीं किन्तु उनके पूर्ण स्वरूप पर चिंतन यह दर्शन की दृष्टि लालने से जीवन—विकास ली दिशा प्रकाशित होती है। यही प्रार्थना की राबरो हड़ी उपलब्ध है और इसे ही प्रार्थना का उद्देश्य माना जा सकता है।

परनात्मा जिस स्वरूप में जहाँ स्थित हैं, वहाँ हैं। प्रार्थना से न तो हग्ये उनसे कोई याचना करनी है, न ये इगारी प्रार्थना रो किसी भी प्रकार रो प्रभावित होते हैं। प्रार्थना रे रिए हग्यी उनके स्वरूप का दर्शन करके वैसे ही स्वरूप में ढलने का अपना संकल्प

सुदृढ़ बनारे हैं पथा उस दिशा में आगे बढ़ने का अपना पुरुषार्थ प्राप्तम् करते हैं। प्रार्थना क्यों और किसके लिये का यही स्वरूप उत्तर है।

स्वरूप-तुलना का सत्प्रयास

रांगार में तुलना का बड़ा गहत्य होता है। कोई अच्छा है या बुरा है— ये रवयं तुलनात्मक रित्यतियों के द्योतक शब्द हैं। जितनी प्रतीयोगिताएं हैं, वे तुलनात्मक स्पर्धाएं ही तो होती हैं। यदि तुलना में स्वरूप दृष्टिकोण रहता है तो वह तुलना विकास के लिये सबल प्रेरणा बन जाती है। प्रार्थना के हार भी ऐसी ही स्वरूप तुलना ला दृश्य आपने सामने अंकित किया जा सकता है।

परनाला का जो पूर्ण रूप है— अतिशय निर्गलता और अनन्त शक्ति वाला, वह एक प्रकार रो रांगारी आत्माओं के लिये आदर्श साध्या के रूप में है। उस पूर्णता के सामने जब विनम्रभाव से हम अपनी अपूर्णता को रखते हैं तो हमें भान होता है कि उस पूर्णता के सर्वाच्च बिन्दु से हमारी अपूर्णता जितनी नीची है और यही भान हमें आपनी यतनावस्था से जागृत बना सकता है।

आप यह ख्याल बनालें कि आपकी प्रार्थना कभी ल्यर्थ नहीं जाएगी। ऐसी प्रार्थना प्रभु के चरणों में जिरा रूप में और जिरा भावना से आप रखेंगे, वैसी ही भावना का संवार आपके अन्तर मानस में होगा। प्रार्थना की पर्केयों के स्वरूप और उन पर गहन चिंतग के स्थान आप परमात्मा के स्वरूप को शुद्ध रूप में देखेंगे और इससे आपके हृदय का मैल धुलने लगेगा और शुद्धता का विरहार होगा। जब स्वरूप-तुलना के ऐसा राष्ट्रधारा प्रथन के रूप में वरावर होता रहेगा, तभी रपष्ट रागङ्गा में आएगा। किलेन देन के सैदे से ऊपर उठने के बाद ही प्रार्थना का आन्तरिक महत्व प्रकट होने लगता है।

प्रार्थना हंस की चोंच साबित होगी

आप अनुशास करेंगे कि प्रार्थना किसी भी दृष्टि से ल्यर्थ नहीं

है। अन्नार्जिगरण के बाद प्रार्थन ही आपको परीक्षा हुद्दि देगी कि स्वरूप ली पूर्णता के लिये कौन—से गुण अपनाए जाने चाहिये ? प्रार्थना आपके जीवन में हंस की चौंच का काम करेगी। आप हंस की चौंच की परीक्षा—शक्ति जानते होंगे कि वह दूध और पानी को अलग—अलग कर देती है उर्थात् रार और निररार को छान सकती है।

प्रार्थना में भी ऐसी ही शक्ति है कि वह इस जीवन में क्या हेय और क्या उपादेय है—इसली सम्भव जानलारी करा दे। साध्य की ओर जब प्रार्थना के जरिये देखने की नज़ार राफ हो जाती है तो उसकी रोशनी में ही हेय और उपादेय तत्त्वों की भी परीक्षा—हुद्दि पैनी बन जाती है। यदि प्रार्थना की परीक्षयों का अर्थ आत्मा ली आन्तरिकता में प्रविष्ट हो जाए तो वह दूध और पानी की तरह आरगा के गूल रवगाव और कर्गाच्छादित विकृति का अलग—अलग विभक्तिकरण कर देगी। जहाँ एक बार कगाँ की छंटनी की तृती जग गई तो समझिये कि उस आत्मा में कर्मों के उपशम एवं क्षय का पराक्रम भी जागृत हो जाएगा।

दूध-पानी की मिलावट ही बड़ी खोट है

जैसे शुद्ध दूध में पानी मिला दिया जाए तो दूध का स्वरूप विकृत हो जाता है, उसी प्रकार अनादिकाल से आत्मा का दूध जो कगाँ के पानी में रल—गिर रहा है, वही राबरो बड़ी खोट है। इरो गिलावट की खोट के कारण आत्मा आपना भेद—विज्ञान नहीं रागड़ा पा रही है और अपने शुद्ध स्वरूप को समझने में भी भ्रमग्रस्त हो रही है। वैसे जागृत आत्माएं अपनी बौद्धिक शक्ति स्वरूप ज्ञान में लगाती भी हैं, तब भी उसमें हंस की चौंच का ऊपक नहीं बैठने से परीक्षा—हुद्दि के साथ भेद—विज्ञान ली स्थिति प्रकट नहीं हो पाती है। भेद—विज्ञान आत्मा को तभी गिलेगा, जब डंरावृति रो दूध और पानी की रास्त आत्म प्रदेशों एवं कर्म पुद्गलों को पृथक् पृथक् कर दिया जाएगा।

यह पृथककरण प्रार्थना के अभ्यास से ही संभव हो सकता है। प्रार्थना रो तुलना। राष्ट्र होगी और उसके बाद वरेख—बुद्धि पनपेगी, जिसके बल पर दूष—पानी ली गिलावट को अलग—अलग छांडा पा राकेगा। ज्यों ही इर खोट को गिटाने की जागृति आती है तो उसके राथ कर्ग—शत्रुओं रो राघव करने की राहचिकता भी जाना लेती है। प्रार्थना के गाध्यग से प्रसादा के रवरूप को जाब देखते हैं कि वे राम—गुणों के रवागी बन गये और हग अब भी भयंकर दुःखों की पीड़ा में छटपटाते फिरते हैं और जानते हैं कि इर का कारण हगरी ही कर्ग—राजमनता है तो दुःखों के गूल को गिटा डालने के लिये साहसिकता का पैदा होना स्वाधाविक बन जाता है।

प्रार्थना करतई याचना नहीं है

इस दृष्टि से प्रार्थना का जो महत्व है, वह महत्व अन्य सभी तत्त्वों रो बढ़ा—बढ़ा है, बशर्ते कि प्रार्थना गें किरी भी रूप गें याचना की लालसा या दीनता का प्रवेश नहीं हो। जहां हमने कुछ लेने ली लालरा की, जहां प्रार्थना की शुद्धता नष्ट हो जाएगी। प्रार्थना किरी भी प्रकार से व्यापार नहीं, वह रो आत्मा का संक्षात्कार है।

किन्तु जो अज्ञानी आत्माएं प्रगु की प्रार्थना किसी न किसी याचना की दृष्टि रो लरती हैं वे न तो प्रभु के रवरूप ला और न ही प्रार्थना के महत्व का ही सही ज्ञान कर पाती हैं। ऐसा प्रार्थी अपनी प्रार्थना एक आङ्गनर के रूप में करके आत्म—प्रवर्चना के साथ रानुष्ट और निष्क्रिय होकर बैठ जाता है कि उसने प्रसादा लो खुश कर लिया है और अब तो सारी उपलब्धियां परमात्मा की ओर रो उस तक पहुंचती ही होंगी। यह प्रार्थना का रावंथा याचक रूप हो जाता है, जब कि प्रार्थना किसी भी दृष्टि से कराई याचना नहीं है। प्रार्थना एक प्रकार रो पुरुषार्थी की भावना का राजीव रूप होती है। यह तभी हो सकता है, जब यह दृष्टि रखतो जाए कि मेरा अन्नाकरण जो राग द्वेष, विषय कर्षय और अन्य विकारों से कल्पित हो रहा है। उस कल्प को परमात्म—स्वरूप के दर्पण में देख और पहचान कर मैं उसे धोने का रात्मुखार्थ करूं। यह रात्मुखार्थ ही कर्गों की छंटनी का होगा, जिस से आत्म स्वरूप निखरता जाएगा।

प्रार्थना, संकट में महान बल

आत्म स्वरूप की पुष्ट अनुभूति के साथ प्रार्थना ऐसा बल प्रदान करती है कि सामने चाहे जैसा संकट उपस्थित हो जाए प्रार्थना करने वाला कशी उसके सामने डिगता नहीं है। प्रार्थना और शुद्ध हृदय रो रात्री प्रार्थना करने वाले की आत्मा बलवान बन जाती है, वह किसी भी राक्ष रो राफलतापूर्वक राधर्ष करने में सक्षम होता है।

प्रार्थना के बल को साथ लेकर संकटापन्न स्थिति में वीजिसने मस्ती से रहने की कला सीख ली, वस्तुत में उसी ली प्रार्थना रात्री है—यह गानना चाहिये और ऐसे व्यक्ति के जीवन वा रवरुण कुछ और ही प्रकार का नवीन ऊनंद देने वाला बन जाएगा।

आसक्तिओड़ो : प्रार्थना करो

जहाँ तक मन में से आसक्ति का भाव नहीं निकलता, वह उक लालसा बने रहती है और इस लालसा को ही आसक्ति कहते हैं। आसक्ति चिंगकी रहती है तो याचना भी नहीं छूटती है। आसक्ति ही परिग्रह का मूल है और इसके रहते हुए सच्ची प्रार्थना संगव नहीं होती। आसक्ति वाले को चाहिये ही चाहिये और रात्री प्रार्थना करने वाले को कुछ भी नहीं बहिये। फिर पोनों का गेल लैरो हो ? या तो आसक्ति रख लो उथवा प्रार्थना ही कर लो, दोनों में से एक ही संगव बनेगी।

इस बिन्दु पर आपको गम्भीरता से सोचना है कि प्रतिदिन आप यह प्रश्न को जो प्रार्थना करते हैं, वह सच्चे अगासत्त हृदय से करते हैं अथवा प्रार्थना का जोग करते हुए आरामि के दलदल में ही फंरो हुए हैं। इसी के उत्तर रो आप अपने लिये अनुगान लगावें कि आप कोरे याचक हैं या सच्चे प्रार्थना करने वाले ?



समता का अमृत

“हेतु विवादे हो चित्त घरि जोड़ये.....”

अग्निनदन वरमात्मा की प्रार्थना की पंक्तियों का ही उच्चारण चल रहा है। परमात्म—स्वरूप के दर्शन की अशिलाषा जब तीव्र बनती है तो प्रार्थना का रिफ़ जिदा रो ही उच्चारण नहीं होता। बल्कि उत्तराभ्यास और गारेपाण में रा कर राक्षात्कार की उत्कंठ को उग्र बना देता है। इस साक्षात्कार के लिये संसार में मानव विवेध प्रकार के साधनों को काम में लेता है, किन्तु जब सफलता नहीं मिलती है तो कई बार वह ऊब जाता है और हताश—रा हो जाता है। उत्तराहटीनता की ऐसी अवश्य में गदि तुद्धि और विलेक को जागृत किया जाए और हेतु एवं वर्क की दृष्टि से सारी समस्या पर गम्भीर ध्यान लिया जाए तो जवश्य ही वाँछित समाधान खोज कर निकाला जा सकता है।

हेतुवाद का आधार

प्रार्थना में कवि आनन्दघन कहते हैं—

हेतु विवादे हो चित्त घरि जोड़ये, अति दुर्गम नयवाद।

आगमवादे हो गुरुगम को नहीं, ए सबलो विषवाद।

राक्ष्य की राधना में हेतुवाद का आधार इरालिये लिया जाना वाहिये । कि कारण के ज्ञान से साधन लक्षण बन सके और उससे साध्य की प्राप्ति सुलभ हो जाए। हेतुवाद के आश्रय में वर्क की उत्पत्ति होती है तथा वाद—विवाद के होने से दोनों पक्षों का समुचित ज्ञान हो जाता है। दोनों पक्षों का भी स्वास्थ ज्ञान तभी होता है, जब उन्हें सभी अपेक्षाओं रो जाना जाए। इराका राधन है—नयवाद। राय का एक

पक्ष ही नहीं होता। और नयवाद उसे सभी रूपों में स्पष्ट करता है। यही कारण है कि नयवाद को अति दुर्गम बताता गया है क्योंकि एक वस्तु—स्वरूप को उसके सभी रूपों में जानना और देखना गम्भीर द्वितीय रो ही राम्बव होता है।

नयवाद अकेला भी सत्य से आक्षात्कार करते थह शक्ति नहीं है। सात नयों की उपेक्षा से ताके विवर्क के आधार पर जो वस्तु—स्वरूप सामने आता है, उसके ज्ञान में आगमवाद के बिना पूर्णता नहीं आ सकती है। वीतराग—वाणी का संग्रह ही आगम लहलाता है। आगम गें रात्रेष्ठ ज्ञान रखित है, जो एक प्रकृति से वीतराग पुरुषों की ज्ञान एवं कर्म—राधना का रारकृप है। किन्तु भी रात्रि के राक्षात्कार के लिये आगम से भी आगे गुरुगम की जरूरत होगी। गुरुगम वह ज्ञान है, जो गुरु से शिष्य को गित्यन्ति प्राप्त होता रहता है। यह भी गुरु के ज्ञान एवं कर्म—राधना का रार ही होता है किन्तु इर रार ला राम्बन्ध वर्तगान रागय रो होता है, अतः उच्चकी उपयोगिता राहींपरि हो जाती है।

हेतुवाद का आधार लेकर जब नयवाद और आगमवाद रो आगे गुरुगम तक गति की जाती है तो प्रभु के दर्शन या सत्य ला साक्षात्कार उस साधक के लिये सुलग हो सकता है।

गुरुगम ज्ञान की महत्ता

आगम का अर्थ इंसान व्याकरण और न्याय से निकाल सकता है, किन्तु जब तक वह गहरे नहीं उतरे, यह अर्थ— पिन्यास सैनी बुद्धि के बिना नहीं किया जा सकता है। जब इस आगम—ज्ञान के रात्रि गुरुगम ज्ञान गिलता है तो उसको प्रत्यक्ष राम्पर्क के कारण स्थानगृहि का जागरण सरल बन जाता है। यदि आज जी समाज—व्यवस्था पर एक द्वितीयात किया जाए तो दिखाई देगा कि चारों ओर विषगता बुरी तरह चो फैल रही है। हेतुवाद रो लेकर गुरुगम ज्ञान तक की राधना रो ही इच्छा विषगता के राहीं कारणों लो राम इ आना आरान हो।।।

गुरुगग—ज्ञान प्रत्यक्ष अनुभवों पर आधिक आधारित होने से दृष्टि को विषमता के संदर्भ में भी स्पष्ट बनता है कि विषमता ला मूल मनुष्य के मन में होता है, जिसे हम कहते हैं भेदभाव। जब विद्वार गें भेद जाना लेता है तो यह भेद गनुष्ठ के आचरण गें हिंसा के पैदा करता है। विचार का शेद और आचार ली आक्रागकता गिल कर समाज में जिस प्रकार ली व्यवस्था को फैलाते हैं, वही विषमता ला गूर्त्तरप्र प्रदर्शित करती है। जीवन राग बने—रागतागग बने—इराके लिये विषमता के हेतुओं को समझना और उसे मिटाने के उपायों लो काम में लाना जरूरी हो जाता है। इसके सम्बन्ध में निर्देशन ला मुख्य धोरा गुरुगग ज्ञान ही हो राकरा है, जो गुरु की ज्ञान एवं कर्म राखना के राथ—राथ उनकी वर्तगान रागीक्षा एवं निर्णय—क्षगता का भी प्रतीक होता है।

मस्तिष्क और हृदय की एकरूपता

रागरथाओं के रागरथान में अधिकांशतः रांकट इरालिये पैदा होते हैं कि ज्ञान साधना के अवस्था में मस्तिष्क और हृदय की एकरूपता। नहीं बनती है। आज इस युग के अन्दर मानव गुरु से ज्ञान लेने व उसे आलोक पाने की शावना कम रखता है तथा सिर्फ मस्तिष्क पर बल देकर किताबी अध्ययन से विद्वान् बन जाता है। वक्तुव्य कला का अभ्यास करके और पुरतकों के उद्धरण देकर वह जन—गानरा पर अपनी विद्वता की छाप डालन चाहता है। कोरा विद्वान् ऐसी छाप तो डाल सकता है किन्तु हृदय ली अनुभूतियाँ मिटाये बिना वह न तो प्रभु के दर्शन कर सकता है और न ही सत्य का साक्षात्कार पा सकता है।

गुरु के राथ जब नरितष्क की उर्वरता और हृदय ली परली। लेकर ज्ञानार्जन के लिये कोई बैठे, उनके साथ शार्दूलावन करे और गहन वातों का अर्थ विन्यास लगावे तो वह हाइरी आङ्गबर गले न कर स्के किन्तु अपनी सहजता में वह सत्य ली और अवश्य बढ़ सकता है तथा स्मता को समग्र रूप से आचरण में लाने के लिये आपने रागरथ्य को परिपूर्ण बना लेता है। आता विकारा

की शश्वत समस्या और एवं समाज की वर्तमान समस्याओं के समाधान में गुरुगम ज्ञान का इसी लरण विशेष महत्व मना गया है। संसर के विषम एवं अशांत वातावरण में जब कोई गुरु के चरणों में बैठता है तो एक राम परंपरा गें छले हुए विचार उसे मिलते हैं, जो उसे पूर्ण राम ताणाय आवरण की ओर बदलने के लिये प्रेरित करते हैं। किन्तु यह तभी संभव होता है, जब गुरुगम ज्ञान के लिये नस्तिष्ठ एवं हृदय जी एकरूपता लेकर विषमता के कारणों तथा स्मता के उपायों पर चिन्ता किया जाए।

विषम स्थितियों की पृष्ठभूमि में

वारों और जो विषारापूर्ण रित्यतियाँ दिखाई देती हैं, वे यद्यपि रागूहिक आचरण के उत्पादन के रूप में चलती हुई रागझ में आती हैं किन्तु कैसी भी विस्तृत विषमता हो, उसका उदय मनुष्य के मन में ही होता है। यह उदय भेद भाव के रूप में होता है। समानता की भावना रो जब-जाब और जहाँ-जहाँ मनुष्य गिरते हैं तो वह अपने मन में भेद भाव की विषाकरता धारण करता जाता है। मन में जड़ राम वा दूर्दृष्टि है तो उसका अर आवरण पर पड़े बिना नहीं रहता।

गेद-गात के विचार मनुष्य के आचरण में बराबर हिंसा लो स्थान देरो रहते हैं। भेद समानता की विरोधी स्थिति होती है। भेद का अर्थ है कि ये तो अपने को बड़ा रागझों या अपने को डीनगान्यता के राथ छोटा रागझों बड़ा रागझने पर गदोन्नात हिंसा का जन्म होता है। और हीन समझने पर प्रतिक्रियात्मक हिंसा का जन्म होता है। अनिग्राह यह है कि जहाँ भेद-भाव आता है, वह किरी न किरी रूप में हिंसा भी आती ही है। गेद-गात और हिंसा जब एक व्यक्ति के जीवन को कलुषित बनाते हैं, और यही कालुष्य धीरे धीरे जड़ सामजिक रूप धारण करता जाता है तो व्यापक विषमता ला भयावह स्वरूप ग्रहण कर लेता है।

विषमता की इस पृष्ठभूमि में गहरे उत्तर कर हेतुवाद से कारणों को ढूँढ़ा जाए, नयवाद से सत्यांशों को मिलाया जाए, आनंदवाद रो जान के शश्वत रूप को परखा जाए तथा गुरुगम-ज्ञान

से प्रत्यक्ष अनुभवों पर आधारित टिवेक पूर्ण आवरण के छह॥ किया जाए तो निश्चय ही विषमता की जड़ों को काट कर सम्मतामय जीवन की ओर मुळ जा सकता है।

भेद-भाव से हिंसा का फैलाव

जह एक दूरारे को छोटा-बड़ा रागझाने का विचार घर करता है तो वह विवार एक दूसरे को नीये गिराने अथवा एक दूसरे का पिरस्कार करने की भावना को भी बल देता है। भेद भाव कभी मन को शांत और स्थिर नहीं रहने देता, तब वह हिंसा के प्रदर्शन लो उकसाता है। इस भावना से हिंसा के फैलाव को समझने के लिये पठरे रांझेप गें हिंर॥ के रूपों को जासर रागझा लेना बहिये। जैर॥ कि राधारणाः रागझा जाता है कि। हिंर॥ का अर्थ किरी को गरना ही होता है, किन्तु इस स्थूल रूप से आगे हिंसा की सूख्म व्याख्या बड़ी गहरी बताई है।

उगारवाति ने आपने तत्त्वार्थ—रूब्र गें हिंरा की व्याख्या करते हुए कहा है—

“ प्रमत्तयोगात् प्राणव्यतिरोपण हिंसा—”

अर्थात् प्रमाद (आलरय) के वश गें होकर भी आगर किसी भी प्राणी के किसी भी प्राण को चोट पहुंचाई जाती है तो वह हिंसा है। प्राण दस होते हैं पांच इन्द्रियों के, तीन मन, वचन, काया के व दो श्वारोश्वारा और आयुष्य के। कंबल आयुष्य के रागज्ञ कर देना ही हिंरा नहीं है, बल्कि किरी भी प्राणी को कष्टित करना, कष्टित करने को कहना अथवा कष्टित करने को सोचना भी हिंसा के ही दायरे में आता है। स्थूल कष्ट से लेकर सूखमता पीड़ा तक हिंसा का ही क्षेत्र चलता है।

हिंसा के हेतु प्रमाद माना गया है। प्रमाद की अवस्था लो प्रगत्योग कहते हैं। प्रगाद ही राग—ह्रेष की उत्तिलतग वृत्तियों तक निकारित होता जाता है। राबरो हल्का रूप प्रगाद का होता है और जह प्रमाद भी हिंसा को करवाता है तो क्षुरां वृत्तियां तो हिंसा का

पेषण करती ही है। किन्तु प्रमाद को भी ससके सामान् अर्थ आलस्य मात्र से ही नहीं समझना चाहिये।

प्रमाद क्यों और कैसे होता है ?

शारब्रकारों ने प्रगाद की विशद बाल्या के रूप में बताया है कि नद, विषय, कषाय, निद्रा और छिकृति—राबको गिला कर जो रूपक बनता है, उसे प्रमाद कहा जा सकता है।

इन्हें रो गद को पहले लें कि यह इन्सान के गरिबाधः १) किस प्रकार उमत्त बना देता है? नद के लिये कहा गया है कि वह मनुष्य को मतवाला बना कर संज्ञाशून्य कर देता है। अपनी संज्ञा को—आपने रखरुप और भाव को जो भूल जाए, वह भ्रान्त योग के राथ हिंरा रो रम्बन्त जोड़ कर प्राणियों के प्राणों का व्यतिरोपण करने लग जाता है।

विश्व की वर्त्तगान रामार्जिक व्यवरथा को देखें तो लगेगा कि मदों में आज जातिनद सबसे ज्यादा घातक रूप लिये हुए है। जातिमद के नाम पर धूणित से धूणित काम लगने को भी इन्सान तैयार हो जाता है। काले और गोरे के भेद के पीछे कितनी हिंरा, कितना उत्त्याचार एवं अन्नाय अक्रीकी देशों में रुना जाता है। वर्गभेद के अन्यायों का सिलसिला १० इस देश में आजादी के पश्चीम वर्षों बाद भी जघन्य रूप से बलता हुआ दिखाई देता है। भारत में तो जातिमद का रूपक काफी जटिल कहा जा सकता है। जाति की इस कफ्लता के पीछे साग्रहायिक झगड़े, जातिगत विवादों और उपद्रवों के रूप में हिंरा का केतना पांडव होता रहता है—यह आप लेंगों में रो बहुत रो भली—भाँते जानते हैं।

जातिमद के कुत्सित दृश्यों को देखते हुए कहा जा सकता है कि समाज के जिस कृत्रिम विभाग को आपने जहि की संज्ञा दे रखी है और उस स्पजाति के नाम पर जो मानवता के साथ घृणा, तिरस्कार एवं अशिमन शरा ल्यबहार किया जाता है, वह स्त्रीमानहीं, जातिमद का ही धृपेत रूप है।

जातिमद की जघन्यता

प्रमाद ले अन्य कारणों पर विचार करने के पहले जातिगद की बुराई पर थोड़ा—सा। विस्तार से रोच लें। विविध प्रकार के जातिगद के ही कुपरिणम समाजिये कि हिन्दू मुसलमानों के बीच रक्षणा छोटा है; सर्वेण और अस्तूतों के बीच घृणा की दीवारें खड़ी हैं तथा उलग अलग जातियों के बीच झागड़े चलते रहते हैं। भारत शूगण्डल के जो दो विभाग हुए, वह जातिगद का ही कूफल है। एक जाति जब जातिगद से प गल बन कर दूसरी जातिव लों को हीन समझ कर व्यवहार करती है तब हिंसा व प्रतिहिंसा का क्रम चलता है और उससे विषन्ता की खाई चौड़ी होती रहती है।

जाति मद के गर्व के साथ हीन भावना से व्यवहार करना भी शारक्तीयहस्ति रो हिंसा ही है। छुआछूत का भेदभाव रख कर जो विषण व्यवहार किया जाता है, वह उन्नित नहीं कहा जा सकता है। कोई कह दे के हरिजनों को हम अधूरा इसलिये कहते हैं कि वे दारु मांस काम में लेते हैं या कि अशुद्धि सहारे हैं, लोंगेन यह ८८ सही नहीं है। दर्ज—मांस काम में लेने वाले सभी को आप अस्तूत नहीं मानते, किर हरिजनों को ही क्यों? और इन दुर्लभसगों को छुड़ाने के लिये तो उनके राथ रह कर इचनात्मक का। उन्हें की जारूरत है, न कि उनसे धूणा करने की। अशुद्धि उठाने की बात को भी जरा गहरी नजर रो देखें कि माता बच्चे को अशुद्धि उठाती है तो क्या उसे छूते नहीं। किर हरिजन तो माँ का पवित्र कार्य कर रहे हैं, तब उनके प्रति तिरस्कार की भावना रखना जातिगद का गोषण ही है।

अब एक नये जातिमद का भी रूपक बना है और वह है धनी और गरीब जातियों के बीच का भेदभाव। यह भेदभाव जाजा अधिक गोखा बनता जा रहा है और दोनों जातियों के हीव धूणा, हिंसा और विषमता को फैला रहा है।

वैभव प्रदर्शन की उन्मत्तता

जातिगद की तरह ही जोगों में वैश्व—गद भी ढ़ढ़ता जा रहा

है और लोगों में जितना धैर्य बढ़ता जाता है, उसकी उन्मत्ता भी उत्तरी ही बढ़ती जाती है। तब उसका जो प्रदर्शन किया जाता है उरारो गरीब और पनी के बीच विषयाता और अधिक गहरी होती जाती है। अधिक आगूषण पहिंगकर या विवाह-शादियों में अति व्यय करके जो धन का प्रदर्शन किया जा रहा है, सोचिये, इससे क्या आप एक नवीन प्रकार के जारीगद लो नहीं बदा रहे हैं? आप रोवेंगे कि इस प्रदर्शन में कौन-सी हिंसा हैं? किन्तु गहरा सोचेंगे तो आप जान पायेंगे कि इस प्रकार के प्रदर्शनों में तो हिंसा की जड़ हरी छोटी है। इस प्रदर्शन रो पड़ीरी भाई के नन गेंठीन-भावना पैदा होती है और वह विषमता का अनुग्रह करके अपने को आपसे अलग समझ लगता है। उसके मन में आपके प्रति ईर्ष्या और प्रतिहिंसा की शावना झाँकती है। थर्ड ऐरा। रोलरोला। एक व्याने: रो पूरारे चक और आगे बराबर चलता रहे तो क्या गेवाव की दीवारें मजबूत नहीं बनेंगी? इस गेवाव ले दो परिणाम हो सकते हैं—या तो वह वर्ग, जो आर्थिक द्वितीय रो अमावस्या है, ठिरा। का चांडव—नृत्य करे और प्रतिशोध ले अथवा दबा हुआ रह कर नये—नये सामाजिक विकारों को जन्म दे तथा सम्मता की स्थिति से दूर सरकता रहे। इस प्रकार हिंसा और अहिंसा को उनके रूपों ने राखा। उन रूपों रो भी बल कर बलन। चाहिये जातिमद की ही श्रेणी में बल (शारीरिक) मद, परिवारमद, धन—मद, शास्त्र—मद आदि उन सभी मदों को लिया जा सकता है, जो आत्मा को प्रमाद की स्थिति में पटकते हैं।

प्रमाद के अन्य कारण

गद के रिवाय प्रमाद के अन्य कारण—विषय, ज्ञाय, निद्रा और विकृति बताये गये हैं। किरी भी गद से उन्नात व्यति काम योग में आसक्त बनता है अथव हिंसा प्रतिहिंसा में पछ कर कषायों का बन्ध लरता है। जहां दुर्गविना नहीं है, वहां प्रमाद क कारण है निद्रा। निद्रा शारीरिक रूप से बेभानी की हुलत है और इसके किरी भी रूप को आलरव कहा जाता है। जहां चारों कारण गिलते हैं तो वहां विकृति का पांचवां कारण रो बन ही जाता है। ये पांचों कारण या पांचों में से कोई कारण जहां पनपता है, वहां प्रमाद आता है और प्रमाद के योग से हिंसा का होना अवश्यंगाती हो जाता है।

हिंसक-अहिंसक की कसौटी

गैं कहता हूँ कि जीवन में धर्म का क्षेत्र व्यापक होता है। यह धर्मस्थान है— यहाँ सबको धर्म-श्यान करने का अधिकार है। अब कोई हारेजन यहाँ आकर बैठ जाए और उस रागय तो पके गए मस्तिष्क में कोई पृणा, हीनता या तिरस्कार की शावना नहीं आवे तब रागझाना चाहिये कि आप अहिंसक हैं। अब आप ही रोचिये कि आप अपने आपको अहिंसक नानते हैं अथवा वस्त्राव में हिंसक हैं? गेदशाव की दृष्टि और पिष्ठमता ला ल्यवहार हिंस के नूल हैं।

आपके रागाभ के धरातल पर कभी प्रभावना का प्रसांग आता है। हकीकता में प्रभावना समरा के भावना दर्शने वाली होनी चाहिये, किन्तु लोडे प्रशावना बांटते—बांटते गेदशाव की स्थिति खड़ी कर दे कि वह पैसे वालों को तो आग्रह करके बांटता जाए और गरीब को देला कर उसे धक्का मार अलग कर दे तो क्या यह हिंसा का प्रदर्शन नहीं होगा? हाँ, प्रभावना बांटते राग य कोई पैसे वाला निकल जाए तो कोई बात नहीं, किन्तु गरीब के प्रते जादर बताकर उसे प्रशावना आग्रहपूर्णक दी जाए तो ऐसे ल्यवहार से समझाना चाहिये कि जाति मध्य हल्का ही रहा है एवं अहिंसा व समतामय ल्यवहार को प्रमुखता दी जा रही है।

हिंसा और अहिंसा की रीगाएं नन की भीतरी पर्ती में रागाई हुई रहती हैं और वहीं से बाहर के कार्यों का क्रम चलता है। अतः हिंसक और अहिंसक की कसौटी के लिये शावनाओं की गड्हरई में उतर कर ही परख करनी होगी।

विषमता हृदयहीन और समता सहृदय होती है

भेदभाव और हिंसा के धरातल पर जिसके स्वभाव छलपा है, वह विषमता की कटुता से गरा हुआ रहता है और इस कारण वह हृदयहीन भी हो जाता है। किन्तु समता की साधना जिसने की है, उसकी हार्दिकता रादा गानवता का राहारा बनती है।

कल्पना करें कि आप सम्पन्न हैं और आपके जामने एक गरीब और दुःखी व्यक्ति आकर गिङ्गिङ्गाता है कि मुझे किसी भी प्रकार

आश्रय दो और उस समय आप उसकी अपेक्षा कर दें था दुत्पार ये तो क्या आप अपने आपको अहिंसक और समाजी मान सकते हैं? समता नहीं तो सहृदयता कहाँ से आएगी? गोदगाव, हिंसा और विधाता रे गन के सभी कोने जब काले पँडे हुए हों तो वहीं रामता का राहकार कैरे होगा?

शक्तिका सदुपयोग करें

आप उस गरीब और दुखी व्यक्ति को मारते—पीटते नहीं किन्तु अपने पारा शक्ति होते हुए भी उसे राहकार नहीं देते—यह अपनी शक्ति का रादुपयोग। नहीं हुआ तथा अराहकारी होने के कारण हिंसा के भी पात्र बने। बुद्धि, धन, बल या विद्या किसी भी शक्ति स्थियं के पास हो तो उसका कर्तव्य माना जाना चाहिये कि वह अपनी शक्ति का दूरांग के हित के लिये रादुपयोग करे। परोऽलार गें प्रगद नहीं होना चाहिये और तब हिंसा और भेद—भाव भी नहीं होंगे।

आहेर। और हैरा के भेद को रामङ्ग कर हिंसा के सूक्ष्म कारणों से भी दूर रहना चाहिये तथा समता के अमृत से न सिर्फ स्थियं के जीवन को बल्कि सारे समाज को सिंचित करना चाहिये।

□□□

आत्मधात का सही अर्थ

"सामान्ये करि दरसण दोहिलूं"

प्रथमा में कवि गव्य आत्मा के मन की गावना को व्यक्त करते हैं कि सामान्य रूप से परमात्मा का दर्शन एक कठिन साधना है किन्तु यदि आत्मा अपनी कगर करा जे और पूरे परज़ग से जुट जाए तो वह अपनी दर्शन या राक्षात्कार की अभिलाषा को पूर्ण कर सकती है। इसकी अगली सीढ़ी ही यह होगी कि वह आत्मा स्वयं परनात्म स्वरूप को वरण करले। यही आत्मा से परमात्मा तक ला सर्वोच्च विकास होता है।

दर्शन के बीच की बाधाएं

कवि का संकेत है कि दर्शन तो मैं शीघ्र कर सकता हूं किन्तु उराके बीच मैं बहुत-री बाधाएं खड़ी हुई हैं। ये बाधाएं भी राधारण नहीं हैं। इन बाधाओं को बड़े-बड़े धनधाती लूंगरों (पहाड़ों) की उपमा दी गई है। ये बाधाएं ऐसे पर्वतों के हुल्य हैं जो बीहड़ तो हैं ही। किन्तु मारक भी हैं घाराक रूप हैं, ऐसे घाराक कि जरा से ढूळे तो आत्मा की घात ही कर डालें।

ऐसे लूंगरों की उपमा क्यों दी गई है। आपना आपने शुभ या अशुभ रांकल्यों, वर्चनों या कृत्यों से उस रूप में उनका पो फलाफल अपने साथ संलग्न कर लेती है, उसके भुगते बिना छुटकारा नहीं मिलता। वैसा फलाफल जो दिलाते हैं, उन्हें कर्म कहा जाता है। ये कर्म, जब तक अत्मा सर्वोच्च विकास बिन्दु तक नहीं पहुंच जाती, उराके राथ रँलग्न होते रहते हैं तथा फल देकर

छूटते रहते हैं। कामांग वर्गण। के ये कर्म सूक्ष्म पुदगलों के रूप में होते हैं जो आत्म-प्रदेशों के साथ तब तक संलग्न रहते हैं, जब तक कि उनका सम्पूर्णतः क्षय नहीं कर दिया जाता।

जैरो रूर्य चगकता है और उराका तेज प्रकाश चारों ओर फैला रहता है किन्तु इस बीब वर्षा की धनधोर धटाएँ छा जाए तो वे सूर्य को इस तरह ढक लेती हैं कि जैसे सूर्य का अस्तित्व ताक लुप्त ना हो जाता है। सूर्य के हेते हुए भी अन्धकार फैल जाता है।

घनधाती कर्मों की घनघोर धटाएँ

उसी प्रकार सूर्य रूप तो आत्मा को मान लीजिये जो अपने शुद्ध रूप में अनन्त तेज एवं शक्ति की भारिणी होती है, लेकिन घनधाती कर्मों ली धनधोर धटाओं से ढक कर निरतेज रूप में दिखाई देती है। ये कर्म आत्मा के प्रकाश को दबाये रखते हैं और तब ताक उसे दबाये रखते हैं, जब ताक शुन कर्मों के उदय से उसमें जागृति का श्रीगणेश न हो। एक बार आत्मा मिश्या से सम्यक् ली ओर बढ़ चले तथा बाद में अपने श्रेष्ठ और सच्चे ज्ञान, दर्शन एवं वारित्र्य की शक्ति से युग्मों के उच्चतार स्थान पर बढ़ती रहे तो नई धटाओं के अन्धकार को दीरा जा सकता है और एक दिन सारी घनघोर धटाओं को हटा कर आत्म-सूर्य का सम्पूर्ण तेज अपनी पूर्णता के साथ प्रकाशित किया जा सकता है।

जह आत्म-रूर्य चगकता है तभी तो परगत्या के दर्शन होते हैं या कि उनका राक्षसकार होना गाना जाता है। तो ये कर्म घनधाती इसी कारण कहलते हैं कि ये आत्मा यानी आत्मिक गुणों की घात करके उसे निस्तोज बनाने वाले हैं। ये हुंगरों के समान प्रकाश के बीच का आवरण बन कर आत्मा को अंदोरी गलियों में भटका देते हैं और इस अंदोरे को जब तक नष्ट नहीं किया जाता है, तब ताक प्रकाश नहीं, दर्शन नहीं और परगाता रवरूप की प्राप्ति भी नहीं।

आत्मा की घात कैसी ?

राधारपा रूप रो आत्मघात आपने शरीर की हत्या। (रख्य ही) कर देने के लहरते हैं क्योंकि आत्मा की हत्या तो संतुष्ट होती नहीं है। शरीर की हत्या का उर्ध्व भी एक रागाग्र जीवन की हत्या होती है और इसे महापातक कहा गया है, किन्तु आत्मघात का वास्तविक उर्ध्व इरारो भी आशिक रहता है।

इसे एक प्राकृतिक प्रक्रिया माना है कि आत्मा आपने स्वरूप को निखारती हुई पूर्ण परमात्म-स्वरूप को प्राप्त करले, किन्तु इस प्रक्रिया में आपने ही किये हुए कर्म जब भयंकर बाधाओं का रूप धर कर बीव में आ जारे हैं तो वे एक बार आत्मा की घात करते हैं यानी आत्मा में परमात्म-दशन की जो शक्ति है, उसका ह्रास करते हैं। इससे आत्मा आपना भन मूलने लगती है और धीरे धीरे इतनी बेगान बन जाती है कि वह अपने विकास को ही नहीं, अपने स्वरूप और विवेक को भी मूल जाती है। आत्मा की जो ऐरी पुष्पुष्ट दशा बन जाती है, उसे ही सब्दे अर्थ में आत्मघात कहा जाना चाहिये। शरीरघात तो एक जीवन का विनाश करता है, किन्तु आत्मघात एक साथ कई जीवनों का विनाश करके आत्मा को जन्म भ्रण के लक्र में इस तरह उलझा देता है कि बिना विशिष्ट श्रम-साधन ले उसका उत्तरारो बाहर निकल आन दुर्लाभ बन जाता है।

आत्मघात को जब उसके इस सही अर्थ में लिया जाए तो नी कर्मों की घातकता का राही रूप रो गूलगांकन भी किया जा सकेगा।

कर्मों की आत्म-घातक शक्ति

यो दो कर्म आठ कहे गये हैं किन्तु इन में शिलिशाली वार कर्मों को धनधारी कर्म की सज्जा दी गई है। इनमें हैं ज्ञानावरणीय कर्म, दर्शनावरणीय कर्म, मोहनीय कर्म और अन्तराय कर्म। ये सुचिकरण कर्म होते हैं और एक बार आत्म-प्रदेशों से संलग्न होकर अति-कठिनता उर्ध्वात् गहरी साधना के बाद ही छूटते हैं। इन कर्मों की उत्तम-घातक शक्ति इतनी प्रबल होती है कि आत्म-विस्तृत होकर आत्मा अपने पतन को गहराई में लूटती ही बली जाती है।

ज्ञानावरणीय कर्म आत्मा की उस अनन्त ज्ञान शक्ति को आच्छादित कर देता है, जिसके बल से वह परमात्म-स्वरूप ली उपलब्धि तक सफलता से गति कर सकती है। जैसे हाथ ली रेखाएं गनुभ्य राखता रो अपनी आँखों रो देख राकता है, उसी प्रकार ज्ञानावरणीय कर्म के कथ्य हो जाने पर रारे विश्व के प्रत्यक्ष अवलोकन सहज बन जाता है। आवरण हट जाने पर केवल ज्ञान ला प्रकाश फैल जाता है, जिसके विद्यमानता में कुछ भी अगदेखा नहीं बच राहता है।

ज्ञानावरणीय कर्म के दूटने रो वरदु—रवरूप का विशेष बोध होता है। लोकेन वरदु के रमान्य रवरूप का बोध दर्शनावरणीय कर्म के दूटने पर होता है। एक को द्वारपाल कहा है तो दूसरे को आँखों की पह्नी। पहला आत्मा को परमात्म—दर्शन के प्रासाद—द्वार के बाहर ही रेख देता है तो दूसरा आँखों पर बन्धी पह्नी की दशा में रागान्ना द्विष्ट को भी बांध लेता है।

पिर उन्नाराय कर्म भी ऐसा धाराक है, जो आत्मा को अपना विकास साधने के साधनों में बराबर रोहे आटकाता रहता है, किन्तु इन तीनों घनघटी कर्मों से बड़ा होता है मोहनीय कर्म, जिसे कर्म—सेना का सेनापति मान गया है। इस मोह कर्म की आत्म—सातक शक्ति राब रो ज्यादा बढ़—चढ़ कर होती है।

कर्मों का सेनापति मोह

गोह—कर्ग के रक्खाव की तुलना गादक गदिरा के राथ ली जाती है। वह आत्मा को अपने नेतृत्व से हटा कर पर पदार्थों के साथ मोहित कर देता है। इसे कर्मों का सेन पति कह लीजिये अथवा कर्म वृक्ष की जड़। अगर सेनापति परास्त कर दिया जाए तो फिर सारी सेना को परास्त करना आसान हो जाता है अथवा वृक्ष की जड़ें काट दी जाए तो फिर उस वृक्ष को नष्ट करना रारल बन जाता है। यदि गोह के जीत लिया तो गान लें कि रारे विकारों लो जीत लिया।

वर्दीनान पर्याय की धृष्टि से देखें तो मानव जीवन में भी मोह ही मन और मस्तिष्क पर प्रमुखता से छाया रहता है तथा उसी ली लिप्तता चिकनी होती है, जब तक मोह का शासन आत्मा पर होता है, वह आत्मा आत्म-द्वात की रिथति में बाल्वत् निरतेज बनी रहती है। मोह की पराधीनता आत्मा का गढ़ा पतन होता है

यह मोह व्या है ? मोह याने मन्त्र अर्थात् जो मेरा नहीं है, उसे मैं मेरा करके समझूँ और जो मेरा है, उसे गूल जाऊँ—उसे ममत्या मोह कहते हैं। आध्यात्मिक धृष्टि से सोन्ने ते अनगत ज्ञान मेरा है, दर्शन गेरा है और आचरण की निर्गंलता गेरी है किन्तु इहें तो गूल जाऊँ और जो गेरा नहीं है यानी राम्यति गेरी नहीं है, राता और पुदगलों का सुख गेरा नहीं है, परिदार मेरा नहीं है और स्वयंशरीर भी मेरा नहीं है किन्तु भी इन पर पदार्थों में ममत्या झाल कर कर्मों के जाल में उलझता रहूँ यह मोह है।

इसे आध्यात्मिक हिंसा भी कह सकते हैं कि आत्मा इस तरह स्वयं अपनी ही—अपने ही लिकासकारी गुणों की घात करती रहती है। गोह—प्रत आत्मा रवयं की रक्षा गें भी अरागार्थ बन जाती है और रक्षा की तो बात ही क्यों करें वह गोहाकेश गें तो अपनी धारा करने लगती है।

मोहाविष्टा आध्यात्मिक हिंसा है

मोह कर्म की द सता में बंध जाना आत्मा का अपि परन है और अपेक्षित धृष्टि से यह आत्मा को आध्यात्मिक हिंसा है। मानव इस हिंसा को समझ नहीं पाता है और ऊपर से दूसरे कार्यों लो करते हुए वह गले ही अपने आपको अहिंसा का अनुगालक समझ ले, लेकिन अपनी रवयं की ठिरा को वह रोक नहीं राकहा है। अगर आप वारसाविक धृष्टि रो विनान करेंगे तो आपको ज्ञान होग कि शरीर की ऊपर से रक्षा हो रही है किन्तु अन्दर से आत्मा को हिंसा हो रही है। इसी तरह जैसे बाहर रक्षक तैनात होकर चारों ओर लाले हों, किन्तु किले के भीतर कोई इस तरह बन्द हो कि उसे आच्छा भोजन—वरन्त्र राब गिले लेकिन आजादी की हवा तक न लगे तो बताइये कि वह उसकी रक्षा है या हिंसा ?

मोह के धोरणम् अंधकार में सूर्य का प्रकाश तानिक भी नहीं दिखाई देता और आत्म का अंधकास्—ग्रस्त होना ही आत्मघात है। मोहविष्ट आत्मा उन्मत्त की तरह बन जाती है जिसे क्षग्नेपन के भान व कुछ भी ध्यान नहीं रहता। वह तो रांसार की ज़लता गें ऐरी सा जाती है कि धन—पैमव के लिये हाथ—हाथ, रत्नी—पुत्र के लिये आलाप विलाप तो अपने शरीर के लिये सारे सुख साधनों का संवय और यह सब मिले ही नहीं या मिल कर फिर ल्लो जाए तो उस खेद—दशा का कहना ही क्या ? आत्म—रत्न को खो देने की लोई चेतना नहीं, लंकिन कांच के टुकड़ों के लिये गाहविष्ट आत्मा जौरों मर मर जाती है।

आत्मघात की गम्भीर दशा

हिंसा का मूल प्रमाद में है और प्रमाद का मूल मोहदशा में होता है, जो सभी प्रकार के विकारों को आत्मा के साथ जोड़ती है। यह रांझनता जितनी घनी होती जाती है, उतने ही अंशों में आत्म—स्थात की दशा भी गंभीरता में बदलती जाती है। गोह के अपनी बनी अस्ति को अपने ऊपर भी दया नहीं आती है। स्वयं के स्वरूप को भी वह भूल जाती है तो स्वयं को शक्ति को नष्ट कर देने के लिये भी वह तैयार हो जाती है। यह कैसी विलग्नना है कि वह प्राणियों के प्राण—व्यतिरोपण के साथ अपने ही प्राणों की व्यतिरोपण करने लग जाती है।

गोह का प्रबल शन्तु ऊगर रो नहीं दीखता, किन्तु ज्ञान और दर्शन के आवश्यन इदि काफी हटाये जा सके तो कहीं इसकी धाराकला का ज्ञान होता है वरना ज्ञान के नेत्र इपने विकसित हो जाए कि जिनसे मतिज्ञान, श्रुतज्ञान और अवधिज्ञान तक प्राप्त हो जाए, किंतु भी मोह के उदय का ऐसा अन्धाड़ आ सकता है जो इन विकसित नेत्रों को भी पुनः अन्धात में पटक दे

जहाँ तक ज्ञान का ही प्रश्न है, वह देवताओं लै योनि गें भरपूर होता है, किन्तु मोह दशा में बैठे हुए होने के कारण वे अपने निजत्व का

मान मूले रहते हैं। बड़े-बड़े ऋषि और साधक भी मोह के थपेड़ों में कभी-कभी ऐसे पतित होते हैं कि जिनके पतन का कोई ओर-छोर नहीं रहता। विषय और कषाय, मोह के प्रवान सहायक होते हैं तथा आत्मा जब इनके अनुशासन ने रहती है, तब वह अपने चेतना धर्म से हट कर जड़-धर्म की अनुगामिनी बनी रहती है और यही आत्म-धात की गंभीर दशा होती है।

जितना मोह, उतना आत्म-द्वोह

यह समझ लें कि समाज-द्वोही और राष्ट्र-द्वोही तथा यहाँ तक कि गानवता-द्वोही भी आत्म-द्वोही को अधिक नीच की संज्ञा देनी होगी, क्योंकि इसका कारण है कि जो आत्म द्वोही होगा, वह कभी भी रागाज, राष्ट्र या गानवता का प्रेरी अथवा गत्त नहीं बन सकता है और जो मोह ली भद्रिया पिये हुए बेमान होकर आत्म-धात करता जा रहा है, वही आत्म-द्वोही कहलाता है। जो अपने आपसे भी नहीं चूकता, वह भला किससे चूकेगा ?

मोह और भद्रिया की परिणति भी एक सी ही होती है। मोहदशा का जर्यों ही आरंभ हुआ कि साधारण मात्रा निर्धारण होने लगती है और दिन प्रतिदिन मात्रा बढ़ती ही जाती है तभी मजा महसूस होता है। मोहनीय कर्म स्वभाव से ही विकना होता है और फिर जब उराका सनस्त्र बे-हिराब बढ़ जाता है तब वह अत्यन्त ही दुरुह बन जाता है। फिर उसे काटना चाह कर भी काटने में अत्यधिक शक्ति-नियोजन के बिना उसे काटना संभव नहीं बनता है। यह मोह-कर्म एक तरह से हिमाल्य की एवरेस्ट चोटी की तरह हो जाता है कि जिस आवरण को पार कर पाना एक भगीरथ कार्य बन जाता है।

धनधाती कर्मों के दल्कर में आत्म-धात का जो एक बार क्रम शुरू हो जाता है तो उस संज्ञाहीन अवस्था में सारी मर्यादाएं टूट जाती हैं और पतन की कोई सीमाएं नहीं रहतीं।

झूंगर हटाओ, आत्मा को उठाओ

घनधाती कर्मों के झूंगर जब हटेंगे, तभी आत्मविकास का मार्ग प्रशस्त बन सकेगा। आवरण है तब तक दर्शन नहीं होंगे—काश नहीं मिलेगा और आत्मा का उत्थान नहीं होगा। आवरण है, तब तक पतन है। इस पतन से उबरने के लिये नै तत्त्वों का ज्ञान करें, बंध को समझें तथा निर्जीरा की तरफ गुड़े तभी गोक्ष की गंजिल की ओर प्रगति हो सकेगी।

“ झूंगर हटाओ और आत्मा को उठाओ ” का सनाज में एक सामूहिक अभियान सा छिड़ना चाहिये, जो स री विषम औं पर प्रहार करता हुआ समतामय जीवन की दिशा में सबको आगे बढ़ाने के स्वरूप एवं आत्म-पोषक वातावरण की रचना कर सके।

॥१॥

आदर्शी और सहयोग का आश्रय

“बाधा पार करो, मारग संचरु, सेंगू कोई न साथ.....”

जब तक कोई आदर्शी समझ न हो, मार्ग पर गति नहीं होती। तथा सहयोगी न हो तब तक बाधाओं को पार करने का साहस नहीं जुटता। इही कारण है कि इस दृष्टि से परमत्मा की प्रार्थना ला आश्रय लिया जाता है। प्रार्थना करने का तात्पर्य जीवन—विकास के मार्ग पर परगाता के आदर्शी को राष्ट्रक जाना। एवं उनके ध्यान रो बाधाओं को पार करना चाना। गया है। ॥नव—जीवन का लक्ष्य है कि इस जीवन को पूर्ण बनाना अपूर्णता की सारी कमियों को दूर करके उसे पवित्रता ली चोली पर पहुँचा देना। पूर्ण पवित्रता तथा पूर्ण शक्ति की प्राप्ति हेतु रागान्वयतया गुष्ठि सहयोग की आगेका रहती है। कवि का रांकेत यही है कि मैं दर्शन के लिये आगे बढ़ता हूँ तो धनधारी लूंगरों की बाधाएं आती हैं और इन बधाओं में कर्मप साहस के साथ मैं आगे बढ़ सकूँ। इसके लिये मुझे किसी साथ ली जरुरत है। साथ का अर्थ यहाँ पर सहयोगी से लिया गया है। योग्य पुरुष का जब तक सहकार नहीं मिले तो सारे उत्साह के बावजूद भी यह आता। किनाइयों की आडवियों गें भटक राकती है और पूर्णता प्राप्त करने रो वाकेत रह राकती है। बाहर रो। देखाई देने वाली अटवियों तो किर भी कंटीले और पथरीले मार्ग को पार किया जा सकता है, किन्तु आत्मा के आन्तरिक विकास मार्ग की बाधाओं को रामङ्गाना, उनरो प्रतिक्षण रातक रहना और उनरो रांघर्ष करते हुए अप्रार बने रहना रवर्ग में एक दुष्कर कार्य है।

अपूर्णता से पूर्णता की ओर

प्रत्येक आत्मा की अपने—अपने वर्तमान विकारा की दृष्टि से शक्ति के सम्बन्ध में अलग—अलग स्थितियाँ होती हैं। यद्यपि यह सत्य है कि प्रत्येक संसारी आत्मा का जीवन न्यूगायिक रूप से अपूर्ण होता है, फिर भी इस अपूर्णता के धनत्व में उंतार विद्यनान रहता है। कई आत्माएँ अपने पतन को गहराई में ढूँढ़ती हैं तो कई निरन्तर ऊपर उठते रहने के अपने सत्प्रयास में उतानी उपनी अपूर्णता को काटती हुई ऊपर चढ़ती रहती हैं। गानव राम जा गे भी देखा जाए तो शक्ति का अन्तर स्पष्ट दिखाई देता है। किन्हीं की आत्मिक शक्ति अति प्रबुद्ध में दिलाई देती है और वह इतनी सुदृढ़ हो जाती है कि उनका जीवन अपूर्णता से बहुत दूर और पूर्णता के अधिक समीप आ जाता है। ऐसे प्रबुद्ध पुरुषों के लिये शायद राहकार की आवश्यकता न पड़े और वे स्वयं ही बाधाओं को अटाइयाँ पाएं करके पूर्णता की ओर बढ़ वले।

किन्तु राधारण रत्नर पर विकारानुभुव आत्मा के लिये जीवन में कुशल जहायोगी की आवश्यकता होती है, जिनके साथ से वह कहीं भी हरोत्साहिरा नहीं होती है और अपनी अपूर्णता को सफलतापूर्वक रापाप्त कर सकती है। अपूर्णता को की अधिकांशतः दुर्बलताएँ धेरती रहती हैं और यदि उन पर उंकुश का बल बराबर न लगा रहे तो वे अपूर्णता को और अधिक बढ़ा देती हैं।

जीवन की दो धाराएं

मैं आपके सामने इस परिप्रेक्ष्य में दो तरह के जीवन की कुछ बात बता रहा हूँ। पूर्णता के समीप पहुँचने वाले पुरुष अपने जीवन में एकाकी ही बल पहुँचे और उपनी गति गें। केरों के राहयोग की अपेक्षा न रखें। तब भी उनके लिये यह सम्भव होता है कि वे अपने जीवन की समस्त बाधाओं को जीतते हुए उसे प्रकाशस्तंभ के स्मान बना लेते हैं। प्रकाशस्तंभ स्वयं तो प्रलाशित होता ही है किन्तु औरों के लिये वो प्रकाश पुंज बिखेर देता है। ऐसा ही गहापुरुषों का जीवन होता है जो अपने आदर्श से सारे संस्करण का मार्ग प्रशस्ता करते हैं। ऐसा जीवन एक तरह से अपरिवर्तनीय आयुष्य वाला होता है, जिसे अदृट शक्तियाँ प्राप्त

होती हैं। महापुरुष किसी उपक्रम से घबराते नहीं और किसी भी उत्सर्ज से पीछे हटते नहीं। उनका आत्मिक साहस वज्र बन कर घनघोर बाधाओं को तोड़ता रहता है और प्रकाश रूप बन कर युग—प्रवर्तक बन जाता है।

परन्तु हर सामान्य जीवन में ऐसा कठोर साहस तत्काल उत्पन्न नहीं हो सकता है। उसके लिये प्रेरणा का ऊत चाहिये, आदर्श की जागा चाहिये और चाहिये किसी योग्य पुरुष ला सहयोगी हाथ, जिसे शान कर वह साहस जुटा सके अपने कर्म—पथ को निर्धारित कर सके और अपनी अपूरोता से लड़ सके। उसला परिवर्तनीय आयुष्य होता है जो कहीं भी टूट जाए और उसके काम को अधूरा ही छोड़ दे। यही करण है कि साक्षात्कार स्तर पर यदि तिळास के आशार को मजबूत बनाना है तो योग्य सहयोगी को अवश्य ही प्राप्त करना होगा।

सहयोगी की गवेषणा करें

शास्त्रों में निर्देश आया है कि परमात्मा के साक्षात् पर्शन करने के लिये योग्य सहयोगी की गवेषणा करें। वह सहयोगी कैसा हो—इसका भी वहां संकेत दिया गया है। बताया गया है कि निपुण एवं नियंत्रित बुद्धि वाला राहयोगी होना चाहिये। बुद्धि जब निपुण होती है तो वह गहरी और सुबुद्धि होती है और वैरी बुद्धि ही धैर्य के साथ प्रगति की ऊंचाई प्राप्त करने वाली और वरन्तु के वास्तविक स्वरूप को जानने वाली होती है। बुद्धि निपुणता के साथ नियंत्रित नहीं हुई तो वह आंह ने गतवाली बन कर दूरराहरा कर राकती है और पथ विभ्रग बन राकती है, लेकिन नियंत्रित बुद्धि रात्राहरा एवं धैर्य के साथ खयं भी सुस्थिर रहती है और साधी को भी सुस्थिर बनाये रखती है। अपने निपुण एवं नियंत्रित बुद्धिशाली सहयोगी के जो आत्मा अपने सामान्य स्तर पर प्राप्त करले और उसका सहयोग पा ले—उसके लिये बाधागारा मार्ग भी सरल बन जाता है।

ऐसे योग्य राहयोगी की गवेषणा आरान काग नहीं है। योग्य राहयोगी के चुनाव में भी योग्य परख—बुद्धि की आवश्यकता होगी, बल्कि

उसके मानवक परमात्मा के आदर्श की पुलना में देखना और समझना होगा।

आदर्श के प्रकाश में सहयोगी

परनात्म स्वरूप को भलीभी हृदयोंगम करना। पहला काम है और उसके बाद उस स्वरूप को जब अपने जीवन का आदर्श बनाया जाएगा, जो उस आदर्श को प्राप्त करता सके— ऐसे योग्य सहयोगी का चित्र स्पष्ट करना होगा। ऐसा योग्य सहयोगी गुरु ही हो सकता है लेकिन जब तक आदर्श रूपष्ट नहीं होगा। और ऐसे विवेक जागृत नहीं होगा, वह तक गुरु की अवधारणा आगे की हो सकती है।

आप अपना गन्तव्य स्थान निर्धारित करते और उसके बाद आवश्यक विटेल का जनाव हो तथा हर किसी से उस गन्तव्य स्थान पर पहुंचने का रास्ता पूछते रहें त त हर किसी के बताये रास्ते पर चलते रहें तो क्या आप उस गन्तव्य स्थान पर पहुंचने की आशा कर राकरो हैं ? यद्यपि गन्तव्य स्थान राही हो, पिर भी योग्य राहयोगी के उभाव में उपकरों गति वर्थ हो सकती है। उरी प्रकार गोविन्द तक पहुंचने में गुरु के स्थान को पहला क्रम देना ही होगा।

जब आदर्श ऊंचा हो और सहयोगी सच्च हो तो वैसी स्थिति में अपूर्ण जीवन के पूर्णता को ओर सफलता से अग्रसर होने में कोई आशंक नहीं रह जाएगी। तब आदर्श और सहयोग आवेकारोता जीवन के लिये भी विकारा के उभायक—रातंभ अवश्य बन जाएंगे। यही कारण है कि योग्य सहयोगी की विवेषणा को सर्वाधिक महत्त्व दिया गया है तथा उसके लिये भी नियुण एवं नियंत्रित बुद्धि का होना विशिष्ट गुण माना गया है।

आन्तरिक शत्रुओं से संघर्ष में

आध्यात्मिक रणभूमि में जो साधक उत्तर तुका हो और जिसे अपने सामने सेनापति मोहनीय कर्म की अधीनता में खड़ी कर्म—समूह की सेना दिखाई दे रही हो, वैसे आदर्श—न्मुख सालक को जब योग्य राहयोगी (पुरु) का राबल रहयोग गिल जाए तो निश्चय ही वह उनरो

कहिन संघर्ष छेड़ कर अपने आदर्शों के ओर प्रगति कर सकता है। अपने ही शुगाशुग योगों में से उपार्जित कर्मों ला क्षय करना किसी भी रणगूनि में बढ़े—बढ़े योद्धाओं से अकेले लड़ने से कम शौर्यपूर्ण नहीं होता। अपने विचारों में और उपनी वाणी में और उपनी राधना में प्रतिवल ये योद्धा हर रामव विद्ध छालने को रागने आते हैं और उरी राग उनके घनत्व को समझ कर अपने सुदृढ़ संयम से उन पर प्रहार लगना और उन्हें पत्तस्त करते ज ना ही आध्यात्मिक रणभूमि ली सफलता कही जाती है।

जह ये आन्तरिक शानु राधक की आध्यात्मिक शक्ति जो दबोचने के लिये आगे बढ़ते हैं, उस वक्त निपुण अर्थ—बुद्धि वाला सहयोगी उगर साधक का अतिमिक रथ चला रहा हो तो फिर साधक पैरों बाणों से इन शत्रुओं को प्रबल वेर से छेद सकेगा।

यह संघर्ष है जड़ और चेतन का

जह वक्त आपकी धृष्टि अंगुखी नहीं बने, वब वक्त भले ही यह रांधर्ष आपको छोटा—रा॥ पिखाई दे, किन्तु इरा विवार में एक प्रकार से शास्त्रों का समूचा रूपक समाया हुआ है। योग्य सहयोग की अपेक्षा उस आध्यात्मिक स्तर पर हो नहीं, बल्कि इस विशद् विश्व में जीवन—रांचालन करते हुए पग—गग रहती है।

इस लोक के अन्दर छः प्रमुख तत्त्व माने गये हैं, जिन्हें एक दृष्टि रो लोक—रांचालक कहा जा सकता है। ये हैं पांच जो अरितकग्रथ याने धर्मास्तिकाय, अधर्मास्तिकाय, आकाशास्तिकाय, पुरुषलास्तिकाय तथा कालस्तिकाय इवं छठ तत्त्व हैं जीव—चैतन्य। यहले पांच अजीव हैं। अजीव वह जो चेतनारहित होकर सुख दुःख को वेदे नहीं, पर्याप्ति, प्राण, योग, उपयोग तथा कर्म—रहित और ज़़ल लक्षण वाला है। वहां जीव का लक्षण वेतना व उपयोग युक्त सुख दुःख का वेदक, पर्याप्त, प्राण जा धर्ता, आठ कर्मों का कर्ता और भोक्ता तथा शाश्वत होता है। जीव का कभी विनाश नहीं होता तथा ज्ञान, दर्शन, सुख और वीर्य के भावों में वह विगत काल में जीरा रहा, वर्तमान में जी रहा है और आगामी काल में रादैव जीता रहेगा।

पहले के पांच तत्त्वों के आधार पर रासा रांरार बना है और इनके साथ सम्बन्धित होकर यह छठा तत्त्व उसे चला रहा है। इस तरह यह छः सिलाहियों का लोक है। पांचों जड़ तत्त्व गरि, स्थिति, अवकाश, वेतन और रामय के प्रतीक हैं जो छठा वेतन तत्त्व रांचालक है। यदि निरपेक्ष भाव रो रांचालन हो तो दोनों तत्त्वों में सामंजस्य छैन कर संसार गौतिक एवं आध्यात्मिक दोनों प्रकार जी उन्नति कर राकता है, किन्तु दुर्बलता चेतना शक्ति की यही होती है कि जड़ में उसकी अपेक्षा और असक्ति पैदा हो जाती है— वह उनमें व्यामोहिता हो जाती है, तब वैसा मोह अन्य सारे कर्मों ले नहीं। देता है और वेतन को जालिना बना देता है। इसे ही जीवन का पतन कहते हैं कि जो रांरारी जीव को रांरार में उलझा देता है, उसे सिद्ध नहीं बनने देता।

रिष्ट बनने के लिये इसी प्रानावरथा रो वेतन को रांधर्ष करना पड़ता है जड़ मोह से संबद्ध कर्मों से लड़ना पड़ता है। इसी कारण आध्यात्मिक टिळास जड़—चेतन के संघर्ष से ही आरग्न होती है।

लोक-संचालन की गतिविधि

जैग—दशग ईश्वर हारा सृष्टि की रचना की मान्यता ले इसी उपाय पर नकारा है कि आत्मा ही परमात्मा बनती है— अलग कोई शाश्वत ईश्वर नहीं होता। और परमात्मा बनने के बाद वह संसार से पूर्णतया उसबद्ध हो जाती है। संसार का संचालन इन छहों तत्त्वों द्वारा होता है।

धर्मस्तिकाय तत्त्व की खोज अभी तक पूरी गिजान की गूमि पर नहीं आई है। गति के गाध्यग रो इराकी खोज हो रही है और 'ईथर' त्रिव इसी से सम्बन्धित माना जा सकता है। किन्तु पूर्ण प्रमुख इन तत्त्वों का जो सर्वांग स्वरूप देखा है, वह शास्त्रों में गृधा गया और उसी पर गुरु—परमपरा में चिन्तन—मनन होता आया है। जधर्मस्तिकाय स्थितिसूचक है जो आकर्षण तत्त्वों से सम्बन्धित है और आकाशस्तिकाय के आधार पर तो रासा उपकाश—विज्ञान हिका है और उसाँे नड़ी

खोजे लल सही है। लोक सिंपर्फ यह पृथ्वी है नहीं बल्कि असंख्य पृथिव्यां हैं जो अवकाश में स्थित हैं। पुद्गलास्तिकाय आपने स्कंध, देश और प्रदेश से सारी हास्तिगत रचना की नूल है। जो भी इन्द्रियगम्य विषय है, वे राब पुद्गलों द्वारा रचित हैं। काल इन राबगें परिवर्तन का प्रतीक है जो पुद्गलों को एक रो दूरारी अवश्या गें बदलता रहता है। इस सारी लोक संयालन की गतिविधि में शरीर रूप पुद्गलों से सम्बद्ध होकर चेतन सक्रिय बनता है। जो पांचों जल तत्त्वों के मेल से रांगार चल रहा है, उरो प्रकृति का रूप दिया जाता है तथा उरागें जैगिक-क्रियाएं रांगजरय बिठाती और रांघष करती हुई नई रचना को जन्म देती हैं।

इन्हीं 6 तत्त्वों के अन्तर ऐसे समग्र विश्व का ज्ञान विज्ञान और कला कौशल समाटिष्ठ है। इनसे परे कोई तत्त्व नहीं है। ऐसे तत्त्वों के गाल्यग रो रांगार का दृश्य उपरिथित हो रहा है, जिरागें चैतन्य रागरूप यह आत्मा भी अपना खेल खेल रही है। आत्मा ला खेल अधिकतर पुद्गल के साथ बलता है, जो जल है। जल स्व पर को नहीं समझता। और वेतन स्व पर को समझता है। इस तरह दोनों विपरीत तत्त्व हैं।

चैतन्य देव के दर्शन

इस सृष्टि से सर्वाधिक विशिष्ट तत्त्व चैतन्य है। कारण कि इसी तत्त्व का चंगकार चारों ओर दिखाई देगा। ये लिभिन्न आकृतियां इसी चैतन्य देव की विभिन्न कृतियां हैं। चैतन्य की गूल रूप में शक्ति अनन्त, बुद्धि अनन्त और गति अनन्त, किन्तु यहीं बाधा बढ़ी है कि वह जल में अपने को रवा पवा कर इतना जल ग्रस्त बन जाता है कि वह श्रीहीन हो जाता है। फिर सब्दे चैतन्य देव के दर्शन करने के लिये इस बाधारूप दीप्ति या लूंगर को काटना पड़ता है।

ये बाधा रूप दीप्ति या लूंगर किसी और नहीं, रख्यां चैतन्य ने ही अपनी मूर्खा के कारण अपने ही विरुद्ध खड़े किये हैं। यही इस चैतन्य की विकृति है— उसकी गफलत है। जल रूप पर—पदार्थों लो

उराने आपना रागझा, उन्हें आरक्षि डाली, ते आरे और उरारो चिपट नये। वैतन्य की मूर्क्ख बढ़ती गई और चसका मूल रूप लकड़ा गया, वह प्रकाश से अंधकार की ओर बढ़ता गया। वह अपनी संज्ञा को भी मूलता गया और उराने पुदगल—होह को ही जीवन का रार समझ लिया। यह चैतन्य की अज्ञान—दशा है और इसी अज्ञान दशा रो चारों ओर जड़ का राग्मान्य दिखाई देता है। चेतन जड़ के आवरण में मूर्क्खग्रस्त होकर तोजहीन बन गया है। इसी कारण अध्यात्म शास्त्र कहते हैं कि इरा उवरण को हठा कर चैतन्य देव के दर्शन करना ही जीवन का प्रधान साध्य होना वाहिये।

विकारों की भयंकर अटवी में फंसी आत्मा

संसारी आत्माओं के चैतन्य रूप की जड़—ग्रस्त मूर्क्ख से जो लिकट रिथति बनी हुई रहती है, उससे उबरने के लिये इसी कारण निपुण राहयोगी के राहयोग की राग्मान्यता अनिवार्यता गहराया ली जाती है। ज्यो—ज्यो लिखी आज्ञा गें ज्ञानदशा का विकारा होता है। त्यों त्यों वह अनुभव करती है कि विकारों की भयंकर अटवी में वह फंसी हुई है जब तक वह उसमें से सकुशल नहीं गिकले तब तक उराकी उन्नति का द्वार नहीं खुल राकेगा। ऐसी रांकटापन्न परिरिथिति गें यदि योग्य राहयोगी उरा आत्मा को गिल जाए तो उराका राहरा हिंगुणित हो जाएगा। यथा उसका उस अटवी में से निकास भी अ सान बन जाएगा।

सांसारिक व्यवहार में भी आप जानते हैं कि साधारण रूप से सर्वत्र सहयोग की ज़रूरत महसूस की जाती है। परिवार के घटक को ही देखिये कि वह एक तरह रो राहयोग का ही रूपक होता है। इसी तरह राग्मानिक रतर पर राहयोग के आधार पर ही रांरार के रारे कार्य बलते हैं। सांसारिक जीवन में भी जहाँ सहयोग दूर्ता है, वहाँ ईश्वरी द्वेष में बढ़ोतारी दिखाई देती है। उसी तरह आत्मोन्नामि के मार्ग में सहयोग नहीं मिले तो आत्मा सारी सदिक्षण के बालजूद भी विषय और कषायज्जन्य विकारों में फंस जाती है।

विवेक और चेतना का मार्ग

परगात्मा का आदर्श और राद्गुरु का राहयोग जिसा रांगारी आत्मा को समुचित रूप में प्राप्त हो जाता है, निश्चय मानिये कि वह आत्मा विवेक और चेतना के मार्ग पर स्थिर गति से चल पड़ती है। वह जागृत बन कर अपने आपको विकास की जकड़ से छुड़ाती है तथा कर्ग रागूह को नष्ट करने लगती है। अन्तरिक शङ्खाओं रो रफल राघव करती हुई ऐसी आत्मा अपनी समूर्ण वेतना के समय विकास की देश में निशील बन जाती है।

चाहे संसारिक जीवन हो अथवा आध्यात्मिक जीवन— सब जगह यदि निपुण बुद्धिवाला सहयोगी मिल जाए तो मनुष्य विवेक और चेतना के गार्ग पर चल कर रातीगीण विकास को राम्यादित कर सकता है। जिस समाज में निपुण बुद्धिवालों का सहयोग मिल जाता है, वह रागाज राष्ट्र को प्रभ वित करता है और ऐसे राष्ट्र गिर कर विश्व के बातावरण को रुक्खार राकते हैं।

ज्ञानीजनों ने इसीलिये कहा है कि यदि भगवान् के दर्शन करना वाहरों हो तो पहले योग्य राहयोगी को गठेषण करो क्योंकि उन्हीं के राहयोग रो त्रुम्हं परगात्मा के आदर्श का भी राम्यक ज्ञान हो सकेगा। गुरु बिंगा गोविन्द का पता ही कैसे लगेगा ? और यह नोविन्द और कोई नहीं, स्वयं का वैतान्य स्वरूप है, जिसे शुद्ध और निर्गंतु रिति में यदि देख लिया तो रागड़िये, परगात्मा के ही दर्शन कर लिये।

आदर्श एवं सहयोग से सुदृढ़ता

आदर्श एवं राहयोग के आश्रय रो आत्मा में ऐसी सुदृढ़ता उत्पन्न हो जाता है कि विकट रो विकट परिस्थिति में भी उताका चित वलायगान नहीं होता है।

इस प्रकर के आदर्श एवं सहयोग से प्राप्त सुदृढ़ता प्रत्येक विकास नुख आत्मा के लिये न रोक वांछनीय है बल्कि उसे अपनी चेतना एवं साधना ह्वारा प्राप्त करने हेतु जागरूक बनाना चाहिये।

अमृतपान या विषपान

“ जेहने पिपासा हो अमृतपान नी, किम भांजे विषपान ”

अभिनन्दन नगवान् की प्रार्थना करो समय यही कहा जा रहा है कि यद्यपि उनके दर्शन बहुत ही दुर्लभ है, फिर भी उनके दर्शनों ली अतुलनीय प्यास है। किन्तु उसके साथ ही कवि कहते हैं कि प्रार्थना का शान्तिक उच्चारण मात्र लर्णु से दर्शन नहीं हो जाएंगे। दर्शन हो—दर्शन हो, यह कहा जावे किन्तु उसके उनुराग मावना और राधना का रांथोग नहीं हो जो उस ववन गात्र रो दर्शनों को आशा रखना सर्वथा दुराशा मात्र ही होगा।

भगवान् के दर्शन की न्यास का जो उल्लेख किया गया है, वह बाणी मात्र का उपक्रम नहीं है बल्कि एल कठिन पराक्रम ला मार्ग है। जो अपनी आत्मा के दर्शन कर लेता है, वही परमात्म—दर्शन है वथा अपनी आत्मा के दर्शन रो अभिप्राय यह है। के अपने मन, ववन, कर्म के सत्त्वास से अपनी आत्मा को उसके मूल निर्मलात्म स्वरूप में प्रतीक्षित कर दी जाए। तात्पर्य यह है कि भगवान् के दर्शन के लिए मन, वचन एवं कर्म तीनों का सत्त्वास आवश्यक है।

समग्र पुरुषाश्व की ऐसी वृत्ति जाले पुरुष के लिए ही कहा गया है कि वह पुरुष अग्रतपान की अशिलाषा रखने वाला होता है और यदि उसे कोई विषपान का सासा दिख वे तो क्या उसको अमृतपान की प्यास शांत हो सकेंगी ?

मन, बाणी और कर्म का संयोग

प्रार्थना के रांकेत का यही अर्थ है कि केवल वाचिक निदान

किसी भी समस्या का सही निदान नहीं होता है। समस्या का समाधान मन, वाणी और कर्म—तीनों के एकरूप संयोग से ही प्राप्त किया जा सकता है। कोई प्रार्थना करने वाला जोर-जोर से गलर उस ला उच्चारण कर ले तथा दर्शन—दर्शन की ४८ लगा। दे—तो क्या इसी क्रिया गात्र से उसको भगवान् के दर्शन रांभव हो राकेंगे? ऐसा रांभव नहीं है। आप सर्पदंश को दवा जानते हैं और किसी को सांप ने काट लिया, तब उसके सामने सिर्फ दवा का उच्चारण करते रहे हो क्या रांभदंश ठीक हो जाएगा?

आकेली वाणी से कुछ नहीं होता। उस वाणी के साथ गन को जोड़ना होगा तथा भायना पूर्वक राधना वा कर्गिठ गाय अपन ना होगा। तब कहीं कार्य की सम्बन्धता बनेगी। शास्त्रिक कला का विस्तार भी हो सकता है कि कोई कई ग्रन्थों का अध्ययन कर ले, दार्शनिक विचारों को जान ले तथा आत्मा परगात्मा के रघुरूप को भी रागझ ले, किन्तु तदनुकूल गानरिक चिन्तन एवं कर्गिठ आचरण गे यदि वह प्रवृत्ति नहीं करे तो शास्त्रों का समग्र अध्ययन भी उसके जीवन विकास वा कारण नहीं बन सकेगा। मन, वाणी और कर्म के सफल संयोग के लिए कोई भी मजिल ऐसी नहीं, जिसे पाया जा सके।

वाणी भी कैसी हो ?

तीनों के संयोग से भी पहले यह विशेष विचारणीय तत्त्व है कि यद्यं वाणी भी कैरी हो ? क्या कैरी भी वाणी से काग बन जाएगा ? ऐसा तो रांसारिक व्यवहार गे भी नहीं होता है। वाणी भीठी और नम्र हो और उससे भी कृप्त सब्दी नहीं हो। तो कोई भी काम नहीं बन सकता है। छूटी बोली से विरोध ही दैदा होता है। एकान्तिक वाणी बोले तब भी हन ही प्रकट होता है, जिससे समस्या नहीं सुलझती। वाणी का जीवन में बहुत बड़ा महत्व गिना जाता है और वाणी को एक प्रकार से इसका ब्रतीक गाना जाता है कि बोलने वाल हड्डीकरा गे गन में क्या विवार रखता है तथा उस वाणी के अनुसार वह उसका कार्यरूप कैसा दिखायेगा ?

अतः वाणी का अध्यात्मिक दृष्टि से तो और भी अद्वितीय महत्व है। इसी महत्व को सुल्लिखित एवं अत्मापिमुखी रखने के लिए जै-दर्शन का नियताद है। नियवादी वस्तुस्वरूप की सभी अपेक्षाओं लो ध्यान में रखकर वाणी का उच्चारण करता है।

नियवादी एकान्तवादी नहीं होता

दार्शनिक दृष्टि से विवेचन आता है कि वाणी का प्रकटीकरण तीन प्रकार से किया जा सकता है। एक मनुष्य बोलता है सदैव और दूरात् बोलता है शाश्वत्, केन्तु तीरात् बोलता है रथात् कर्थचित्। वरथु-रवरूप की नजारे रो जब जीनों के कथनों को बोला जाता है तो उसकी तीन अवस्थाएं होती हैं दुर्गय, सदनय और प्रमाण। सदैव या अर्थ है सत् एव अर्थात् सत् यही है, जिसका अणिप्राय होता है एकान्तवाद। जो कहा जा रहा है, वही रात्य है—यह एकान्तवादी वाणी है। वरतुरयरूप की राहीं रिथति होती है कि जाहं एकान्तवाद है, वहाँ पुर्णा सत् नहीं है।

वेरी भी वरथु उच्चवा पत्तव का रवरूप एक-पक्षीय नहीं होता। उसके कई पक्ष और पहलू होते हैं, अतः जो उन सबको व्यान में रखकर बोलता है, वह कर्थचित् शब्द का ही प्रयोग करता है, क्योंकि जो पक्ष वह रख रहा है, उसके रिवाय भी उराले कई पक्ष होते हैं। वेरी आवश्य में एक ही पक्ष पर हठ कैरो किया जा सकता है ? दुर्गय और सदनय का यही अन्वार है। जैनदर्शन ॥।। नियवाद सभी पक्षों को देखने की प्रेरणा देता है और सभी सत्यांशों को मिला कर सत्य का गूर्ण स्वरूप देखने की चेष्टा करता है—इसी कारण नियवादी कभी एकान्तवादी नहीं होता। यीतराग देय के चर्चनों में आरथा रखने वाला 'ऐरा' भी हे राकृ है वाणी ले इस रूप ले हे बोलपा है। 'ऐरा' ही है—थठ कटने में एकान्तवादी हठ प्रकट होता है और ऐसा हठ करने पर जो उस कथन में सत्यांश होता है, वह भी असत्य का रूप ले लेता है। दुरग्रह है, वही दुर्गय है। मैं कहता हूँ उसाँगे भी रात्यांश है और जो दूरारे कहते हैं, उसाँगे भी रात्यांश हो राकृता है—गह रादनय की भाषा है।

वैचारिक सामंजस्य की दिशा

रागंजरय की दृष्टि से जैनदर्शन ले दो शिद्धांत अङ्गिरा और अनेकांतवाद (नयवाद) आगामित और विचारगत रागंजरय के रूपक हैं। अहिंसा के सूक्ष्म रूपों को भी जो आपने जीवन में उतार कर बलता है, वह आचरण के किसी भी संघर्ष में नहीं आता है क्योंकि वह किसी को किसी भी रूप से कष्टित नहीं करता। यहीं 'जीओ और जीने दो' का शिद्धांत कहलाता है। आप जीओ किन्तु इस तरह कि दूरारे के जीवन में आप कहीं भी व्यवधान नहीं बनो। जैसे आप अपनी ज्ञान की आँखें फैलाकर जीरो हो, उसी तरह आप अपनी तारक से अंधों को भी जीने का अवसर दो— यही सब्जे जीवन की शिक्षा है। इस प्रकार के जीवन को जो आपने विचरण में सजोते हैं, वे स्वरातादी कहलाते हैं।

राज्यवादी इसी प्रकार वैचारिक रागंजरय का सूक्ष्मार होता है। गुड़ो विचार करने का अशिकार है तो दूसरों के विचारों का रागादर करने का भी मेरा कर्तव्य है। यही सञ्चयवादी सोचता है। 'वादे वादे जाएं तो तावबोधः' और इस दृष्टि से सञ्चयव दी सभी विवारों का मथन करता है और उसमें से सत्य का नवनीत निकालता है। मैं विचारता हूँ— यही सत्य है और जो दूसरे कहें— उसका तिरस्कार किया जाए तो यह भावना प्रभु के गार्ग की भावना नहीं है।

विचार और आचार का तालमेल

आत्मा ववन की दृष्टि से या केवल बौद्धिक कला के प्रयोग से प्रभु के पर्शन की रट लग। ले और रह भी राह ले। के आत्मा और परनात्मा का वास्तविक स्वरूप समान है, लेकिन ह्वद्युसार अपने आचरण की पद्धति एवं श्रूत्खला का वह गिर्धारण नहीं करे तो वैसी रट भी दुनिया का प्रतीक बन जाती है क्योंकि नीति रह है लि विचार और आचार का तालमेल बैठना ही चाहिये। यदि विचार के अनुसार ही जीवन में आचरण नहीं है तो केइ भी आर्थिक उपलब्धि लैरो प्राप्त होगी, क्योंकि उपलब्धि तो साधना का फल होता है।

प्रश्न की ग्रार्थना में इस कारण यह संकेत दिया गया है कि

अगर ऐचारिक नयवाद के राश्य भी इन्हान आचरण के दुर्निय लो रखता है तो वह अमृतापान के स्थान पर विषपान जैसा ही बन जाता है। अमृत चिचार में भी हो तो अमृत आचार में भी होना चाहिये। वस्तु के रामी पहलुओं का रवरथ शीरि रो जब विनान केया जाएगा तो उससे आचार का पहलू क्यों वंचित रहेगा ? सद्गय के साथ अगर प्रगाण को ग्रहण किया जाता है तो उसके हारा वरतु का रागाग्र रवरथ ही ग्रहण होगा। जब एक पहलू पर विवार करें तो यह रवाभाविक है कि उस स्मय वह पहलू प्रमुख रहे किन्तु इसका यह अर्थ नहीं होना चाहिये कि दूररे पहलू गैण रूप रो भी व्यान गे नहीं रहें। दूररे पहलुओं के व्यान में रहने से ही प्रमुख पहलू पर भी सदाशयता से विचार होगा और उसाँे कभी भी दुराग्रह जना नहीं लेगा। रानी पहलुओं की अपेक्षा से ही वस्तु के स्मुद्वय रवरथ का जो ज्ञान होगा, वही ज्ञान रात्य की ओर ले जाने वाला भी होगा।

आत्मा के समग्र रूप का दर्शन

प्रामाणिक साधक सदा प्रमाणपूर्वक ही सब कार्द करता है और उसी प्रमाण-नय के साथ आत्मा के समग्र रूप का भी दर्शन करता है। आत्मा के स्वरूप को भी कथनित् शैली में देखना होगा। आत्मा वर्त्मान पर्याय रो आत्मा। कथनित् रात् है तो कथनित् आरात् भी हो सकती है। द्रव्य की धृष्टि रो एक रूप है तो पर्याय भी द्वृष्टि से दूसरा रूप भी हो सकता है। आत्मा के एक ही गुण पर चिन्तन करें और दूसरे गुणों को भुला दें तो वह चिन्तन भी अधूरा और अरात्य हो सकता है। एक गुण का चिन्तन भी अन्य गुणों की अपेक्षा रो किया जाना चाहिये।

आत्मा के एक गुण के दर्शन के राग्य भी उन्य गुणों जो अवकाश रख कर यह कहा जार कि देखिये, आत्मा ज्ञानवान् है ज्ञान उराकी शक्ति है, लेकिन इराकी रार्वजनिक प्रतिपादन इरा राह किया जाना बाड़िये छे आत्म। गे दर्शन की शक्ति है, वारित्र की शक्ति है और अन्य गुणों की शक्तियाँ हैं और इन सभी शक्तियों के साथ ज्ञान की शक्ति का भी सम्बन्ध है तो ऐसा प्रतिपादन नयवादी होगा,

एकान्तवादी नहीं। एक गुण का समादार करें व दूसरे गुणों ला तिरस्कार करें या न मानें तो वह एकान्तवाद होता है। ज्ञान की मात्रा का जब विवेचन करेंगे तो मुख्य वस्तुज्ञान होगा। जब अन्य गुणों का नग्न करने जाएंगे तो आत्मा की शक्ति का जो ज्ञानी रूप है, वह उस समय विचार में गौण बन जाएगा। लेकिन सभी दृष्टियों से उसका प्रतिपादन करेंगे तो वह नये स्थिति होगी।

आत्मा की सामग्री रिथाते का ज्ञान करना एक प्रकार रो अगृतपान का तरीका है। आप इरको एक गोले उदाहरण रो रागझों। किसी को रजोहरण की जानकारी करानी है तो उसके लिये रजोहरण की एक कली दिखाकर बात्या जाए कि ऐसी कई फलियों को गिजाने व बांध देने रो रजोहरण तैयार हों जाता है। गूँज रजोहरण को समझाने हेतु यह एक फली एक माध्यम के रूप में बन गई। यह माध्यम अन्य फलियों की अपेक्षा रला कर चलने से प्रमाण एवं सदनय वाला हुआ। अब किसी जो केवल एक फली की ही जानकारी लेनी है और उरो एक फली दिखा कर कोई कहे लि यही रजोहरण है तो वह सद्गय नहीं है क्योंकि एक फली गूर रजोहरण नहीं, रजोहरण का अंग मात्र है जब एक फली ही रजोहरण कही जाएगी तो उराका अर्थ निकलेगा कि अनेक फलियाँ रजोहरण नहीं हैं और वैरी रिश्ते में एक फली के (एक अपेक्षा रो) रजोहरण होने का सत्य भी झूल हो जाएगा। इसी नयवाद ली नजर से आत्मा के समग्र रूप ले दर्शन करने की विनान वृति बनने वाहिए जो समग्र रात्रि की दिशा में गतिशील हन राके।

विचार स्थिति में सच्चाई हो

जब तक आत्मा के विकास में परिपूर्णता प्राप्त नहीं हो तब तक यह नहीं कहा जा सकता कि उराने जो कोई विचार प्रकट किया है, वह पूर्ण रात्रि ही है। अपने—अपने विकास के क्रम एवं अन्तरशक्ति के प्रकटित होने के अनुसार प्रत्येक आत्मा ली विचार प्रामाणिकता भी भिन्न होती है फिन्हु इस अवस्था के

साथ कि उसमें न्यूनाधिक अपूर्णता हो है ही। जब यह अपूर्णता दुर्बलता की परिचायक है और इस दुर्बलता के साथ रहते अगर कई स्वयं के विचार को पूर्ण सत्य मान कर और दूसरों के विचारों का तिरकार करके छलता है तो उसका वह एकान्तवाद झूठा तो होता ही है गगर दम्भी भी बन जाता है।

इस कारण जैसी भी विचार शक्ति उस आत्मा के पास है। उसकी मौजूदगी में विचार स्थिति में अवश्य ही सच्चाई होनी चाहिये अपनी रोग्यता के परिमाण में यदि विचार में सच्चाई होगी तो उस आत्मा की वाणी अधिकाधिक प्राप्तिक बनती जाएगी।

इरा द्वितीय परगातग—दर्शन यानी आत्म—दर्शन की जिरालो पिपासा है, वह दर्शन शब्द का उत्पादन करे, यह ठीक है लेकिन उसके साथ ही अनार से दर्शन करने योग्य जितने भी आत्मिक गुण हैं, उनको वह सच्चाई समझने तथा उन्हें प्राप्त करने के लिये प्रयास करे तभी यह मानना चाहिये कि वह आत्म—दर्शन की दिशा में अवश्य ही आगे बढ़ रहा है। उसके विचार और आचार राद—नयवादी हैं। तब वह यह भी रोकेगा कि अभी जितने प्रगाण और बुद्धि के विकास की आवश्यकता है उसके अभाव में आत्म दर्शन का समग्र रूप शले ही प्रकट न हो, किन्तु विकास की पूर्णता के साथ दर्शन ली राग्नता भी प्रकाशित होती जाएगी। आवश्यकता है कि रादनय के राथ विचार रेखांति में पूरे तौर पर सच्चाई हो, जो आचार क्रग में भी निरन्तर प्रवाहित होती रहे।

अमृतपान क्यों : विषपान कैसे ?

वरतु या रात्रि रवरूप के ज्ञान में यदि रादनय के गर्ग पर बले यानी विचार समन्वय की द्वितीयी तो उसके साथ आचरण की दिशा अवश्य ही स्वस्थ बनेगी। विचार और आचार की इस प्रक्रिया ली उपगम कहि ने अमृतपान रे दी है। जो ल्यक्ति एकान्तवादी हठ को छोड़ कर नगवाद के आधार पर वरतु को उसके सभी पक्षों की द्वाष्टि रे जानना वाहर है और उसी के अनुरूप जो उपने आवरण के भी सत्य

का अभिमुखी बनाता है, वह व्यक्ति एक दृष्टि से अपने श्रेष्ठ दिनां एवं आचरण से अपने जीवन में अमृतपान करता है।

इरारो विपरीत वृत्ति बाले व्यक्ति के लिये यह कहा जाना उपर्युक्त होगा कि वह शारीरिक आयु रो जीवन जीते हुए भी एक दृष्टि से जहर पीता है। मनुष्य जीवन भी मिले और जीवन के उत्थान का प्रयास न किया जाए, बालें बेमान होकर अज्ञान दशा में दिचार से पतित बने या आचरण से विकृत बने तो इसे लिष्टपान ही लहाना चाहिये प्रामाणिकता छोड़ कर वह जीते हुए भी जहर पीता रहता है। दुर्निय का गार्भ जाहर का गार्भ ही होता है प्राण और कर्तव्य रो हीन बन कर कोई शांति रो अशांति की ओर तो सत्य से उसत्य की ओर ही अधिक गैरेगा। विष पीने से मौत होगी

यह हकीकत है किन्तु जो ज्ञान दशा में पड़ा रहे, वह मैत लो भी तो कहां रगज्ञता है ?

आत्मा की मौत बुरी होती है।

अपने रबरूप रो तो आत्मा अगर है, किन्तु अपने पतन ली दृष्टि से आवरण की अपेक्षा से उसकी बार बार मृत्यु होती है। मृत्यु जीवन की विपरीत दशा का नाम है और आत्मा में उपने मूल स्वरूप तथा आन्तरिक दर्शन का जीवन ध्युंधला पछ जए या दब जाए तो सादी शाषा में उसे आत्मा की मौत ही तो कहेंगे। उठने ली जीवन तक न रहे तो वह गौत नहीं, तो क्या है ?

आत्मा की इस तरफ की गौत विकारों गे फंसाने के साथ पठानावस्था में बार बार होती है जब अपने ज्ञान, दर्शन, वारित्र के तेज को भुला कर वह निस्तेज और मृतवत् बन जाती है। शरीर ली गौत तो एक बार हुई, फिर दूरासा शरीर उरा आत्मा को गिल जाता है, लेकिन आत्मा की ऐसी गौत बुरी होती है। आपनी रबरथ राङ्गा रो एक बार वह जो गिरती है तो न जाने किसाने दीर्घकाल ८८ वह मिथ्यात्व में भटकती फिरे उसका कोई प्रमाण नहीं। उन अंदेरों से निकलन। और प्रकाश की किण्ण पा सकना, फिर उस आत्मा के लिये एक अति दुष्कर कार्य हो जाता है।

किन्तु जो आत्मा नय विषि से प्रभु के मार्ग को ग्रहण कर लेती है, वह अमृत पीकर अपने जीवन को अमर भी बना लेती है। विष मूलु का नाम है तो अमृत जीवन का।

अमृतपायी की परीक्षा

रादनग और रादाचार का जो अगृत पीत है, उसे अपने अगृत की प्रामाणिकता प्रनालिगत करने के लिये कई बार कठिन परीक्षाओं में से होकर गुजरना पड़ता है। पीताल की परख नहीं करते, परखा सोने को जाता है और उसके लिये भी उसे आग में तपाया जाता है। आग की कठिन यातना को छेलने के बाद सोने में जो निखार चमकने लगता है, उसी रे पता चलता है कि यह रवर्ण है। इसी प्रकार जीवन में जो अगृत पीने वाला है, उसे ही पग—पग पर कठिन परीक्षाएं देनी पड़ती हैं तथा इन कठिन अवस्थाओं में सकलतापूर्वक अपनी आत्मिक आभा प्रकाशित करने के बाद ही संसार उसे अमृतपायी मानता है और बैरा रागान देता है।

आप क्या पी रहे हैं, क्या पियेंगे ?

सार की बात यह है कि आप अपने जीवन का अबलोकन करें और जांच करें कि आप अपने जीवन में वर्त्तगान में क्या पी रहे हैं—अगृत य विष ? और यदि आपको लगे कि उस में विष की गात्रा अधिक है तो क्या उस राहरी ज्ञन और कर्मठता को जगा राकेंगे जो आपके जीवन में रात्य का प्रकाश फैलावें तथा विष को दूर करके रह और अगृत का रस—रांवार करें। आप क्या पी रहे हैं और क्या पियेंगे—दूसरे इसकी आलोचना करें, उसकी उपेक्षा तात्पालोचना अधिक अधिकरकर होगी।



कर्मयुद्ध में विजय

“श्री जिन अजित नमू जयकारी.....”

आज हग प्रभु आजितनाथ की प्रार्थना ला उच्चारण कर रहे हैं। नग भिन्न है, रत्नरूप नहीं है। जो शक्ति भगवान् क्रष्णदेव ली आत्मा में अभिष्टका हुई, उसी शक्ति की धारणी भगवान् अजितनाथ की स्तिद्वात्मा भी है। यह नाम अवश्य है एक संघर्षशील परिरिथ्ति द्वं उसमें सफलता के शाव को प्रकट करता है। अजित अर्थात् जिसको कोई जीत नहीं सके। अजित ऐसे हैं, जिन्होंने सबको जीत लिया है, जिनका कोई शत्रु नहीं रहा। और जिनके राब प्राणी गिन्त लप हो लुके हैं। जिन्होंने रागरत बाधाओं को जीतकर अपने विकारा गार्ग जो प्रशस्त बना लिया है और जो उत्त बधारहित मार्ग पर आत्मानन्द के साथ गति लेते हुए उसके अन्तिम छोर तक पहुंच गये—ऐसे हैं चरम आदर्श को अपने आचरण रो अभिव्यक्त करने वाले भगवान् श्री अजितनाथ।

अन्तर के शत्रुओं से संघर्ष

गुरुप्रकाशी आत्मा को अवश्य ही ऐसे आपर्श की आकंक्षा रहती है। शत्रुओं की जीतना आसान काम नहीं होता। और वे भी यदि बाहर के शत्रु हों तो शस्त्रास्त्रों व संना की सहायता ली जा सकती है किन्तु अपने अन्तर में रहे हुए शत्रुओं को परखना, खोजना, उनसे लड़ना और उन पर विजय ग्रान्त करना निरादेह अति दुष्कर कार्य है। कहि की भावना इसी दिशा में प्रकट हुई है—

‘पंथङ्गे निहालूं रे बीजा जिन तणो,
 अजित अजित गुणधाम
 जे ते जीत्या ते मुझ जीतियो रे
 पुरुष किस्यो मुझ नाम।’

अजित बनाने की गिर्छा लेकर जब कोई आत्मा उन्नत दिशा की ओर प्रस्थान करे तो पग—पग पर बाधाएं उपस्थित होती हैं। कहा है—श्रेयांरो बहु वेद्धांने, अर्थाप् श्रेष्ठ कार्यों ले राम्पादन गें ही बहुधा विघ्न उपस्थिति होती हैं। बुरे कार्य बेखटके पूरे हो सकते हैं, भगव अच्छे कामों में तरह—तरह की बाधाएं आ ही जाती हैं। इक प्रकार से इन बाधाओं का अन्ना हितकारी नी है। जिसे पूरा युद्ध लड़ना है और उरामें आत्मा को गिराने वाले अरांख्य विकारों पर विजय प्राप्त करनी है तो ऐसो गहरे कार्य के पहले बाथ एं आएं तो उनसे पुरुष का पुरुषार्थ है जाग्रत होता है तथा उसके साहस व धैर्य का अनुपात भी बढ़ जाता है। बाधाएं एक रीति से उसकी परीक्षा लेती हैं कि वह कार्यों के साथ संघर्ष करने के लिये आपश्यक आत्मशक्ति जुटा पाया है या नहीं ?

भगवान् अजितनाथ ने कर्मयुद्ध में विजय का मार्ग तो दिखा दिया है किन्तु जब तक वह पूर्ण—निश्चय नहीं हो जाए कि आत्मा गें उरा गार्ग को खोजा निकालने एवं उरा पर रिथरतापूर्वक चलने की शक्ति भी ऐदा हो गई है या नहीं, तब तक कोई अजिता पथ का पथिक नहीं बन सकता है।

यह कर्मयुद्ध क्या है ? आत्मा को किन—किन शत्रुओं से लड़ना पड़ता है और उन शत्रुओं की शक्ति कौरी है ? यदि आत्मा उनके राथ राफल रांधर्ष न कर राके तो उराकी कौरी हानि हो सकती है तथा कर्मयुद्ध में विजय मिले तो उस विजय से आत्मा किस स्थान से लहान राक पहुंच जाती है ? अजिता पथ के पाथिक बनाने ली इच्छा रखने वाली आत्मा को इन सारे प्रश्नों के सही उत्तर खोला कर उन पर अति गंभीरतापूर्वक विचार करना चाहिये।

अजितनाथ प्रभु के राफल रांधर्ष का गार्ग गुड़ो कैरो गिले—इसका

ज्ञान और प्रयोग प्रत्येक भवि आत्मा में जागना चाहिये। इस मार्ग को खोजने के लिये भी अन्तर में आवश्यक शक्ति का संचय होना चाहिए। यह क्यों? इसका कारण सफ है। ज्योंही आत्मविकास की दिशा में पग बढ़ाय जाता है कि उस पग को अराफ़ल बनाने के लिये रांगार में ऐसे तर्ज हैं जो दूनी शक्ति रो आगे आकर आकर लेते हैं और विकासशील आत्मा का हौसला पस्त कर देना चाहते हैं।

यह तो मानी हुई बात है कि जब मुलाकाले की टक्कर होती है और उसमें जब एक ल्यक्ति दूसरे से मात खा जाता है तो वह और तरीकों से उस हार का हदला निकालने की लोशिश करता है। यह बाह्य जगत का तथ्य है किन्तु आन्तरिक आध्यात्मिक जीवन की दृष्टि से भी मनुष्य जब अंजित पथ की ओर मुड़ना चाहता है तो भगवान् अंजितगाथ से हार खाये हुए वे आत्मा के कर्म शत्रु उस गनुष्य की आत्मा को दूने वेग से घेर लेते हैं क्योंकि वे अपनी उस हार की खीझ उस प्रकार रो निकालने को तत्पर होते हैं।

अनिप्राय यह है कि इस कर्म समूह एवं विकारों के वर्ग से युक्ष छेड़ने के पहले गुणितकारी आधा को इस अनुग्रान से वर्योपि शक्ति का संचय कर लेना चाहिये ताकि यह न हो कि जिन शत्रुओं को अंजितगाथ ने जीत लिया, वे शत्रु उस आत्मा को जीत लें यानी उस शत्रुओं को भातक शक्ति के सामने आत्मा प्रारम्भ में ही परारत हो जाए। प्रार्थना के रूप में भक्ति कहता है कि हे भगवान्! जिन शत्रुओं को आपने परास्त कर दिया, वे अपनी हार से खीझ कर सारे संसार में इधर उधर परिभ्रमा कर रहे थे और ज्योंही मैं आपके बताये मार्ग पर आगे बढ़ने लगा तो उन्होंने मेरे चारों ओर घेरा लाल दिया तथा मुझे वे परास्त करना चाहते हैं। इसलिये मैं अपने पुरुषार्थ-पराक्रम को यदि इस अवसर पर प्रकट नहीं कर रकूं तो गेरा पुरुष नाम कैरो रहेगा?

पुरुषत्व का सच्चा अभिमान

पुरुष का यह पुरुषत्व भी रागझने लायक तत्त्व है। अधिकांश लोग अपने आपके पुरुषत्व के अभिमान में रखकर चलते हैं लेकिन

वह पुरुषपने का अभिमान किसके विषय में ? क्या सिर्फ हाँ तु ली बातों में मूँछे तानगे और निर्बल को सताने में ? अथवा संसार ली दौलत बटोरने व गोग खिलास की सामग्री एकत्र करने में ? यदि इन आहंकारी एवं रवार्थी कार्यों तथा दूरारों के अधिकार हल्लपने की कुचेष्टा में किरी ने अपने पुरुषत्व को काना नै लिया तो वरतुतः वह पुरुषत्व की अवस्था नहीं बल्कि प्रलासान्तार से कायर अवस्था की ही स्थिति होती है। अगर वह पुरुष नाम धराता है और अपने मन में पुरुषत्व ला नौरव गहराया करता है तो उरो इन आन्तरिक युद्ध में अपने विशिष्ट पराक्रम का प्रदर्शन करना चाहिये।

इरी विशिष्ट पराक्रम की राहादता रो ही आगे के जीयुद्ध में अन्तिम विजय प्राप्त की जा सकती है। किन्तु इस विशिष्ट पराक्रम का प्रदर्शन तभी रामब बनता है, जब पहले रो ही ऐरी पकड़ी तैयारी की जाए कि उस तैयारी को देखते ही शत्रु दूर से ही भाग खड़े हो। ये शत्रु हाड़र नहीं होते बल्कि अपने ही भीतर रहते हैं और आत्मा के सद्भावों का छास करने की ताका ज्ञानकी करते हैं। कोई पुरुष आपके सामने अपना हाथ उठाकर कुछ तेजी की बात करे तो बाजू रूप से आप यही रागज्ञते हैं कि वह हाथ उठाने वाला नेरा शत्रु है और उरारो उराकी हरकत का बदला लेने की कोशिश करते हैं परन्तु आप आपने असली शत्रु को दुरन्मा नहीं समझते हैं।

श्वान और सिंह स्वभावी प्राणी

रासार में दो प्रकार ले प्राप्ति दिखाई देते हैं—एक लो श्वान स्वभाव के तथा दूसरे सिंह स्वभाव के। आप जानते हैं, कुत्ता जिस सोहल्ले में रहता है, वहाँ दूसरे कुत्ते के आने को पसन्द नहीं करता। यह भान उराएं नहीं होत कि गेरी तरह यह कुत्ता भी किरी न किरी घर रो रोटी पा लेगा तो उरगे गेरा नुकरान है ? कुत्ते ला ऐसा स्वभाव अज्ञानपूर्ण होता है और वह सिर्फ अपने ही स्वार्थों को देखता है। शत्रु समझने में भी उसका भ्रमपूर्ण स्वभाव होता है। कोई उस पर लग्जा कैंके तो वह गुस्से में आकर उस लण्डे को ही दांतों से पकड़ता है और उसे ही अपना शत्रु समझता है।

पूसरी ओर सिंह का स्वभाव उससे मिन्न होता है। वह विकट बन में रहते हुए भी निर्णयतापूर्वक विचरण करता है। उसकी चाल में एक आकर्षक मस्ती होती है। वह बनाराज कहलाता है, मिर भी उस तन में अन्धे कोई भी पशु आए और रहे तो उरारो रिंह को कोई आपसि नहीं होती। कोई आए या जाए—उराका तटरक्ष भाव होता है। अपनी भूख मिटाने के अलावा वह हर किसी को उभी भी सताने का प्रायास नहीं करता है। कभी किसी शिकारी ने अगर गोली चलाई तो वह उराक बदला भी लेता है, गगर कुत्ते की तरह उरा गोली को अपने ढांतों रो नहीं पकड़ता, बल्कि बिजली की री नति रो गोली चलाने वाले पर सीधा आक्रमण करता है।

श्यान एवं सिंह स्वभाव की तुलना में सही वस्तुस्थिति लो सम्झकर असली शत्रु को पहिचानने का प्रयत्न किया जाना चाहिये। इस एकदेशीय रूपक रो रवगाव की रिधति को पकड़ना है। रिंह की विशेष योग्यता उचकी तीव्र शक्ति के रूप में होती है। उरांग शक्ति अधिक होती है तथा वह अपना सीधा वार अपने असली शत्रु पर करता है। कुत्ता बकवासी ज्यादा मगर कम पाकता वाला होता है तथा उपने असली शत्रु को भी पहचान नहीं पाता है। प्रत्येक मनुष्य को भी इस संदर्भ में अपने स्वगाव की पहिचान करनी चाहिये कि वह श्यान रो गेल खाता है अथवा रिंह रो। और यदि श्यान रो गेल खाता है तो उसे अपने लिए अधोग्य सामाज कर रिंह रवभाव की ओर मुड़ने का कठिन प्रयास करना चाहिये।

श्यान स्वभाव वाले अधिकार मनुष्य जिस वस्तु द्वारा उन पर आक्रमण करता है उसे ही अपना शत्रु मानकर उसके साथ प्रतिहिंसा पर उतारा हो जाते हैं किन्तु सिंह स्वगाव के मनुष्य ऐसा नहीं करके ऐसे गान्डों गें अपनी असली शत्रु का पता लगाते हैं और उन पर विजय प्राप्त करने का यत्न करते हैं। आक्रमण करने वाले को वे असली शत्रु नहीं मानते, बल्कि असली शत्रु को वे अपने ही अन्तर में खोजते हैं। सिंह स्वगावी यही सोचता है कि यदि मेरी आत्मा का नतन करने वाला कोई शत्रु है तो वह शत्रु काग, क्रोध,

मद्, मत्सर, हृषा। आदि के रूप में मेरे ही अन्नार में बैठा हुआ है जो मेरे जीवन को संसार की गली वीथियों में भटक रहा है और मेरी आत्मा को पछाड़ कर पल—पल में निरतेज बना रहा है।

अनादि काल से मैंने इस शत्रु ला पोषण करके अपने ही घर को जलाया है। यह सोचते हुए वह समझता है कि जिन व्यक्तियों ने मेरे साथ कुछ बुरा भर्तीव किया तो मैंने यह सोचने का कष्ट नहीं किया कि बेबरे उस शरीर की क्या हैसियत, जो वह मेरा बुरा कर सकता। वह जो गेरे अपने ही कर्मों का उदय था जिराके कारण पुहे उराके हथों कष्ट उठाना पड़ रहा है। दूरारे उरा शरीर के अन्दर रहने वाली जो आत्मा है और वह आत्म भी अपने स्वगाव की दृष्टि से सिंह के समान प्रकृति वाली है किन्तु आत्मा को मलिन बनाने वाले पथ उसके श्वान—स्वगाव में धफेलने वाले काम, क्रोधदि विकार रूप शत्रु हैं, जिन्होंने उस आत्मा को बेमान बना दिया और उसने मेरा बुरा करने की वेष्टा की। वह आत्मा अपने शत्रु के अधीन होकर शत्रु के निर्दशे रो गेरे राथ शत्रुता कर रही है अतः उराले लिये उरारो बुरा नहीं मानना चाहिए।

रोह रवभाव वालों की यह भावना राम—द्वेष की कल्पिता को गिरा देती है तथा हिंरा के विरुद्ध प्रतिहिंरा की द्रुम्भिना को रागाप्त कर देती है। वे कुतों की पारह लाडे को अपने दांपों से नहीं पकड़ते बल्कि अपनी कठोर राधना के तीव्र वेष रो गयान पर बैठे शिकारी पर करारा बार करते हैं। जब सिंह अपने शिकारी पर बार करता है तो पूरी तरह सन्नद्ध होकर तथा अपनी सम्पूर्ण शक्ति के साथ उस पर झपटता है। उरा रोज झापाटे रो शिकारी का बच जाना आरान नहीं होता। ऐरो ही तेज झापाटे के लिये विकाराशील आत्मा को अपनी घनी आन्तरिक शक्ति का संवय करना हो। है जिससे वासनाओं के शत्रु आत्मा के उप्र प्रहार रो बच न राकें, बल्कि यह रांचय तो उरा री॥ तक अधिकतक होना चहिये कि ये शत्रु आत्मशक्ति पर प्रहार करने का दुस्साहस ही न कर सकें। यह संवय जितना अधिक सशक्त होगा, काम, क्रोधादि विकास आत्म प्रदेशों में प्रवेश ही नहीं कर सकेंगे।

कर्मयुद्ध के कई मोर्चे

कर्गी रूपी इन शत्रुओं रो इस प्रकार कई गोचों पर आत्मा जो युद्ध करन पड़ता है। इन शत्रुओं को पराजित करने का राखल गार्गी ही यह है कि संयम, तप और धर्म के साधनों से स्वयं की आत्मा पर ही ऐसा सफल नियन्त्रण प्राप्त कर लिया जाए कि वे शत्रु उस आत्मा पर न तो अपना कोई दुष्प्रशान डाल सकें और न ही उस पर अपना कोई राचोट आक्रमण कर सकें।

जैरो इस शरीर के लिये क्षय रोग होता है और क्षय रोग के कीटाणुओं से लड़ने के लिये औषधि विज्ञान के क्षेत्र में व्यक्तिगत रूप से एवं सामूहिक रूप से कई कठोर प्रयास किए जाते हैं तथा कीटाणुओं को बेअसर बनाया जाता है। उसी प्रकार ये कर्म पुद्गल आत्मा के लिये क्षय रोग के रागान हैं जो निरन्तर आत्मा के शुद्ध रखने का क्षय करते रहते हैं। अतः इन कर्म पुद्गलों को प्रमाणहीन बनाने के लिये आत्मा को बहुत बढ़ाई और लम्बी लड़ाई लड़नी होती है।

आत्मा को लगा हुआ यह क्षय रोग इसके केवल एक जन्म को ही क्षति-विक्षति नहीं बनाता, अग्रितु अगादि काल से आत्मा के सापूर्ण स्वरूप को क्षति-विक्षति बनाता चला आ रहा है और जब तक जागृति नहीं आएगी तब तक इसे क्षति-विक्षति बनाता ही चला जाएगा। यह आन्तरिक क्षय रोग अति भयावह है तथा यह जना-जन्मान्तरों तक आत्मा को रोग ग्रस्त बनाये ही रखता है। इस क्षय रोग के मूल कीटाणु हैं काम, क्रोध, मद, मत्सर, वृष्णा आदि तथा उनसे पनपने वाले राग-द्वेष जगौरह।

ये कीटाणु व्यक्ति के मन में बहुत घटनाओं के आधार पर प्रवेश करते हैं तथा अन्तर की भावनाओं को तत्काल ही उन्दोलित करना भालते हैं। कोई व्यक्ति कितना भी शांत बैठा हो लेकिन आप देखें कि सामने क्रोधावस्था में कोई दूसरा व्यक्ति आता है तो वह भी क्रोध से तमतमा उठेगा। वह शान्त नहीं रह पायेगा और उसके भीतर भी उत्तेजना आ जाएगी।

क्रोध का विनाशक प्रभाव

यह उत्तेजना क्यों और कैसे आ जाती है ? क्रोध के जो एक प्रकार के परमाणु होते हैं, वे एक पिंड रूप होते हैं, यह एक स्फूर्ति होता है। जिरा गनुष्ठ के भौतर ऐसे। विभेन्न रक्षण पनपते हैं वे उस मनुष्य के शरीर, नग और आत्म प्रदेशों को जर्जरित बना डालते हैं—इतने जर्जरित कि ऊरो बिना रक्त और गांरा के एल नरदेह कंकाल मात्र रह जाती है। ये स्फूर्ति भयंकर दुर्दशा करके बाहर निकलते हैं। कहते हैं कि पिण्डान भी इस दिशा में खोज कर रहा है तथा इत्ना पता लगा। लेख गया है कि क्रोधादि के ये परमाणु शान्त व्यक्ति पर। केरा प्रकार आक्रमण करते हैं तथा यदि उस व्यक्ति की सहनशीलता आदि के रूप में उपनी पक्षी तैयारी न हो तो किरा प्रकार उसे जालाते हैं ? इन परमाणुओं के किरण विन्द्र भी लिये गये बाये जाते हैं।

फल्ग्ना करें कि एल तरफ घासलेट पड़ा हुआ है, स्पिरिट की बोतल भी पड़ी है तथा दूसरी तरफ आग की चिंगारी सुलग रही है। स्पिरिट, घासलेट और चिंगारी का स्वभाव ऐस है कि वे समीप आने पर एक—दूसरे को जल्दी से जल्दी पकड़ते हैं। चिंगारी का संसर्ग मिलता है घासलेट स्पिरिट भड़क उठता है। इसी प्रकार से वर्तमान जीवन का काम—क्रोधादि आन्तरिक शान्तियों का आक्रमण एक दूसरे पर हुआ जरूर है और जिराके भीतर यह शान्त अत्यधिक राशकत है तो समझिये कि उसके अन्तर में धू धू करके आग जल रही है और दिल से की जगाई यह आग ऐसी होती है जो आत्मा की इच्छाइयों को जलाती ही जाती है रथा बुश्यों की कालिख से आत्मा के स्वरूप को कलंकित बनाती जाती है।

इस आन्तरिक क्षय रोग की भी शारीरिक क्षय रोग की तरह विभेन्न श्रेणियां होती हैं। शुरू की श्रेणी में विकारों का बहुत ही कम जोर होता है और उस समय ही यदि आत्मा में सतर्कता पैदा हो जाए तो अल्पशक्ति के साथ प्रारम्भ में ही उन कीटाणुओं को सहज ही में नष्ट किया जा सकता है। दूसरी श्रेणी में उक्कर पिलर व्याबरी की हो जाती है। कभी औषधियां कीटाणुओं को दबा देती हैं, तो कभी लौटाणु औषधियों को बेत्तसर कर देती हैं औ कभी प्रभावकारक होने पर ही

औषधियाँ सन कीटाणुओं को नष्ट कर पाती हैं। किन्तु जब तीसरी श्रेणी में यह आन्तरिक क्षयरोग पहुँच जाता है तो फिर यह एक अति दुष्कर कार्य बन जाता है कि औषधियाँ सन अति सशक्त बन कीटाणुओं को नष्ट कर सकें। अधिकतक तो ये कीट पु आपाशक्ति का दग्धन करके सरा क्षय रोग से इस कदर ग्रस्त और पीड़ित बना देते हैं कि अनन्त काल तक उसका पुनः स्वस्थ हो पाना अति कठिन हो जाता है।

यह क्षय भी छूत का रोग होता है। जो भी इस रोगी के राम्फर्स में आता है, वह भी इस क्षय रोग से आक्रान्त हुए बिना नहीं रहता। आप देखेंगे कि एक क्रोधी व्यक्ति के पारा ऐसे रहता है तो यह भी क्रोधी बन जाता है। एक बच्चे को किसी क्रोधी व्यक्ति के पास छोड़ दीजिये तो कुछ समय के बाद ही देखने को मिलेगा कि उस क्रोधी व्यक्ति का दौरा क्रूर और कठोर रणनीत है, वैरा ही उरा बच्चे का भी रगभाव छल जाएगा। आगे चल कर उराकी प्रकृति पर नियन्त्रण करना भी कठिन हो जाएगा। कारण, क्रोध के कीटाणु उस पर अपना ऐसा कुप्रभाव छोड़ देंगे कि उससे मुका होने में एक जटिल संघर्ष ले अलावा और कोई चारा नहीं रह जाएगा।

इसके विपरीत, उसी बच्चे को एक सरल एवं नम्र रणनीती राज्ञन पुरुष के रान्निक्ष में रख दें तो वह बच्चा भी शान्त, गम्भीर, शैर्यवान्, बुद्धिशाली एवं प्रतिभाराम्भन हो जाएगा। यह रांगति जन्य परिस्थिति तो प्रत्यक्ष में देखने को मिलती है।

असली शत्रुओं की पहिचान

तो मैं यह बता रहा हूँ कि राग—द्वेष, काम—क्रोध आदि ये आन्तरिक शत्रु ही वारतनिक एवं आराजी शत्रु हैं तथा रिंह रणनीती पुरुष इन आराजी शत्रुओं को पहिचान कर रीढ़। इन पर ही ऊँगणि करते हैं तथा इनके साथ युद्ध में अपने अमित शौर्य का प्रदर्शन करते हुर अनिम विजय प्राप्त करके अजितानाथ भगवान् को तरह अजित बन जाते हैं। जब मनुष्य इन शत्रुओं के पंजे के नीचे दबता रहता है और अपने को अशक्त बनाकर इन शत्रुओं के अधीन चलने लगता है

तो ये उस पर ज्यादा से ज्यादा हावी होने लगते हैं। जब तक वह इन्हें बहर निकालने व आगे से इन्हें नहीं अपनाने का कठिन अग्रिमान नहीं फ़ैलता तब तक ये अपना घेरा लाले रहते हैं। जब ऐसा कठिन अभियान सफल बनने लगता है तब इन विकारों की चिंगारी आग बनने के पहले ही बाहर नष्ट हो जाती है।

इस अभियान को आरम्भ करने और सफल बनाने में मूल दखल होता है पुरुषार्थ और पराक्रम। साहस और पुरुषार्थ को जगाए बिना कोई भी युद्ध लड़ा नहीं जा सकता बल्कि कोई भी युद्ध इनके बिना जीता तो जा ही नहीं सकता है। इसके लिये आपनी शक्ति के जागृत करना और राहसिक बनना कि मैं पुरुष हूं तथा अपने पुरुषार्थ रे गुड़ी कर्मयुद्ध ने विजय प्राप्त करना है एक भवि आत्मा के लिये आवश्यक है। वह आत्मा तब दास वृत्ति से स्वामी वृत्ति की ओर आगे बढ़ती है जो अब तक विकारों की दारा थी अब वह विकारों पर शारान करने लगती है। अन्तर उद्युद्ध बनता है और अपने आप को राजा गानने लगता है। यह र जा भाव ही आत्मा को स्वामी बनने की अवस्था में पहुंचता है।

किन्तु स्वयं आत्मा का स्वभौ बन जाना अजितनाथ भगवान् के स्वरूप के समकक्ष हो जाना तत्काल साध्य नहीं होता है। आप जानते हैं कि गण्डिकल कॉलेज में प्रवेश लेने वाले छात्र एक दिन में ही छाकड़र नहीं बन जाता। निरन्तर अध्ययन, अभ्यास एवं अध्यतराय से ही कालान्तर में वह कुशल विकित्सक बन पाता है। उसी तरह कर्मयुद्ध में कुशल योद्धा एवं निश्चित विजेता बनने के लिये आत्मा को भी कठिन साधना की विशिन्न श्रेणियों में से गुजर कर मजिल तक पहुंचना होता है।

गूर्ज हात यह गानी जाएगी कि आप आत्मा के इन आराली शत्रुओं-क्षयकारक कौटाण्यों, लो भली भाँति पहचानें और अपनी सम्पूर्ण संवित आंतरिक शक्ति के साथ उन पर अक्रमण कर दें। इस युद्ध में त्याग और बलेदान के ऐसे ऊंचे स्तर पर अरूढ़ हों कि आप भी एक दिन अजित बन जाएं।

कमलसेन की कमल-बृत्ति

राजकुगार कमलरोन भी वारतवर्गे लगाल जौरा था जो विकारी वातावरण में रहते हुए भी अपने आधिक सुरव रथ्य ले श्रेष्ठ रूप में बनाये हुए था। अपनी तरुणाई में भी वह विकारों का दास नहीं बना था, बल्कि राजा की तरह उन पर अपना अनुशासन चलाता था। राजकुगार ने प्रधान गतिवर्धीन के रागक्ष अपनी जिज्ञासा और आधिक रपष्ट की कि आपने गहाराजा गृणरोन के रागक्ष गृद्धों जिरा प्रकार सम्बोधित किया उससे ऐसा लगा जैसे आपने मुझे कहा हो कि मैं ही इस रथ्य का स्वामी बनूँ इसका अन्वरहस्य विद्या है? एक म्यान में दो तलवार रखने जैसी यह बत आपने कहा कही, जिसका समाधान परों के लिए मैं लग्य हो रहा हूँ।

प्रधान ने विरतार रो अपना रपष्टीकरण प्ररतुत किया और उराका श्रीगणेश चमानगरी के गृहशाराक श्रीकेतु गहाराजा के जीवन से किया जिनकी महारानी वैजयन्ती उनकी सभी क्षेत्रों में आदर्श जीवनसांगीनी के रूप में थी। दोनों परस्पर धर्मवर्वा करो रहते थे। एक दिन चर्चा में महाराजा ने पूछ लिया कि क्या इस नगरी में ऐसे पवित्र आन्तरिक जीवन वाला कोई व्यक्ति मौजूद गी है। तभी एक चतुर व्यक्ति ने रामा गें खड़े होकर कहा कि ऐसा व्यक्ति इसी नगरी में है। वह विण्यधर नाम का एक आपाभिगुरुखी व्यक्ति है। उसके भी चार धर्मपत्रायणा सेठानियां हैं।

यहां पर इस सत्य को भी समझ लौजिये कि किसी ननुष्य को महान् बनाने में उसकी अपनी साधना तो मुख्य रूप में होती ही है किन्तु संसार पक्ष में परेवार एवं माता—पिता के संस्करणी प्रमुख होते हैं। उराके बाद जीवन रागिनी के रूप में धर्मापत्नी का विशिष्ट गहरव होता है। वाये पुरुष अपनी धर्मपत्नी को राष्ट्री धर्मराहायेका के रूप में ले और उसकी नेक सलाह को मानते हुए गृहस्थी को चलाये तो वह एक आदर्श गृहस्थ एवं आदर्श नागरिक बन सकता है तथा वह पुरुष यदि राजकीय पद पर है तो उरारो उराका व्यक्तित्व चगत्कारागृण बन जाता है।

निर्णायक युद्ध और विजय

अजितनाथ भगवान् की प्रार्थना का प्रभाव यह होना चाहिये कि मनुष्य गृहस्थाश्रम में रहे तब भी अपने अन्तर के अरियों का समझे और उनसे लड़े तथा गृहस्थाश्रम छोड़ कर साधु अवस्था में आये तब तो यह युद्ध आधिक लघु और आधिक निर्णायक बन जान चाहिये।

जीवन जीने के लिये हैं किन्तु कायर और कल्पित बने रहकर नहीं। कायरसत्ता से वो मृत्यु ही अच्छी किन्तु मृत्यु के कोई चाहता नहीं और चाहना चाहिये नी नहीं, जब वह मृत्यु विकारों के हाथों आत्मिक सदगुणों की हो रही हो। इसलिये विकारों से निरन्तर रांधर्ष तथा उरा कर्त्युद्ध गे विजय विकाराशील जीवन जी प्राप्ति राक्रिय आकांक्षा होनी चाहिये।

लाल भवन

22.8.72

२२२

काम-जय से आत्म-जय

"अजित अजित गुणधाम....."

भगवान् अजिपान थ के लिये प्रार्थन की पूंकेश्वरों में 'अजित अजित गुणधाम' कहा गया है जिसका अर्थ है कि उन्होंने अपने कर्म शत्रुओं को तो पूर्ण रूप से पराजित किया ही है किन्तु यह नाकारात्मक स्थिति मात्र उनके साथ में नहीं है। विकारों पर विजय प्राप्त करके उन्होंने रवीकारात्मक भूमिका का भी इतना युष्ट निर्गांग किए। कि वे गुणधाम अर्थात् गहान् आत्मिक राष्ट्रगुणों के रीर्ध रूप भी बन गये।

घर में से आप मैला, कूड़ा करकट वगैरह साफ कर लें तो स्वक्षता आ जाएगी किन्तु उसके बाद यदि उसको उपित साज सज्जा से सज्जित नहीं किया जा सकेगा तो उसमें वाञ्छित शोषा ली स्थिति नहीं बनेगी। विकारों का मैला साफ कर लेने के बाद गुणों ली श्रेष्ठता रो जिन्होंने अपनी आत्मा को पूर्णरूप रो राजाए हैं, उन अजिपानाथ प्रभु को ज्ञान, दर्शन एवं वास्त्रिय की शोभा ओष्ठेशीय प्रतीप होती है।

वरत्तविक शोषा का निवास आन्तरिक विकास में होता है। जो निष्ठाबान् पुरुष अजितनाथजी के अजित-पथ पर चलना चाहते हैं, उन्हें पहले आन्तरिक शुद्धि की रिति पर विचार करना पड़ेगा तथा उस शुद्धि के साथ साथ विकारों से जेन अंशों में मुकिया मिलती जाएगी। उन्हें पराक्रमपूर्वक आत्मिक गुणों को ग्रहण करने की मनावृति परिष्कृत बनती जाएगी। इस पथ पर अग्रसर होने के लिये पहले चिन्तन का अग्यास करना होगा। चिन्तन की सहायता से ही यह

अनुभव किया जा सकेगा कि आत्मा विकारों की लैसी कैसी अशुद्धियों में लिप्त है तथा उनसे छुटकारा कैसे पाया जा सकेगा।

चिन्तन और आत्म-विकास

चिन्तन का क्रम ज्यों-ज्यों सुलझता जाएगा और स्पष्ट होता जाएगा, ज्यों-ज्यों आधिक विकारों की पृष्ठभूमि रपष्ट दिशा रांकेतक बनती जाएगी। चिन्तन की धारा जब निश्चित दिशा में बना किरी भ्रान्ति के बहने लगती है तो वह धारा किर वाणी में फूटती है। चिन्तन में जब भगवान् आजितगाथ का ध्यान किया एवं उनके परम आदर्श रवरूप पर विचार किया तो वह चिन्तन आत्मविश्वारा के राथ मूल-गिलकर जब वाणी में परिवर्तित होता है तो वचनों रो भी भगवान् की गुणगाथा की जाती है। नन, वबन, से पृष्ठ होकर विवार और वबन जह कार्यरूप में उतारते हैं तो निश्चित रूप में वहाँ से आत्मा की विकास-रात्रा प्रारम्भ हो जाती है।

गन, वचन तथा कर्ग की एकल्पना एवं दृढ़ता के राथ जब गनुष्ठ उपने आत्म-जय के गार्ग पर प्रयाण करता है तो उराके अन्तर में अमिता सहस्र स्फूर्ति एवं उत्साह आया हुआ रहता है। किन्तु कहावत है कि जो कार्य जिताना महान् होगा, उसमें उस नी ही आपत्तियाँ भी डिगाने के लिए आयेंगी। सोने को ही तपाने के लिये आग में ढला जाता है, पीतल को नहीं और जब सेना तपकर खरा राबित होता है तो उराकी वह प्रदीप्त शोभा दर्शनीय बन जाती है। इस शोभा को प्राप्त करने के पहले राने को अग्नि की भयंकर ऊषा में से होकर गुजरना पड़ता है। इस व्यावहारिक तथ्य को कर्मी भुलाया नहीं जाना चाहिये।

विकारों की जब प्रबलता होती है तो आत्मा की चेतना एवं उसके सद्गुण छिपे रहते हैं तथा उनका जो सुग्राहाव अनन्त एवं रामाय ले जीवन पर पड़ना चाहिये, वह प्रकट नहीं हो पात है। आप अनुभव करते होंगे कि प्रभार वाल गें रारा रारा रूथेकिरणों ली लालिम मय आभा का अनिलाषी होता है किन्तु यदि उस समय सारे

आकाश में काले बादल छाये हुए हो तो प्रकाशपूंज सूर्य की किरणों क्या बाहर आ सकेंगी ? कितने ही प्रयत्न के बावजूद भी उस समय कोई सूर्य किरणों की उस सुदर्शनीय रक्ताशा को अपनी आंखों से देख नहीं पाता है। वैरो ही इस अन्तःकरण के भीतर रादगुण रुग्णी सूर्य की जह आमा छिटकने को होती है तभी विविध विकारों के काले बादल उसको घेर कर ढक लेते हैं। इस प्रकाश को आत्मा की घेरना के रूप में देखिये तब आप महसूस करेंगे कि ये विकार आत्मा के मूल पर आघात करते हैं और उरो रादेव अस्थकार गें ही पड़ी रहने देना चाहते हैं। यही आत्म—विस्मृति की स्थिति होती है—जब प्रकाश दूधर बन जाता है।

काम-आत्म-विस्मृति का प्रमुख कारण

आत्म विस्मृति के विविध विकारों में सबसे बड़ा होता है काम। काम देव के रूप में मानकर भी अन्य विचारकों ने इसे रांगगित विकारा का राबरो बड़ा रोड़ा जाना है। काम का प्रशाप भी रारे रासार गें प्रगाढ़ रूप रो रावल्यापक होता है। इसीलिये यों काम को जीव लेता है उसे महादेव माना जाता है। काम जब तक आत्मा को दबोचे रहता है तब तक उसकी विस्मृति की अवस्था भी बराबर चलती रहती है। इस विस्मृति से उबरना भी कठिना होता है और उबरने का संकल्प कर लेने के बाद काम—जय करना तो आते कठिन जाना गया है। काम—शत्रु पर जीत हारिल कर लेने पर दूर रे विकारा—शत्रु तो रथयगेव ही परारत हो जाते हैं।

काम रूपी काला बादल जब आत्म सूर्य को धेर कर छिपाये रखता है तो काला बादल तो धन्धोर रूप में पिखाई देता है। मगर सूर्य का स्वरूप दिखाई तक नहीं देता—उसे समझना और उसके प्रकाश का आत्मसात् करना तो आगे की बात होती है। कामरूपी बादलों का कोहरा इस तरह छाया हुआ रहता है कि वहाँ गुणों की किरणें अदृश्य ही बनी रहती हैं।

आत्म विकास की अभिलाषा रखने वाले को जब इन किरणों

के पर्शन नहीं होते तो उसको अन्नार की भावन इसके लिये बड़ बनने लगती है कि वह अजित प्रणु के मार्ग पर चलकर आन्तरिक जीवन के नुणों के दर्शन करे। यह लाग्रता जितनी अधिक हीब्र बनती है उतना ही काम के काले शब्दों रो रांधर्ष लगने का उत्तराह उभिवद्ध होता है तथा चुर्यों के पूर्ण स्वरूप को प्रकाशित करने के लिये उत्तरा आत्मा जा संकल्प दृढ़ और अटल बन जाता है।

किन्तु जब तक आत्मा में ऐसी गङ्गरी जागृति उत्पन्न नहीं हो जाती तब तक तो काग का रूप ही आत्मा की विचारणा और जीवन के व्यवहार में छाया रहता है। वह व्यक्ति काग का रूप ही देखता है। आत्मा का स्वरूप नहीं देख पाता। वास्तविकता यह है कि यह आत्म स्वरूप इन वर्म नेत्रों को दिख सके यह सम्भव भी नहीं है। स्थूल पदार्थों को ये नेत्र देख पाते हैं, किन्तु आत्मस्वरूप का दर्शन इन चमड़े की आंखों की विषय बस्तु नहीं है।

भगवान् अजितनाश के पथ को देखने और उनके ख्यरूप लो अपनी आत्मा के पर्पण में अवलोकन करने का काम ज्ञान वक्षुओं जा है। अन्नार का उत्सह अन्नार का विषय है जो अन्नार को जगाने से ही प्रस्फुटित हो सकता है। इस ज्ञान वक्षुओं को हृदय के नेत्र कहिये अथवा अन्तःकरण की ज्योति किन्तु इन्हीं की सहायता से सूक्ष्म अजित—पथ के पर्शन हो सकते हैं।

अन्तःकरण की इस ज्योति को प्रज्वलित करने एवं इस ज्योति की रक्षा करने की सफल स्थिति तभी बनती है जब जीवन में पुरुषार्थ प्रबल बनता है। यह ज्योति निरन्नार समान रूप से प्रकाशित रहे और अधिक रूप से ग्रकाशित होती रहे तो आगे बढ़ते रहने का मार्ग निष्कंठ होता जाता है। किन्तु इस अन्तज्योति को बुझा देने ली रार्वाटि के अनुर विकार होता है— क. ग. जो बार—बार विषय वाराना के लोज अन्धड़ बलाता रहता है जहाँ पर उत्तमा की जरा सी भी जागरूकता कम हो तो उस अन्धड़ में वह ज्योति हेजहीन हो सकती है या बुझ सकती है।

एक शद्रगारी जिस प्रकार अपने आंचल से दीपक की रक्षा

करती है और उसे बुझने नहीं पेती। उसी परवाह और मुरुणार्थ से इस अन्तर्ज्ञाति की रक्षा चाहनीय होती है। कामरूपी शयंकर शत्रु ला मुकाबला साहस्रपूर्ण मुरुणार्थ के बल से ही सफलतापूर्वक किया जा सकत है। जीवन में निश्चित रथीकृति एवं अनुभूति के साथ जब गाना जाए की कामरूपी शत्रु रो सफल रांधर्ष करना है तो उसके अनुरूप आत्मशक्ति की सन्दर्भ भी होनी चाहिये।

आत्मशक्ति से काम कटेगा

राहर का रांचार इरा विचार के साथ प्ररारित होना चाहिये कि यह कामरूपी शत्रु कोई स्थायी आधार नहीं रखता—गहरी आस्था और दृढ़ वर्तम्य शक्ति से इसे पछाड़ा जा सकता है। एक तो ज्ञानका दो तो यह काम छिखर कर टूट जाएगा। कैसा भी बादल सूर्य के सामने आ जाए लिन्तु अन्ततोगत्वा उसे वहाँ रो जासक छठना ही पड़ता है। सूर्य के तो ज्ञान प्रकाश को सदैव के लिये छिपाये हुए नहीं रखा जा सकता। सूर्य का प्रकाश जब मुरुणार्थ के साथ उग्र बनता है तो नंदरे से गहरे बादल भी छंटने लगते हैं। फिर काम ही ली ऐसी कौंग—सी अपराजेय शक्ति है कि वह आत्म—चेतना की तेजस्विता से परारत न किया जा सके। राहरापूर्ण इरा विचार के साथ जह कार्य की शक्ति विकासित होगी तो काम का दुष्प्रभाव ताश के महल ली तरह देखाते देखाते ढहने लग जाएगा।

कामदेव को जीतना आत्म शक्ति को उल्लता रो ही रांभव हो सकता है। एक बार ज्यों ही बादलों का छंटन शुरू होता है, ये छंटो चले जाते हैं और तब गळ्यान्ह का सूर्य ऐरा तपता है कि उराला प्रकाश जाव सारे संसार ला जीवनपूर्ण मार्गदर्शक ही जाता है। वरसुपा देखा जाए तो अतिमिक एवं नैतिक शक्ति के सामने काम की शक्ति बहुत ही तुच्छ होती है। इरारो लड़ने के लिये आवश्यक शक्ति रांचित करली जाए तो इसको आसानी से परास्त भी किया जा सकता है। किन्तु उसके राथ ही यह काग शत्रु इतनी गारक—शक्ति बला भी है कि आत्म शक्ति में आई छोटी सी दुर्बलता की आँख लेकर रह सारी प्रगति को पल भर में ही भूल में गिला देता है। काग की कगजोरी में इरोहास बपारा है कि बड़े बड़े व्यक्ति भी पिछङ गये।

शास्त्रकार भी इसी दृष्टि से संकेता पेते हैं कि ज म आत्म विकास का सबसे बड़ा शत्रु है परन्तु आप यह न सोचें कि यह शत्रु कहीं से हाथ में तलवार घुमाता हुआ आयेगा और आपकी धात करने का यह करेगा। यह तो आन्तरिक शत्रु है और जब-जब आत्मा विस्मृति के क्षणों में लूबती है, यह शत्रु अपनी गारक शक्ति रो आत्मगुणों की धात वृत्ता है रहता है।

काम-प्रशापित आत्मा को दुष्ट की संज्ञा दी गई है। यद्यपि मूलरूप में आत्मा परित्र है और दुष्ट नहीं है, फिर भी दुष्ट ली रागति रे वह पुष्ट बन जाती है वथा पुष्ट कहलाती है। काग-शत्रु के कारण इस आत्मा की रांझा दुरापाता के रूप में दृष्टिगत हो रही है।

गुणीजनों का भी कथन है कि दुष्ट आत्मा का रूप उससे भी अधिक शयंकर होता है जो नंगी तलवर हाथ में लेकर कंठ छेदन लरने वाल व्यक्ति होता है। वह व्यक्ति तो एक शरीर को ही धात करता है लेकिन कागरपी शत्रु जब काग-शत्रु लेकर बार करता है तो वह उस अत्मा के अनेक जन्मों के काग्हों को छेदन करता है। जन्म जन्मनारों की आत्म जागृति को काम नष्ट कर देता है और जागृति द्वारों को सदा के लिए बन्द कर देता है।

ब्रह्महर की दृष्टि से भी कामरूपी शत्रु अति शक्तिशाली होता है। रांझा का ऊंचे रो ऊंचा वैभव पाने वाला हो, राकार व रामान का धनी हो अथवा बुद्ध राता या शक्ति का रखानी हो कोई भी काम की मार से मुश्किल से ही बच पाता है। रावण जैसा तीन खंडाधिपति भी जब काम के अधीन हो गया तो उसके जीवन की कैरी दुर्गति हो गई—यह राणी जानते हैं। कग के लगेटे में रावण दौरा शक्तिशाली भी अगर चूर-चूर हो गया तो रोकने ली बात है कि साधारण मनुष्य की कितानी भी हैसियत है? फिर भी यदि मनुष्य के म के कारण येहाता नहीं है तो यह उसको सुषुप्ति की ही अवस्था होगी।

शलंग और विषंकाम

भगवान् गहानीर ने फरगाया है कि यह काग शलंग और

विषम् काम् है। जैसे पेट में शूल उठता है और असद्य पीड़ा होती है किन्तु यह पता नहीं चलता कि यह शूल किधर से प्रवेश कर गया। उसी तरह काम जीवन की कामाओं को उत्तेजित करके अन्तर में प्रवेश कर जाता है। पेट का यह शूल तो फिर भी कुशल चेकित्सा रोगित जाता है किन्तु आख्या गें काग का शूल जब तक राम्पूर्ण काम जय न हो गड़ता और पीड़ा पहुंचाता ही रहता है। इसीलिये काम को 'शलंग' कहा है। कामशूल जब लगता है तो अपनी कैसों भी गहानता को शुलकर गनुष्ठ दीवाना हो जाता है। तब वह अरा—विरगृति के गहरे पर्ते गें पहुंच जाता है।

काग को दूरारा विशेषण दिया गया है विष यानि जहर का। काम वास्तव में ऐसा विष है जो जीवन्ता रानुओं का संहार छालता है। इस विष से आत्मा इस तरह मदमस्त और संत्रस्त हो जाती है कि वह अपनी चेतना के गूल बिन्दुओं तक लो गूल जाती है। 'विषग् कागः' कामरूपी विष उरा ड्लार का जहर है जो किरी बाहरी उपवार से प्रभावहीन नहीं किया जा सकता है। अन्य विष का प्रभाव तो शरीर पर से दूर भी किया जा सकता है किन्तु आत्मा के लिये कामरूपी विष की उपमा सर्प के मुँह में रही हुई छाढ़ के नीचे ली जहर की थेली से दी गई है। इस कामरूपी विष की तनिक—सी भी मात्रा का डिराने रोपन कर लिया, उसे ने आपने जीवन को अजित—पथ रो दूर कर लिया है—यह निश्चय गानिये।

आधुनिक मनोविज्ञन में भी फायद आदि कई वेताओं ने इस विष को खोजा है कि मानव जीवन में काम का असेता प्रभाव होता है और इसका बुद्धिमत्तापूर्वक शमन नहीं किया जा ना चाहिये। बलात् शरन से काम का रूप और अधिक लिलृत हो जाता है। मनोयोगपूर्वक एवं दृढ़ इच्छा—शक्ति की राहायता रो जब काग का दगन किया जाएगा। तो उसके प्रभाव को नष्ट किया जा सकता है। उभा सांसारिक वातावरण में भी पग पग पर काम ला विषम साम्राज्य छाया हुआ दीखता है। साहित्य पढ़ें तो काम का विशद् प्रगाव, वेश गृषा में देखें तो कागोक्तेजना का अरार और गनोरंजन के राशनों गें भी शुद्ध

वारित्य का अभाव यह सब ऐसा वातावरण है जिससे वारित्य स्था के अणिलाषी व्यक्ति को संघर्ष करना पड़ता है। अन्य बेगान ल्यक्षितयों के लिये तो काम ली अधीनता ही एक मात्र स्थिति देखी जाती है।

महान् भक्षी अग्नि और मदन रेखा

शास्त्रों में काम को 'महासुण' यानी नहानुभक्षी अग्नि भी कहा है। यह विशेषण इसलिये दिया गया है कि दूसरी प्रकार की अग्नि जो तो उसका योग्य पदार्थों से शमन किया जा सकता है लेकिन यह ऐसी अग्नि है जो योग्य पदार्थों के रोवन रो और भी ज्यादा भङ्गकर्ती है। आपको ध्यान रखना है कि विषय-भोग की पूर्ति के लिये काम वासनाओं की तृप्ति के लिये, जितने भी साधन जुटाए जाएँगे और उनका उपयोग किया जाएगा, उसके बाद भी तृप्ति की बजाए लाम की प्यारा ही ज्यदा बढ़ेगी। यह आग निरन्तर पांषग पकर प्रबल शक्ति रो बढ़ती ही जाती है।

काम की अग्नि में अच्छी विकाराशील आत्मा भी गिरकर कभी—कभी किरा प्रकार झुलरा जाती है—नष्ट हो जाती है—इसका व्यावहारिक उदाहरण ग्रन्थों में गागीरथ राजा का आता है। वह अपने जीवन में श्रेष्ठ नैतिकता ला पालन करने वाला व्यक्ति था किन्तु जब गदनरेखा के रौन्दर्य—दर्शन के रूप में काग ने उस पर राशक्त आक्रमण किया तो उसका वह जीवन ही आशान्त नहीं हुआ, बल्कि भाई जन्मों के लिए अपने अपनी आत्मा को अशान्ति में गिरा दिया।

छोटे भाई के लिये ज्ञेहवश उसने राज्य का भी त्यान किया किन्तु काम के वशीगूह होकर उसी छोटे भाई की उसने हत्या कर दी—उसके कण्ठ पर तलवार चला दी कि भाई की पल्ली मदनरेखा को नह अपनी बना लेगा। प्रकृति का रांगोग भी देखिये कि जिस रागय भागीरथ ने अपने भाई के कण्ठ पर तलवार का बार किया, उसी रागय एक विषधर सर्प ने उसको काट लिया। आत्म में काम ला विष और शरीर में विषधर का सर्प जिस भला जौवन की दुर्गति नहीं होती तो और क्या होता ? काम की अधीनता में गागीरथ राजा की आत्मा नरकगामिनी बनी।

जीवन में कान विरोधी संयम का दूसरा रूप भी देखिये कि जिस समय शारीरिक राजा ने अपने शाई के कण्ठ पर तलवार का बार किया, छोटे शाई ने अपने मन में तनिक द्वेष का लबलेश भी नहीं आने दिया। गदनरेखा ने उरो अन्तिम जीवन का राजा देते हुए कहा—हे नाथ ! आप यह न रोचें कि आपके ज्येष्ठ भ्राता ने आपके कण्ठ पर तलवार बलाई है। असल में तो कमरूप शत्रु ने आपके भाई के कण्ठ पर ही तलवार चलाई है। आपके इस मदनरेखा का इसमें निमित्त गिला किन्तु आपकी पत्नी चारित्र्य पर अटल रही है और अटल बनी रहेगी। काग ने आपके भई को गारा है, यह न हो कि क्रोध के आक्रमण से आप हार जाएँ। यह आपका अनिराम जीवन है जिसमें किसी विकार को सामने न आने दें। अपने आपको वीतासाग धर्म की शरण में समर्पित कर दें। इस प्रकार छोटे शाई की मृत्यु गिशुद्ध गावनाभों के साथ हुई और उसे स्वर्ग की प्राप्ति हुई।

कागखण्डी शत्रु के आक्रमणों के एक या दो उद्घरण नहीं—देर सारे उदाहरण भरे पड़े हैं। वास्तव में वो वे उदाहरण आदर्श रूप होते हैं जो काम शत्रु के उद्गमणों के विरुद्ध शूरपा से लड़े हैं और कम को करारी हार देते हैं। महासती गैनरवा, महासती राज्युल आदि के ग्रेणाग्रद जीवन इस सत्य के प्रतीक हैं कि उन्होंने काम पर ऐरी करारी चोटें की कि कग और काग के धोड़े—दोनों भागते नजर आये।

काम जय के पश्वात् जीवन में अनुपम निर्नलिता का प्रवेश होता है किन्तु काम जय भी अनुपम पुरुषार्थ प्रदर्शन के बिना संभव नहीं बनती है। कान को जीतने के लिये अन्तर में पुरुषार्थ की ज्योति प्रज्यालित करनी पड़ती है तथा उस ज्योति की रक्षा करते हुए उसके प्रकाश में काग के अन्धकार को हटाते रहना पड़ता है। जीवन जी पवित्रता और सत्याई रामी बनती और बढ़ती है।

विनयधार सेठ की चारित्र्य-प्रशंसा

राजकुमार कमलसेग के जीवन—प्रसंग ने अप सुन चुके हैं कि प्रधान उसकी ऊँझासा के उत्तर में पूर्य राजा श्रीकेतु की राजस्था ला

वर्णन कर रहे हैं, जिसमें विनयधर सेठ का प्रसंग आया है। सभा में अधिकांशतः व्यक्ति विनयधर सेठ ली गूरि भूरि प्रशंसा करने लगे। इस प्रशंसा से वहाँ बैठे हुए एक व्यक्ति ले नन में ईर्षा ली आग जल लठी। वह राम। गों खड़ होकर कहने लगा कि विनयधर रोठ और उसकी चारे देवांगना तुत्य रोठानियों का बाहर का रूप कुछ और है किन्तु मैं जानता हूं कि उनका अन्दर का रूप वैराना कुरुप है। दूसरे व्यक्तियों ने उसके कथन का तीव्र विरोध किया और उसे निन्दनीय बताया। उन्होंने रोठ की विनयशीलता और चारों रोठानियों की अनुपग चारित्र्य शक्ति की प्रशंसा की। उन्होंने चुनौती दी कि इस सभके ब रिक्य में शंका करने की कोई स्थिर नहीं है, मिर भी कोई वाहे तो उनकी परख की जा सकती है।

काम शान्त ला कुप्रभाव देखिये कि राजसभा ने तो विनयधर रोठ की प्रशंसा का बहुगत था, रो वहाँ बात रागाप्त है गई किन्तु श्रीकेत्र राजा के गन—गरितष्क पर विनयधर रोठ की रोठानियों ला वर्णीत अद्भुत सौन्दर्य छा गया और वे काम के वशीभूत होकर पड़ने लगे। श्रीकेत्र महाराज के काम पीड़ित मन में उथल पुथल मचलने लगी। एक ओर कलंक का गय है तो दूसरी ओर कमानि की लगता।

काग की ज्वालाओं के शगन का उपाय भी वे करना चाहते हैं, किन्तु गन इतना आशान्त हो गया है कि उन्हें कुछ भी ठीक रो रुझाता नहीं। उस समय उनके कक्ष में उनका एक स्नेही जन ब्रवेश करता है जो महाराजा को उस विनाशुरु अवस्था में देखकर पूछ बैठता है कि आप इतने लाग्र एवं खिला कैसे दिखाई दे रहे हैं? काम के समुद्र में गोते लगाते हुए महाराजा को भी जैसे तिनके का सहारा मिला। महाराजा ने उसके अपने काम—तप्त गन की दशा का वर्णन करते हुए निराकार उपाय पूछने की इच्छा व्यक्त की।

किन्तु वह स्नेही व्यक्ति भी और उसका निकला। उसने महाराजा को कामोत्तेजकरा को और ज्यदा भड़काया और कहा कि विनयधर सेठ की सेठानियों का रूप वास्तव में देवांगनाओं से भी

बड़कर है तथा वह महाराजा के लिये पनको सुलभ करने की व्यवस्था करेग। महाराजा श्रीकेतु अब काम के जाल में अधिक फँसते जा रहे हैं।

अजित बनिये

यह कथाभाग तो आगे चलेगा किन्तु इरारो आप जीवन लौ कहियां पकड़िये और आत्मशक्ति को इस कामरूपी शान्तु पर अनिम विजय ढारा करने के लिये कदम आगे बढ़ाइये काम जय से आत्म-जय का मार्ग प्रशस्त हो जाएगा। एक काम का दमन कर लेते हैं तो दूसरे सारे कर्मों का दमन सहज हो जाता है और कर्मों के बादल हटे नहीं लि आत्म धूर्य का तरल प्रकाश घूम्ह और प्रसारित हो जाएगा। विकारों के व्यापोह से विलग होकर भगवान् श्री अंजितानाथ की तरह अजित बन जाने में ही जीवन का सर्वोच्च लक्ष्य समाया हुआ है।



लाल भवन

23.8.72

चिन्तन की धारा में

“जयशत्रु राजा ओ विजया राजी को आत्मजात तुम जी.....”

अभिप्राय भगवान् की प्रार्थना की पंक्तियों का जो उद्वासन किया जा रहा है, उसका मूल अभिप्राय यह है कि चिन्तन की नगोदृति का स्थानक् विकास हो सके। इन पंक्तियों में जिन शब्दों का संकलन हुआ है, उन राब शब्दों के अर्थ के साथ जीवन का चिन्तन आवश्यक है। प्रार्थना की पंक्ति बाह्य रूप से जिपानी गड़वपूर्ण नहीं है, उसना उसके गूढ़ार्थ पर चिन्तन महत्त्वपूर्ण है, क्योंकि इस चिन्तन के प्रसंग से ही बौद्धिक एवं मानसिक स्तर का क्रमिक विल सुलग बन सकता है।

चिन्तन आत्मा में गम्भीरता की प्रवृत्ति का विकास करता है और धीरे-धीरे ज्यों-ज्यों विनान की गम्भीरता बढ़ती जाती है एवं यदि वह पारा आता विकारा की देश। में बढ़ती है तो उसका श्रेष्ठ प्रणाव वाणी एवं कर्म पर भी परिलक्षित होने लगता है। वाणी और कर्म वा मूल तो चिन्तन में ही होता है।

चेतना और उसका आवरण

आत्मा का मूल गुण चेतना-ज्ञान है। चेतना का नाम ही आत्मा है—ऐसा कहा जाए तो सर्वथा उचित ही होगा। प्रत्येक जीवात्मा गे शुद्ध रखकरी वेतना का निवारा होता है जैसा कि सिद्धात्मा ने होता है, किन्तु इस वेतना के क्षेत्र में जो भर्यंकर अन्तर दिखाई देता है, वह कर्म-मैल की प्रगाढ़ता के रूप में दिखाई देता

है। जिस आत्म के साथ जिसने अधिक और जिसने विकास कर्म पुद्गल सम्बद्ध होते हैं, उसका चेतना गुण भी उतना ही आच्छादित बना हुआ रहता है। जिस आत्मा का चेतना गुण जितना ढक जाता है, रामाङ्गिये कि उसकी पृथ्वी भी उतनी बढ़ जाती है। इसांगिये हुद्दे और चिन्तन की क्षमता। इसी स्थिति के अनुसार न्यूनाधिक ४५ में जीवत्माओं में पाई जाती है।

बुद्धि या चेतना की दृष्टि से प्रत्येक मनुष्य और प्रत्येक जीवात्मा का स्तर गले ही ऊंचा—नीचा हो, परन्तु बुद्धि सब आत्माओं में विद्यान डोती है। इसी हुद्दे के अस्ति वह अपने भले—बुरे का ज्ञान करती है तथा स्परिष्ठिति परिषिष्ठितियों में अपने कर्तव्याकर्तव्य का निर्धारण करती है। प्रत्येक द्वेष के अन्दर भी बुद्धि के प्रयोग से ही काम चलता है। जिसकी बुद्धि का जितना जितना अधिक विकास होता है उतना—उतना उसका कार्य अधिक कृशल, व्यवरिधित एवं राराहनीय होता है तथा वह उसके अनुसार अधिक एवं विरत्त छुड़ि सम्पन्न कहलाता है। बुद्धि की मात्रा के अनुसार ही विनान की गूँड़॥ बनती और बढ़ती है।

आत्मा के विकास के अनुसार ही बुद्धि की मात्रा अल्प या अधिक होती है। आत्मा के विकास के साथ ही इन्द्रिय शक्ति ला विकारा होता है और इन्द्रिय शक्ति की क्षमता ही चिन्तन को भी राखग बनाती है। जहां बुद्धि के विकारा की कगी है, वहां वह रीगित स्थिति से ही विनान करता है, 'केन्तु बेना विनान के किसी भी प्राणी की स्थिति नहीं है। जीवात्म में अल्प से अल्प हो, किन्तु चेतना की स्थिति रहेगी अवश्य, वरना वह जीवात्म ही नहीं कहलएगा और जहां अल्प से अल्प चेतना है तो अल्प से अल्प ही राही—वहां चिन्तन की भी क्षमता गिलेगी ही। जीव चाहे गनुभ्य गति में हो या पशुओं की जाति में अथवा देव या नरक की स्थिति में सर्वत्र अपनी अपनी बुद्धि के अनुसार प्रत्येक जीवात्मा अपने अपने क्षेत्र में आवश्यक प्रयोजनों के लिये चिन्तन अवश्क करता ही है।

चेतना जितनी अधिक जगृत अवस्था में होगी, चिन्तन ला

सार भी कपर चढ़ता ज एगा। इन्द्रियजन्य शक्ति की उच्चता मनुष्य आदि को प्राप्त होती है जिनके पास पांचों इन्द्रियों और मन की गी उपलब्धि होती है। फिर भी मनुष्यों में अधिकतर ऐसे भी मिलेंगे जिनके मन और भौतिक ली स्थिति अथवा दुर्बलता एवं आशक्त री प्रतीत होती है। न्यूनाधिकता की परिस्थिति तो रावंत्र ही दिखाई देती है। इसी के अनुसार ज्ञान दशा का प्रयोग ये मनुष्य करते हैं तथा तदनुकूल ही चिन्तन का अभ्यास भी बनता है। यहाँ जो ज्ञान एवं चिन्तन की क्षमता बता रहे हैं, वह चाधारण इकित रो राम्बनेत है। उराकों दिशा की रपष्टता आलग रो रागझोंग। जो क्षमता है, वह गुण है। जब पिशा आत्मोद्धारक होगी तो सद्गुण रूप ही वह क्षमता होगी तथा उसके परिणाम भी उसी तरह श्रेयस्कर होगा। और यदि पिशा विकारों की ओर ले जाने वाली हुई तो उस क्षमता लो भी वह दुर्गुण रूप बना देगी तथा उस क्षमता का उस अवस्था में दुरुपयोग ही अधिक होगा।

चिन्तन की क्षमता

क्षमता के इस स्तर के अनुसार एक इन्द्रिय और मन के आत्म में चार इन्द्रियों वाली जीवात्माओं का स्तर नीचे उत्तरेगा और उनसे नीचे क्रांति: तीन व दो इन्द्रियों वाले जीवों का स्तर होगा। परन्तु एक इन्द्रिय वाले जीव भी वेतनाग्राम विचान की क्षमता रखते हैं एवं उसके प्रकाश में अपनी वर्तमान समस्याओं का सनाधान निकालते हैं। स्पर्श इन्द्रिय समस्या का स्पष्ट एवं प्रत्यक्ष समाधान नहीं निकाल सकती है। लेकिन रपर्श के पीछे रहने वाला जो ज्ञान है जिराको बुद्धि कहा जा सकता है और वह अति रवल्म बुद्धि होती है। फिर भी उस बुद्धि रो भी दे जीव अपने जीवन की समस्याओं को हल करते हैं।

एकेन्द्रिय जीवों के ज्ञान के राम्बन्दि गें उपको कई पथ्य सुनकर आश्चर्य होगा। किन्तु यदि आप स्वयं के अनुग्रह से चिन्तन करेंगे तो यह स्थिति भी आपसे अविदित नहीं रहेगी। इन एकेन्द्रिय प्राणियों गें भी यह ज्ञान विद्यागान होता है कि कौन-रा भोजन उनके शरीर एवं जीवन की सुख्ता के लिये हितावह हैं तथा उसके अनुसार

कौन—रा भोजन ग्रहण करना चाहिए। आप देखते होंगे कि वर्षा के मौसम में बुआई के पहले किसान लोग जब अपने खेतों को तैयार करते हैं तो उसके बाद उसमें वाहे रासायनिक खाद हो या पुरानी पारठ का खाद हो—वे खाद खेतों ने लाला करते हैं। पुराना खाद जो रीढ़ों तौर पर गोबर अथवा राड़ास्थ युक्त तत्त्वों लाला होता है। इस दुर्गम्य से गरे तत्त्वों के सारे लंत में बिल्कुल कर किसान उसमें बीज बो देता है। लिन्तु उरा बीज रो जब पौधा निकलता है, उराके फूल और फल लगते हैं तब उनमें वह दुर्गम्य नहीं होती है।

इस स्थानी में समझने का अध्य यह है कि वह मारी बद्दू लाला खाद पौधे ली जड़ों में काफी पर्याप्त गांत्रा में पड़ा होता है, फिर भी उसमें से वह पौधा उत्तना ही खाद ग्रहण करता है, जितना उसके सुखारख्य के लिये आवश्यक होता है। यह सम्यक् ग्रहण शक्ति उस एकेन्द्रिय जीवात्॥ की वेतना अथवा विनान शक्ति के प्रमाण रूप ही तो होगी। वह पैंचा खाद को न तो अधिक और न ही अल्प मात्रा में ग्रहण करता है बल्कि जितना ग्रहण करता है, उसे वह अपने शरीर के अनुरूप परिणत कर लेता है, न कि वह मिकृति के रूप में जाता है।

पौधों की फलदारी शक्ति से भी उनकी ज्ञान दशा का प्रगाण गिलता है। एक ही बड़े खेत में गेहूं की भी क्यासियाँ हैं, जने की भी हैं तथा उसी के एक गां में आफीम की फसल भी जो रखी है। १०० में ५० ही प्रकार का खाद भी दे रखा है, फिन्तु प्रत्येक प्रकार का पौधा अपनी आवश्यकता के अनुसार ही उसमें से अपना गोजन ग्रहण करेगा तथा उस एक रूपता के बावजूद भी विशेष प्रकार के फलों का दे पौधे उत्पादन करेंगे। उसी खाद से पौष्टिक गेहूं भी पैदा होगा तो यिष्वाग्य आफीग भी। उसी भूगि एवं खाद रो इन दोनों पौधों ने विपरीत उत्पादन कैसे कर लिये? इसकी तह में एकेन्द्रिय जीवों की ज्ञान शक्ति प्रकट होती है कि वे समान भोजन में से भी अपनी रुचि के अनुकूल अंश ही ग्रहण करते हैं।

जब एक छोटे से बनस्पति पौधों की यह स्थिति है तो विचार करने की बात है जब गनुभ्य जैरा। पांचों इन्द्रियों और गन वाला प्राणी

अपनी विनान शिविर का पूरा और सनक्ष भरा उपयोग नहीं करे तो कैसे उसका चिन्तन सर्वोच्च सीमा तक उद्घर्वगानी बन सकेगा ?

उच्चतम विकास की प्रक्रिया

मनुष्य जीवन में आत्म विकास की दृष्टि से कंडी उपलब्धियाँ प्राप्त हैं। फिरतु जब तक उनके स्वस्थ उपयोग का अभ्यास नहीं किया जाएगा तथा चेतानाशक्ति का सर्वागीण प्रयोग नहीं होगा, तब तक आत्मशक्ति विकाराशील कौरो बन राकेगी ? उच्चतम विकास को प्राप्त करने के लिये चिन्तन की प्रक्रिया का सुदृढ़ता बनाना परम सहायक होता है। आप अपने मस्तिष्क को इस चिन्तन के क्षेत्र में तत्परतापूर्वक जब नियोजित करेंगे तो आप न सिर्फ स्वर्य के स्वरूप पिष्ट भूलिक रांधार के राणी प्रल र के जीवों के वर्तगान खरूप के बारे में भी लिशिष्ट जानकारी पा सकेंगे।

चिन्तन की दशा में भी स्थायित्व नहीं होता है। यदि आत्म-विकास की परिस्थितियाँ सुधारती हैं और ऊपर उठती हैं तो इन्द्रिय शक्ति का विकास भी होता है तथा गति की स्थिति भी सुधारती जाती है। एक से दो और इस तरह पंचेन्द्रिय व मन गाली गहि भी मिलती है एवं उसमें भी बुद्धि की मात्रा एवं श्रेष्ठता में वृद्धि होती है। यह अवस्था ही विकासशील लहलाती है तथा आत्मा जब अपना सर्वोच्च विकास साध लेती है तो वही परमात्मा की स्वरूपधरिणी बन जाती है। इसके यिपरीत यह गति पापात्मा जीवों की पतन की दिशा में भी जा सकती है, जो श्रेष्ठ स्थिति से रित्ते हुए एकेन्द्रिय की दयनीय दशा तक नीचे की ओर पहुंच जाते हैं। इसी परिवर्तनशीलता ले ही आधार पर चिन्तन की क्षमता में भी परिवर्तन होता रहता है तथा उसकी श्रेष्ठता में भी।

मानव जीवन अन्य सम्पूर्ण जीवनों में इसी कारण उत्कृष्ट जीवन कहलाता है कि उसमें बुद्धि के विकास एवं ज्ञान की शपिरा ला जो प्रौढ़ स्वरूप ऊचे से ऊचे स्तर तक पहुंच सकता है, वह अन्य जीवनों में सम्पूर्ण नहीं होता है। अपनी बुद्धि के प्रयोग से डी मनुष्य कहिन से कहिन समस्याओं के भी साहसपूर्ण समाधान निकालता है और त्रिशिङ्ग क्षेत्रों में प्रगति स्पादित लरता है।

किन्तु यह विवारणीय विषय है कि मनुष्य को सर्वश्रेष्ठ ज्ञान एवं चिन्तन की क्षमता मिलती है और वह फिर भी अनजान तथा बेशांख ले कर यदि उस क्षमता का श्रेष्ठ उपयोग न करे अथवा उसका अपनी ही आत्मा के हितों के लिये दुरुपयोग करे तो उसके लिये रावधानी का एक रवरथ य तावरण बनाने अथवा बताने रहने का कार्य कितना आवश्यक एवं रवनात्मक होगा ?

बुद्धि का वर्तमान अतिरेक

आधुनिक मानव जीवन के साथ यह विशेष समस्या और जु़ल्ल गई है कि जितना उसकी बुद्धि का विकास हो रहा है, उतना ही उरामें अतिरेक भी आता जा रहा है। प्राकृतिक शक्तियों पर अपने बुद्धि-बल से उराने विजय ग्राप्त की है। किन्तु उसके साथ ही वह जिस रूप में ब्रकृति के नियमों के विपरीत बलने ली अपनी आदत बना रहा है, उससे वह अपने निज के स्वभाव ले भूलता जा रहा है तथा उरागें नाना प्रकार की विकृतियाँ भी एकत्रित करता चला जा रहा है। गैं एकेन्द्रिय जीवों के भोजन की चचर्च कर रहा था तो भोजन ही के बारे में मनुष्यों को भी लर्हा कर लूं जिससे उसकी विकाशपूर्ण स्थिति पर रोशनी पड़ती है।

फैस भी खाद हो, किन्तु पौधा उतना ही ग्रहण करता है जितना ठीक ठीक उसकी सुरक्षा और वृद्धि के लिये आवश्यक हो। यदि पौधा भोजन का भान भूल जाए तो वह राड-गल जाएगा या रूख जाएगा। पौधा राडता-गलता है तो अति वृद्धि से और रूखता है तो अनावृष्टि से किन्तु अपने भोजन में दोष वह अपनी ओर से नहीं करता। किन्तु ज्ञान एवं विनान की दशा में सर्वोन्नत होते हुए भी जब मनुष्य के सामने स्वदेश एवं मिल शोजन आता है तो बहुसंख्यक लोग अवश्य ही भाग शूल जाते हैं और अपनी पात्रन-क्रिया व रवरथ को बिगाड़ कर भी रवाद लालरा गे फिराल जाते हैं।

एक पौधा भी जो गलती नहीं करता, पशु भी अपनी रुचि के अनुसार वारावाना लेता है लेकिन जब मनुष्य ही इपान लालवी ब-

जापा है तो यह उसकी विकास पद्धति ही कहलाएगी। इस पद्धति को स्वास्थ्य बनाने के लिये बुद्धि के साथ विवेक की भी सख्त जरूरत होती है। विवेक की बुद्धि के इस प्रकार के दुरुपयोग को रोकता है। पौष्टिक की अपेक्षा रवादु भोजन के उपभोग तथा उसे भी अधिक गांव में खा लेना एवं बाद में उसके पाचन की कृत्रिम वस्तुएँ—चटनी, चूर्ण आदि का प्रयोग करना, प्रकृति के विरुद्ध बलना ही तो हुआ और इसला दुष्परिणाम भी पूरी तरह उसे भुगतना पड़ता है।

बुद्धि होते हुए भी विवेकपूर्ण चिन्तन का अभाव तथा उस पर भी प्राकृतिक नियमों के विरुद्ध बलने की आदत ने गनुष्ठ को पीड़ित भी बना रखा है, फिर भी उसमें आवश्यक रावणेती नहीं आती—यह खेदपूर्ण वस्तुरिखिती है। भोजन की लालसा में बढ़ोतारी भी इसी स्थिति के कारण हो रही है। इसका परिणाम 'देल्लाई' देता है कि तपस्या जी वृत्ति घटती जा रही है तथा जो तपस्या की भी जाती है उसकी विद्या अधिकतर उप्राकृतिक होने के कारण उसका कुफल आत्मा और शरीर दोनों पर ऐष्ट छलट होता। दिखाई देता है एक माह में कम से कम बार उपवास भी कर लिये जाएं पो संस्कृत की वृत्ति भी शुद्ध रहती है तथा शरीर भी स्वास्थ्य बन जाता है।

फई लोग उपवास आदि तपस्या करते भी हैं किन्तु उसके पहले और बाद में भोजन ला इतना अरांगा आ जाता है तथा नरिष्ठ भोजन इतना अधिक दूरा—दूरा कर खाया जाता है कि तपस्या का सुफल होना तो दूर रहा, उल्टे उस असंयम से शारीरिक स्वास्थ्य भी बहुत जयादा बिगड़ जाता है। उस अवस्था ने आन्तिक स्वास्थ्य की बहुत जयादा बिगड़ जाता है। वास्तव में संयम सहित उपवास तो चिकित्सा के प्रधान साधन के रूप में सफल बनते हैं, जिसका प्रयोग प्राकृतिक चिकित्सा के हारा भरपूर किया जाता है।

बुद्धि को विवेक से जोड़िये

जब बुद्धि के साथ विवेक का अभाव होता है तो वह विपरीत दिशा में बढ़ने लगती है। इसीलिये तो बुद्धि सुखदि भी होती है और कुदुक्षी भी। बुद्धि के लुबुद्धि रूप में नरिवर्तित होने पर उस धमता ला

दुरुप्योग होने लगता है। उस दुरुप्योग की स्थिति में भी विनान जो होता है, लेकिन वह चिन्तन भी 'कु' से युक्त होकर कुत्सित ही होता है। 'कु' की दिशा पतन की होती है और जितनी अधिक क्षमता के साथ 'कु' की दिशा में गिरना होता है, पतन की गिरावट भी उतनी ही भयानक होती है।

मानव जीवन में इस कारण इस बिन्दु की ओर प्रवान रूप से ज्ञान केंद्रित होना चाहिये कि इस प्राप्त बुद्धि एवं ज्ञान की क्षमता का पूरा—पूरा उपयोग हो—यह पहली बात तथा दूसरे, उस उपरोग में नियन्त्रक की तरफ विवेक प्रतिक्षण विद्या॥८॥ इस प्रक्रिया से गनुष्ठ जो चिन्तन करेगा उसमें इस रांगार के विकारों को जीतने का रांकल्प होगा और दृढ़ संकल्प होगा। अपनी आत्मा के मूल स्वरूप के प्राप्त करना तथा उसके लिये उसके जीवन में लोक कल्याण एवं परोपकार की वृत्ति का भी अत्यधिक रूप से विस्तार होने लगेगा।

चिन्तन के ऐसे श्रेष्ठ प्रवाह के निर्माण के लिये ही गगान् अजितनाथ जी प्रार्थना करनी है और उनके दरणों में बैठकर उनके आदर्शी स्वरूप को हृदयोंगम करके उसे अपने जीवन में उतारना है। यह कार्य बनेगा कैसे? इसके लिये कवि ने ही मार्गदर्शन दिया है

चरम नयण करी मारग जोवता रे

मूल्यौ सकल संसार।

जेणे नयणे करी मारग जोइये रे

नयण ते दिव्यविचार॥

विवेकपूर्ण चिन्तन की वृत्ति को राजा बनलर अप्टुच्य आए—विकारा के गार्ग को खोजना है और उस पर चलना है किन्तु प्रभु के स्वरूप का दर्शन तथा उस मार्ग की खोज इन वर्म वद्युओं से सम्भव नहीं है। जिन आंखों से ऐसे दिव्य दर्शन किये जा सकते हैं तथा उच्च विचारों लो ग्रहण करने की उच्चि बनाई जा राकती है, वे आंखें ज्ञान चक्षु ही हो राकती हैं जो दिव्य दिशा में भी दूर तक दर्शन करने में सक्षम होते हैं। ऐसे ज्ञान वद्यु जिसके खुल जाते हैं वो उनके

प्रभाव से वर्म चक्षुओं सहित सभी इन्द्रियों और मन की शक्तियां भी आश्चर्यजनक रूप से बढ़ जाती हैं।

ज्ञान और लब्धियों की उपलब्धि

चेतना की उत्कृष्ट रिथ्रिति बनती है तब ज्ञान चक्षुओं ली राहायता रो शारीरिक शक्तियां भी अभिवृद्धि हो जाती है। इन्हें ही शास्त्रीय परिमाण में लक्षियां कह जाता है। ये लक्षियां एक प्रकार से आत्मिक वेकास के शारीरिक फल के रूप में प्रतिफलित होती हुई दिखाई पड़ती हैं। आन्तरिक ज्योहि रहि भाज भी प्रकाशित होते हैं।

लब्धि रूप शक्तियां प्रत्यक्ष में दिखाई देती हैं, क्योंकि इराका रीछ ॥ राम्बन्ध आगाराकित की तदनुज्ञुल क्षमता रो होत है। रोधियत रूस की एक 11 वर्षीय बाला छेसा पेट्रेलोया का वृत्त मैने यद्या था जिसके अनुसार यह बाला अपनी चर्म चक्षुओं की दृष्टि से परे भी देखा राकती थी और यहां की जानकारी दे राकती थी। गनोविज्ञान वेत्ताओं ने उसे गन को केन्द्रिय करने की शक्ति कहा, लेकिन असल शक्ति वो अन्नार को ही मानी जाएगी।

यह अन्नार की शक्ति भी वो गुण्य रूप रो गन की ही नर्ति विद्यि पर आधारित रहती है। "मनः एव मनुष्याणां कारणं बन्धमोक्षयोः।" मन ही मनुष्य को बांधता है तो मुक्ति दिलाने वाला भी गन ही होता है। गन को केन्द्रित करने का परिपक्व अभ्यार ज्ञान चक्षुओं लो राजग बनाने की दिशा में राफल बन राकता है। यह आपकी सामायिक ही है जिसके द्वारा आप यदि निरन्नार अभ्यास करें तो मन की गति समाप्ता के अनुसार बलने लगेंगी। सामायिक क्रिया का रूढ़ रूप में पालन इसमें कोई सहायता नहीं करता। सामायिक एक तरफ से सान्दर्य एवं ढिया दृष्टि निर्माण ली प्रथमिक पाठशाला है जिराको राफल बनाने के बाद ही तो पिघालयों और गहविद्यालयों की शिक्षा का ग्रना आ राकरा है।

संसार में ऐसे भी कई लोग होते हैं जो प्राथमिक पाठशालाओं

की योग्यता भी पूर्ण नहीं प्राप्त करते और अपने आपको महाविद्यालय का स्नातक बता देते हैं। वास्तव में ऐसे लोग समाज के लिये ज्यादा खतरनाक होते हैं। 'अर्थविज्ञं गरं ब्रह्मापि न रंजयेत्.....' के अनुसार ऐसे लोग न तो दूरारों की शिक्षा। गानते हैं और न राहीं राते पर ही चलते हैं। इनका रथ्यं का वारतव गें कोई चिन्तन छोता नहीं है, किन्तु अपने आपके बाहरी ढंग से ये ऐसा बताते हैं जैसे बहुत बड़े विनाक हैं। इस मिथ्या प्रदर्शन में वे दंभ और छठवाद को बढ़ावा देते हैं। बन्दर को हल्दी का एक गाठिया गिल गया तो वह परारी बन बैठता है। इस तरह रुद्र पिचारणा रो कुछ पकड़ लेना और चेतना को ताक गें रख देना, जीवन विकास को अन्धकार की ओर भोड़ना हो जाता है।

अन्तज्योति की रक्षा

अन्तज्योति को प्रकट करने की दिशा में जितना श्रम और जितनी साधना की जाएगी, वही सार्थक होगी। अन्धकार से ब्रकाश की ओर गति करने का यही गार्ग है कि आत्मा के अन्तर का अन्त एक रहे और वहाँ ज्ञान का प्रकाश फैलता जाए। चिन्तन की धारा में जब कोई रोज दूबकियां लगाने लगेगा और गुड़थों की शोध करपा रहेगा। तो उसका आत्म प्रकाश भी निरन्तर अभेद्य होता रहेगा। अन्तज्योति ले एक बार प्रकट हो जाने के बाद साक्षात्कारी इस बत की झोनी चाहिये कि उसकी रक्षा हो तथा उसका प्रकाश गिरन्तर अधिकाधिक उज्ज्वल बनता जाए।

आज रक्षा बन्धन का पर्व है और मैं आगको बताना चाहूंगा कि इस पर्व का प्रारम्भ भी अन्तज्योति की रक्षा के उद्देश्य से ही हुआ था।

वेशी भी पर्व था उत्तोजन के गूल उद्देश्य के विसर्प कर देना तथा उसकी लङ्घ परापरा को पकड़ लेना, अन्तज्योति की सुषुप्त अवस्था को ही प्रकट करने वाला तथ्य होता है। जहाँ चिन्तन ला अभ्यारा घटता है या भूला दिया जाता है, वहाँ अन्तज्योति गन्द होने लगती है। राखी के पर्व के विषय में भी ऐसी ही रिश्तति है कि लकीर पीट रहे हैं और अन्दर के रहस्य को भूल गये हैं। जब अकम्पनावार्य

मुनि एक नगर में पहुंचे तो वहाँ के राजा ने अपने प्रधान से उन महात्मा-सन्त के समीप सेता में जाने की इच्छा व्यक्त की। किन्तु वह प्रधान नास्तिक था इसलिये वह सोचता था कि राजा पर कौसी तरह का आधारिक प्रभाव न पढ़े—वृश्न। उराली दार्ढ नहीं नहेगी। यह राजकर्ता उराने राजा के बहाँ जा ने को निरर्थक बताया। राजा उराके बावजूद जह जाने ही लगे तो प्रधान भैं कल्पिता भावना से साथ हो लिया कि वह उससे कुट्टेल प्रश्न पूछेगा।

सन्त जीवन में अकम्पन

बहाँ राजा जीवन के प्रति आरथा नहीं और विना गें निष्ठ। नहीं, वह तो ऐसे ही प्रश्न पूछेगा जिससे किसी तरह गिन्दा ला यतावरण बने। यह अपने ज्ञान में पहले ही जागकर खवय अकापनाचार्य ने गौन ग्रत ग्रहण कर लिया तथा रामी रान्तों का भी यह ग्रत करा दिया। अर्थी के विंडालाद रो बचने के लिये ही उन्होंने ऐरा किया। सिफ़ एक मुनि जो गोवरी के लिये बाहर गये हुए थे, उन्हें ऐसा निर्देश नहीं दिया जा सका। राजा और प्रधान वहाँ आये तो मौन व्रत जागकर प्रधान कुठाच करने लगा। जह वापिस लौट रहे थे तो संयोग से शिक्षा से लौटते हुए वे मार्ग में मुगि मिल गये जिन्हें उस प्रधान के कुरवमाव की जानकारी नहीं थी। प्रधान ने उनसे प्रश्न पूछे और उन्होंने उसका ऐसा खरा—खरा उत्तर पिया कि प्रधान राकपक्ग गया। उस समय वह कुछ बोला नहीं, उसे उसने अपने भयंकर अपमान के रूप में लिया।

आचार्य ली आज्ञा से मुनि रात्रि को एक वृक्ष के नीचे व्यानस्थ हो गये, तब रात को वह प्रधान चार साथियों के साथ नंगी तलवारें लेकर वहाँ पहुंचा। उथा राबने उनली हत्या के लिए ८ लवारें उठाई किन्तु किरी अदृश्य शविता के प्रभाव से ऐरा हुआ। कि उनकी ललवारें और उनके पैर वही रेखर हो गये। सुबह जब लोगों ने वे राजा ने यह दृश्य देखा तो ये बड़े कृपति हुए और उन्हें वहाँ से हटाया। मुनि ने उस रागय उरो प्राणदण्ड न देकर छोड़ने का आग्रह किया और आग्ने गारने वाले को भी रक्षित किया।

यह दृष्टांत काफी विस्तृत है किन्तु सार यह है कि जहाँ चिन्तन की धारा गमीर होती है और अन्तज्ञाति गूणतया जागृत होती है, वहाँ वह अपने हत्यारे की गी रक्षा करने का ही भाव रखता है। जहाँ राज्यी रक्षा करने की भावना है तभी तो रक्षाबन्धन पर्व जी रार्थकता होती है।

भगवान् अजितनाथ की प्रार्थना के रस को अपने उन्नारपाम तक पहुँचने दीजिये। यह रस चिन्तन की धारा को गमीर और गृह बनाएगा। चिन्तन जितना सजग, जितना विवेकपूर्ण एवं जितना साधनामय बनता जाएगा, उसका रस वरूप भी उतन ही अधिकाधिक निर्मल होता जाएगा। चिन्तन वह गुल है जहाँ से ज्ञान के पृक्ष अधिक रो अधिक पल्लवित और पुष्टि रहता है। यिन्तान का अभ्यास और विकास उन्नत जीवन की नहर्ती जावश्यकता है।

□□□

लाल भवन

24.8.72

अनुकरणः अंध और जागृत

"अजितनाथ प्रभु तुम देवन के देव जी....."

भगवान् अंजिपान थ की प्रार्थना करते हुए हम उनके आदर्श स्वरूप के ओर वटों देखना चाहते हैं ? गुरु से ज्ञान सीखने ली परम्परा क्यों है ? बच्चा अपनी अबोध अवस्था में जिस लिसी को जो कुछ करते हुए देखता है पैसा ही वह क्यों करने लग जाता है ? मूल में इन राबके पीछे एक ही वृत्ति होती है और वह है अनुकरण भी वृद्धि। बच्चा अप्पे या बुरा जैर। भी देखता है, उराको वह नकल उत्तारना शुरू कर देता है। इसीलिए बाल्यकाल की सुशिष्ठा आवश्यक मानी गई है। ताकि वह अपनी तीव्र ग्रहण शक्ति की अवस्था में अच्छा देखे, अच्छा रीखे ताकि अच्छे का अनुकरण कर सके।

गुरु से ज्ञान सीखने की प्रसन्नत का रहस्य भी यही है कि उन्होंने अपने अध्ययन, अध्ययनराथ एवं अनुभव के आधार पर जो ज्ञानार्जन किया है वह सारपूर्ण होता है पथ उसको उनसे बिना किसी संशय के—स्थिर मति के साथ सीखा जा सकता है। इसमें भी गुरु के अनुकरण की ही वृत्ति कही हुई है। गगवान् श्री अजितनाथ की प्रार्थना का अन्तरंग अभिग्राय भी यही है कि जो उन्होंने चरण विलास प्राप्त किया है, यदि हन् भी उराका राफल अनुकरण कर लके तो बिना नई खोज व जोखिम के हम भी उसी मार्ग पर चलकर अपना आत्मकल्याण कर सकते हैं। आदर्श का यही अर्थ है कि वह दूसरों को मन्य हो।

अनुकरण और पूर्वानुभव

प्रारम्भ रो लेकर अन्त ८० रागाजिक व्यवरथा क्रया गें इसा दृष्टि रो अनुकरण एक आवश्यक वृत्ति हो जाती है क्योंकि पूर्वानुभवों से लाभ न उठाया जाए और प्रत्येक व्यष्टि स्थयं प्रत्येक प्रकार के अनुभव का नवीनीकरण करता रहे तो विकास नाम की कोई स्थिति नहीं रह जाएगी। पूर्वानुभवों के आधार पर जब उरारो आगे चलने ला शिलरिला बना रहता है तभी तो विकास का चक्र आगे रो आगे घूमता रहता है। ब लक्ष जब पिरा का अनुकरण करता है या गुरु का अध्यवा भक्ता भगवान् का ८० उसको मूल नावना यही होती है कि जो कुछ इन पूर्वजों ने सापादित कर लिया है उसे ही अपनी आगे की प्रगति का आधार बनाना चाहिए।

अनुकरण के साथ श्रद्धा का मेल

पूर्वानुभव हों या पूर्व की उपलब्धियाँ हों—अनुकरण के रागय ज्ञान दृष्टि रो आगर अनुकरणकर्त्ता भी उन्हें जांच और नरख ले तो उसका अनुकरण गाला दिशा में ले जाने वाला नहीं होगा। अनुकरण के सथ श्रद्धा का होना आवश्यक है किन्तु श्रद्धा के वास्तविक स्थारूप को भी शलीणति समझ लिया जाना चाहिए। वर्तमन काल में हमारे क्षेत्र में तीर्थकर नहीं हैं, सर्वज्ञ, सर्वदर्शी, केवली या पूर्वज्ञर भी विद्यगान नहीं हैं, तब प्रश्न उठता है कि राहीं गार्गदर्शन के लिए किसकी ओर पेखा जाए ? ब दृष्टि राजा एवं विद्वान् पुरुषों की ओर ही जाती है। किन्तु हतोत्साहित करने वाली परिस्थिति दिखाई देती है कि इनमें से अधिकांश एक जो कुछ कहते हैं, उसे अपने जीवन में उतारते नहीं हैं। कथनी और करनी के भेद गें चरित्रहीनता ली अवरथा प्रकट होती है।

श्रद्धा को अनुकरण के साथ जोड़ो समय इस परिस्थिति की पवकी पहवान करनी जरूरी है। ऐसी अवस्था में यदि लेवल श्रद्धा से ही काम लें तो गलत मार्ग पर भी कदम बढ़ सकते हैं। इसलिए सच्ची श्रद्धा वह होगी जो विवेक के साथ की जाए। विवेक

परीक्षा करके यह बता देगा कि अमुक पुरुष अथवा अमुक मान्यता की अमुक अग्रणीति या अमुक उपलब्धि आत्म-विकास के लिए ग्राह्य है या नहीं। स्वयं की अर्जित ज्ञानदशा से जो परीक्षा होगी उसके वरिणाम को लेकर ही श्रद्धा का प्ररांग बनाना चाहिए। जब श्रद्धा विवेक के ही रातर पर खड़ी होकर आगे बढ़ेगी तब उसको फूटने वाली क्रिया भी उतानी ही समुन्नत एवं प्रगतिशील होगी। श्रद्धा, विवेक और क्रिया जी त्रियोगी एक साथ रल मिलकर बहनी चाहिए।

ज्ञान और आचरण का संगम

ज्ञान और आचरण का जब तक रंगगा नहीं होता। तब तक किसी के जीवन आदर्श का अनुकरणीय भी नहीं बनता है। ऐसा ज्ञान-विशाल हो सकता है किन्तु आवरणहीन ज्ञान प्रभावशाली नहीं होता। ज्ञान के बिना आवरण भी महत्वहीन ही रहता है। आज की परिस्थिति विशेष रूप से ऐसी दिखाई देती है कि एक लिहान् अपनी विद्वत्ता की दृष्टि से अच्छे तर्क देता है और तत्त्वों का युन्दर निरूपण करता है किन्तु ज्ञान के फल को वह अपने जीवन की वर्या में कार्यान्वित नहीं करता है। तो वह साधक य जिज्ञासु के मन में प्रेरणा के ज्योति जागृप नहीं कर सकता।

जिज्ञासु का मन ऐसे व्यक्ति के प्रति संदेहों से भर जाता है, क्योंकि वह देखता है कि व्यवन एवं बुद्धि के प्रयोग से वह शिद्धान्तों का कुशल प्रतिपादन तो करता है किन्तु उस प्रतिपादन के अनुरूप उसके तत्त्वों को अपने जीवन में नहीं उपारता है। तो वह व्याख्याता का वास्तविक जीटन नहीं कहलाता है। मन, व्यवन और कर्म में जड़ एकरूपता आती है तभी जीवन में प्रगावकारक ओज पैदा होता है। ऐसा पुरुष ही अपने ज्ञान, क्रियामय जीवन से अनुकरणीय आदर्श प्रतिष्ठा कर सकता है। प्रार्थना में भी इराकङ रांकेता दिया गया है—

“पुरुष परम्परा मार्ग जोवता रे,

अन्धे अन्धे पुलाय।”

जहाँ केवल परम्परा में ही मार्ग ढूँढ़ा जाता है तो विवेकहीनता

की पश्चा में वह अन्धानुकरण हो जाए। एक अन्धा व्यक्ति दूसरे अन्धे व्यक्ति का सहारा ले और इस तरह अन्धों ली लगभी पंचित बन जाए तब भी उन्हें मार्ग तो दिखाई नहीं देगा। उसी प्रकार ज्ञान और विवेक का प्रयोग किये बिना कोई यह रोचे कि यह नार्ग परम्परा रो चलता आ रहा है और आँखें गीचकर उरा पर चलता रहे तो वह अनुकरण अन्धा होगा तथा अन्धा अनुकरण कभी भी अन्वर्तना ले जागृत नहीं बनाता। अन्तर्वेतना यदि जागृत नहीं है तो वैसा अनुकरण श्रेष्ठ फलदायी कैरो हो राकता है ?

द्रव्य—नेत्र के बिना अन्धा जब द्रव्य गार्ग देख नहीं पाता है तो जिनके जीवन में भाव नेत्रों का अधिक र छाया हुआ है, वे भला आत्म विकास का भाव मार्ग कैसे खोज सकते हैं ? भाव नेत्र का अर्थ होता है अन्तर की आंखें अर्थात् ज्ञान और विवेक की आंखें। जब ये आंखें खुली होंगी तब वह अनुकरण रो पहले जिरा व्यक्ति शा शिद्धान्त का अनुकरण करता है उसे परीक्षा बुद्धि रो देखेंगा और रागझेगा तथा सही समझ में आने पर उसके प्रति सही अद्वा भी करेगा।

अनुकरण के दो रूप

इस प्रकार अनुकरण के दो रूप हो जाते हैं—पहला अन्धा और दूसरा जागृत। जहाँ विवेक का अभाव हो, परम्परा का व्यानोह हो तथा परीक्षा बुद्धि जागृत नहीं हो तो वहाँ जो अनुकरण किया जाता है उसे अधानुकरण की ही राजा दी जा सकती है। जागृत अनुकरण वहाँ होगा जहाँ विवेक ज्ञान का आधार पाकर जागरूक एवं रातत रान्नद्व है, किसी के प्रति व्यानेह नहीं, जिज्ञासा हो तथा परीक्षा बुद्धि पैनी एवं विवारपूर्ण हो। किसी महान् ने भी महान् तत्व बताया है किन्तु उसे मानने के पहले अपने मन—मस्तिष्क में उसे गुजारने का अर्थ यह यह होगा कि आपने अपने विवेक ले हार बन्द करके अधेष्ठन में किसी बात को नहीं गानी है, बल्कि रथयं रोच रागझ कर उसे गानी है।

इन दोनों शिथितियों की गनोदशा में इतना अन्तर होता है कि दोनों का विपरीत दूरगामी प्रनाव पड़ता है। अधेष्ठन में आपने जो कुछ

माना है, वाहे वह श्रेष्ठतम् तत्त्व भी है, फिर भी उसके प्रति आपके हृदय में अतल निष्टा जन्न नहीं लेगी। रसगुल्ल अच्छा हो सकता है किन्तु उसका एक बार स्वाद चरखे बिना उसके अच्छेपन पर निष्टा छोड़िए। पिश्वार भी कैरा होगा? किन्तु जिसे रोच—रामाकर्ष और अनुभूति पर ग्रहण किया जाता है उसके प्रति आरथा की स्थिति भी सुदृढ़ होती है, यद्योंकि तत्त्व के स्वरूप को हृदय में उतारने से उसकी विशेषता के प्रति सच्ची श्रद्धा होती है। इस दृष्टि से अध्यानुकरण से अध्य—श्रद्धा फैजती है तो जगृत अनुकरण रो रात्मी श्रद्धा जन्न लेती है।

रात्य वरतुरेत्थिति तो यह है कि रात्मी श्रद्धा कभी की नहीं जाती है, वह तो रामक आई हुई विभूति ले दर्शन करके अथवा आत्म को प्रेरणा देने वाले सिद्धान्त के ज्ञान से स्वयमेव हो जाती है। गुणों से प्रभावित होकर जो सच्ची श्रद्धा होती है, वह श्रद्धा रथायी रहती है। चिर्फ बुद्धि, वाणी और तर्क के चाहारे गात्र रो जो प्रूरुष व्याख्यान देते हैं अथवा राहित्र्य का निर्गाण करते हैं; किन्तु अन्नार की आंखें जिनकी खुली नहीं डोतीं एवं आवरण के दरातल पर जिनका कोई प्रनावकारी अस्तित्व नहीं होता, वे सबीं श्रद्धा के पात्र लगी नहीं जन्न सकते हैं, जैसी कि कहावत है कि “पर उपदेश कुशल बहुतेरे।”

कथनी और करनी का भेद

ऐसे पुहरे आवरण व ले वक्ता हर क्षेत्र में बहुपा मिलेंगे जो कहते कुछ और हैं और करते कुछ और हैं। सब पूछा जाए तो ऐसे लाक्षित्रों के कारण ही समाज में डंग और मिश्या का वातावरण प्रगाढ़ बनता है और पोथी के बैंगन और घर के बैंगन और की कथा आप जानते होंगे कि एक पंडितजी ने एक व्याख्यान में बैंगन के शाक की भरपूर निन्दा की— उसके दुर्गुण ही दुर्गुण बताये। उस स्थान में उनकी छेटी गी बैटी हुई थी। उसने सोचा कि घर में रोज बैंगन का शाक बनता है सो आज से उसे बन्द करा देना चाहिए। इसलिए बहु जल्दी रो उठकर पहले घर पर पहुंची और गर्जी रो बोली कि उह घर ने बैंगन का शाक गत बनाओ। आज भी नहीं और कभी नहीं।

मां ने वह शाक नहीं बनाया। पैंडिलाजी जब धर आये और थाली में बैंगन का शाक नहीं देखा तो भरस मझे कि उनका प्यारा शाक ग्याँ नहीं बनाया? इस पर मुत्री ने कहा कि आपने ही तो उसके भारी दोष बताये थे इरन्हिं गैंने बैंगन का शाक नहीं बनाने दिया है। तब पैंडिलाजी ने हंसाते हुए कहा कि पगली, पेण्ठी के बैंगन अलग होते हैं जो कहने के होते हैं मगर घर के बैंगन तो खाने के होते हैं। ऐसा आवरण अनुचरणीय तो नहीं होता किन्तु भावुक लोगों को संशय और प्रवचन गें जरूर डाल देता है और इराके लिए ही गुख्य रूप रे गिवेक एवं परीक्षा ब्रुद्धि की आवश्यकता होती है।

अन्यानुकरण से झूँडा दंभ भी पैदा होता है। जिस सिद्धान्त या धर्म को सनझा नहीं, उसके मूल रूप मनन करने की कमी। उत्पन्न हुई नहीं और उसके विश्लेषण को शली—गांति हृदयंगम किया नहीं, फिर भी उसकी दुर्लाइ देखर जो थोथी बातें करने के शौकीन हो जाते हैं, उनके दंभ की गात्रा भी बढ़ जाती है। ऐसे आधुनिक लोग बहु—बहु लेखाकों की पुस्तकों के कुछ उद्धरण पकड़ लेते हैं और कुछ इधर उधर की बेतुके तर्ज कर लेते हैं, जिस पर ही यह समझ बैठते हैं कि वे बड़े ज्ञानी हो गये हैं। वे बातचीत में बार—बार यह दोहराते हैं कि गेरा गत रह है—गेरा दृष्टि कोण यह है, किन्तु यदि उन्हें कहा जाए कि सर्वज्ञ वीतराग प्रभु के मार्ग का अनुकरण करो तो उन्हें अज्ञा नहीं लगता।

अल्प ज्ञान और दंभ

अपना मत और दृष्टिकोण बनाने के पहले कितना सुलझा हुआ ज्ञान और कितना तपा हुआ आवरण प्रमाणित होना चाहिए—इराका उन्हें कोई जान नहीं होता। अपने जीवन में रागद्वेष की गात्रा कम नहीं की, काम, क्रोधादि विकारों को नहीं गिटाया और अपना ही मत बनाने को घल दिये। जहां दंभ होता है, वहां सब्दा ज्ञान होता भी नहीं है। वीतराग मार्ग को लक्ष्य कर मैं जब उसकी व्याख्या करता हूँ तो कह सकता हूँ कि जहां तक मेरी समझ है, उसके अनुसार श्रद्धा—पूर्वक उराका गैं प्रतिपादन करता हूँ। यह प्रतिपादन गले

परम्परागत हो किन्तु विवेकपूर्ण श्रद्धा के साथ होने के कारण अच्छानुकरण नहीं है। कारण ? वीतराग स्वयं ने सिद्धान्त निरूपण उस अवस्था में किया जब उन्हें कैवल्य ज्ञान ले रूप में सर्वोच्च ज्ञान की प्राप्ति हो गई। वही प्रामाणिक वाणी आज भी विद्यमान है और जब उसका प्रतिपादन किया जाकर उसके अनुकरण के लिए कहा जाता है तो उस जागृत अनुकरण का उदाहरण ही होगा।

मैं आपके सामने जो बात रख रहूँ वह यह है कि हमें उसी गार्ग ला अनुकरण करना है जो हगारे जीवन का कल्याण कर रहा। लेकिन उस गार्ग का अनुकरण भी हमें विवेक के राथ करना है। यही अनुकरण और विवेक दोनों की कसौटी होनी चाहिए। सन्दो और अन्धों को भगवान् महावीर द्वारा निर्देशित सिद्धान्तों का पालन करना होता है। किन्तु श्रावकों को किसका अनुकरण करना है ? क्या उन लोगों का जिनका कोई चरित्र नहीं, नैतिकता नहीं और फिर भी अपना पंथ और गत बनाकर उसका अनुकरण करने की बात कहते हों ?

यह समझने की बात है कि बिना विवारे संसार के प्रवाह में जो बह जाता है, उसको कहीं कूल किन सा नहीं मिलता। महावीर द्वारा निर्देशित ग्रामाणिक श्रावक धर्म ही आप लोगों के लिए अनुकरणीय है, किन्तु उसको सर्वथा हृदयंगम करके ही उसका भी श्रद्धा एवं विवेक के राथ ही आपके अनुकरण करना चाहिए।

श्रावक की लाक्षणिकता

'श्रावक' शब्द भी लाक्षणिक है। श्रावक शब्द का 'श्र' श्रद्धा का प्रतीक है। श्रद्धा आत्म-कल्याण का मूल है। 'व' का अर्थ है विवेक यानी श्रद्धा औंडी नहीं होनी चाहिए। वह जब विवेक रो युक्त होगी तब उसका रूप जागृत ही होगा। विवेक जहाँ है वहाँ हिताहित का विनाश है और वैसी स्थिति में परीक्षा तुष्टि का अस्तित्व भी बराबर रहता है और क' संकेत है क्रिया का। श्रद्धा और विवेक के साथ की गई क्रिया ही आत्म को उसके चरम तल पहुँचा सकती है। इस प्रकार श्रावक धर्म श्रद्धा, विवेक और क्रिया रूप विवेणी का प्रतीक रूप धर्म है जो वीतराग वाणी द्वारा प्रतिपादित किया दुआ है।

र्वीनान युग में भौतिक विज्ञान की प्रगति के देखकर सनी उसकी ओर अलर्जित होते हैं और उस जोश में अध्यात्मगाद ली मौलिकता एवं वैचारिकता का चिन्तन करने से कहरते हैं। युतक और प्रबुद्ध वर्ग भी भौतिक विज्ञान से ही प्रभावित हैं।

इसमें कोई संदेह नहीं कि बड़े बड़े अनुसंधान एवं अन्वेषण सफल बनाकर विज्ञान ने सबको आश्वर्य में डाल रखा है लेकिन जहाँ प्रयोगात्मक लिंग से विज्ञान का विकास संशय है वहाँ आत्म-विकास की सूक्ष्म रेल्सओं में चलते हुए चैतन्य का विकास करना अपेक्षाकृत अति कठिन है। आज का गनुष्य यह रोचने का कष्ट नहीं करता है कि भौतिक विज्ञान का पिता कौन है? पुत्र को देखकर रारी दुनिया प्रसन्न हो रही है लेकिन यह पुत्र आया कहाँ से? अगर ज्ञान नहीं होता तो विज्ञान कहाँ से आता? विज्ञान पुत्र है तो उसका जनक है चैतन्य। चैतन्य की कोख रो ही ज्ञान और विज्ञान का जना होता है तो रागझाने की बात है कि अध्यारिक ज्ञान और भौतिक विज्ञान गें विभेद नहीं है बल्कि पिता पुत्र का संबंध है।

भौतिक विज्ञान के प्रति भी लोगों में जो एकाकी निष्ठा फैल रही है वह अध्यानुकरण का रूप लेती जा रही है। भौतिक विज्ञान ही श्रेष्ठ है रेसा कहने वले यह नहीं देखते कि आत्मा और आत्म ज्ञान के बल पर ही भौतिक विज्ञान का विकास हुआ है। दोनों गें रो जब गूँज पक्ष ली उगेक्षा की जाती है तो दैरा अन्तर ली आंखों के नहीं खुलने से ही होता है। भौतिक विज्ञान तो अभी भी विकासशील है और अभी वह प्रौढ़ वस्था में नहीं आया है किन्तु यह वैष्णव तो उनना शक्ति से सम्पन्न होता है और उसके चरम के प्राप्त करना पुरुषार्थ पर निर्भर करता है। परमात्मा की उत्त शक्ति का दर्शन भौतिक विज्ञान की रागधर्या में नहीं है।

आत्मा की इकित ही प्रधान होती है जो चेतना और विज्ञान—दोनों क्षेत्रों में रागान रूप रो प्रगति की प्रेरक बनती है। भौतिक विज्ञान के द्विस में प्रयोग का फल है किन्तु प्रयोग में रत रहने वाला और उसमें निरनार शरण करने वाल दृढ़ गन भी जो होता है और यह नान क्या है?

चैतन्य का ही तो एक राबल अंग है। फिर लैरो कह राकते हैं कि भौतिक विज्ञान का क्षेत्र आत्मशक्ति से परे है। जैसे गिद्धुत् शक्ति गँवर हाउस में संग्रहीत रहती है और वहाँ से वह डिजली के बल्व में समाची है तो आंखों को प्रकाश देती है और उरी बिजली रो कई प्रकार के सद्योग आदि चलाये जा राकते हैं तथा उपयोगी पदार्थों में उरारो काग लिया जा सकता है। उससे कारखाना भी चलता है और उससे दाह—क्रिया भी की जाती है। किन्तु जारा—री आरावधानी रो बिजली तारों को जाल डालती है तो जान भी ले लेती है ऐसी खतखाक शक्ति को नियंत्रण में रखकर यलाने वाला कौन है? वया वह यैरन्य नहीं है? ऐजिन को भौतिक विज्ञान कहले औ उरारो वालक यैरन्य ही हे राकता है।

इस विश्लेषण के अग्रिमाय यह है कि अनुकरण की वृत्ति में ज्ञान के स्पष्टता बने और उसके अनुकूल दोनों क्षेत्रों के समर्न्वित स्वरूप रो जीवन विकार की राही धारणा बनाई जाए। भौतिक विज्ञान की शक्ति को देखने के बाद आत्मा के अस्तित्व का स्पष्ट अनुमान होता है और जितना अनार को स्वार्थ रहिए एवं विकार रहिए बनाया जाएगा, उतनी ही तीव्र रूप गें उर आणिक शक्ति का विकार होगा जो आण्याणिक एवं भौतिक दोनों क्षेत्रों गें चागान राफलता के साथ उन्नति कर राकती है।

देहरी के दीपक की वृत्ति

अतः अनुकरण की दृष्टि देहरी के दीपक के समान होनी चाहिए। देहरी का दीपक अन्धर—बाहर दोनों ओर अपना व्रकाश फैलाता है, उरी पारह विवेक के जारिए अन्धर—बाहर प्रकाश फैलाकर य जांच परख कर शब्दा के साथ अनुकरण की दिशा में आगे बढ़ा जाना चाहिए। विवेक इसक मुल्य आधार होता है।

कथा—भाग में आप रुन रहे हैं कि विलेल को खोकर श्रीकेतु राजा इस षड्गंगे में पड़ रहा है लि विनगधार रोठ की उन चारों अप्सरा तुल्य सेठानियों के साथ वह समण कैसे करे? जहाँ शब्दा से उन्हें विनयधार के गुणों का अनुकरण करने की वृत्ति अपनानी चाहिए थी, वहाँ वे विवेकहीन होकर विकास के मार्ग पर चल पड़े। बुराई के

सहयोगी जल्दी मिल जाते हैं और राजा के स्नेही ने सेठानियों को सुलग करने की पूरी योजना गढ़ ली। उसने राजा के सामने दो मांगें रखी—एक तो यह कि प्रधानाजी उसके कार्य में सहायता कर सकें तो ठीक, और दूसरा के नाम पर विधन नहीं छालें और दूरारे, जिसको इसके लिए पर्याप्त धन दिया जाए। राजा ने ऐसे तरीके से प्रधान को उसके लिए बवनबद्ध कर लिया तथा पर्याप्त धन भी उसे दिला दिया, क्योंकि यह कामान्ध हो रहा था और अन्धा किसी तरह से हिताड़ित का भान नहीं रखता है।

विनयधार के विश्वद्वयवन्ना

अब स्त्ता और धन—शक्ति से सम्पन्न होकर वह दलाल विनयधार सेत के यह आपना आना—जाना बढ़ाकर उनके विश्वास को पाने की चेष्टा में लगता है क्योंकि रोठ का लोगों पर नैतिक प्रभाव बहुत था और उसमें दरार छालने के लिए पहले रोठ को ही छोड़े गें लेना जरूरी था। सरल आत्मा सर्वत्र विश्वास लेकर चलती है, अतः सेत भी शान्तः शान्तः उस पर विश्वास करने लगे।

यह रांरार और रांरार में बरतने वाले जीवन में बड़ी दिचित्रताएं नज़र आती हैं जिनकी उलझान में आगर आत्मा उलझा जाएं तो उसका परिष्करण वक्र जटिल बन जाता है। इसीलिए अजिंनाथ की प्रार्थना में अन्धानुकरण न करने का निर्देश दिया गया है। विवेक को जागृत रखकर वीतराग वाणी के श्रद्धा के साथ अपने जीवन में उतारें और जागृत अनुकरण का आदर्श उदाहरण प्रस्तुत करें—यही भावना है।

लाल भवन

25.8.72

आगमों के गूढ़ रहस्य

“श्री अजितनाथ बन्दिये.....”

अजितनाथ प्रभु के वरणों में आत्म स्वरूप के ब्रह्मे गवेषणात्मक प्रार्थना चल रही है और शोष का प्रयास हो रहा है कि प्रगु का मार्ग हमें भी मिले तथा उस पर चल कर अपना आत्म-कल्याण कर सकें। यह कल्याण र कल कर्गी शब्दों पर विजय के रूप में हो ताकि उन्हीं ही तरह यह डा भी ‘अजित और गुणधारा’ बन राके।

आत्मा और परमात्मा की स्थिति सरोवर तथा उससे जल पीने वाले पुरुष के समान होती है सरोवर शिन्न होता है तथा जल पीने वाले पुरुष भी शिन्न तथा जल पीकर भी वह पुरुष सरोवर के साथ एकीभूत नहीं होता है किन्तु कई लोगों की गान्धत होती है कि ईश्वर का रवरूप तो उस रारोवर के राग न है और डा भा का रवरूप उसरों समाहित होता है। टे यह भी मान्ते हैं कि ईश्वर हमेशा ईश्वर था, है तथा रहेग जबकि आत्मा की स्थिति उसमें विलीन हो जाती है।

आत्म और परमात्म स्वरूप की मीमांसा

किन्तु जैगदर्शन ली स्नान मान्यता है कि आत्मा और परमात्मा आत्म-तत्त्व की दृष्टि से शिन्न हैं किन्तु उनके मूल स्वरूप में कोई अन्तर नहीं होता—अन्तर है वह कर्म—गैल का। डा भा जह पूर्णपात्रा निर्गिल हो जाती है वब उसका रवरूप परगाता—रवरूप जौरा। हो जाता है। आत्मा से परमात्मा की स्थिति बनती है परमात्मा कोई अलग तत्व नहीं होता यह आत्म समता क स्विद्वान्त है प्रार्थना जी

इन पंचियों के माध्यम से ही जिसका सम्यक् रूप से शोध किया जा सकता है।

रारोवर और जल पीने वाले का जो रूपक है, वह इरा रूप में है कि रारोवर के पारा जाकर जल पीने वाला पुरुष उरा जल में छुलता नहीं है बल्कि उस जल को पीकर अपने ही स्वरूप को परिवर्तित करता है। ऐसे ही प्रभु के गुण उभु के अनार में विद्यमन हैं उनकी प्रार्थना करने या उनके गुण ग्रहण करने से आत्मा प्रग्नु में समाहित नहीं हो जाती बल्कि उनके स्वरूप से पृथक् ही रहेगी। अपने अस्तित्व को कायग रखते हुए प्रभु के उपदेश रुपी जल से वह निज को तृप्त करते हुए अपने आन्तर को ही एक दिन रारोवर बना राकर्ती है।

जब वह पुरुष ने सरोवर से जल पीया नहीं, वह वह जल सरोवर का कहलाता है किन्तु जब उसे वह पुरुष पी लेता है तो फिर उत्तना जल उसका बन जाता है। आत्मा से परमात्मा के स्वरूप तक पहुंचने वाले महापुरुष अपनी वीत्राग वाणी से आत्म—कल्याण ला गार्ग प्रशंसत करते हैं तो वह एक प्रकार से उनका उपदेश रुपी रारोवर है, किन्तु जो उसने रो अपने ज्ञान एवं विवेक रो जितने अश में उपदेश को अपने जीवन में उतार लेता है, वह साधना तब उस आत्मा की हो जाती है। बाहर से जब उपदेश श्रवण के मिलता है तब वह उपदेश पर का रहता है और वेरी दशा में उरा उपदेश से आत्मा लाभान्वित नहीं होती है। उराको जब आत्मरात् कर लिया जाता है तब वह अपना हो जाता है। जिसे अपना ले सो अपना और न अपनाएं वह वह किएना हो अमूल्य हो, उसका कोई लाभ नहीं।

उपदेश ग्रान् का है अमृत तुल्य है किन्तु जब मनुष्य उसे ग्रहण करता है और अपने जीवन के साथ उसे साकार रूप देता है तब वह गुण—गह उपदेश उनका रहते हुए भी गुरुत्व रूप से अपने लिए अपना हो जाता है। जब तक भोजन रसोई में है, गाता के पारा है वह वालक को पूर्णि नहीं होगी किन्तु जब वालक माता से भोजन प्राप्त करके उसे तदर्रथ करेगा तभी उसे तुम्हे मिलेगी। उसी प्रकार उपदेश सुन या जान लेने से आत्मोद्धार का हार नहीं छुलता।

है उपदेश को जानकर और परख कर उसके बाद जब उस पर अमल करते हैं तब जीवन में परिवर्तन का प्रारम्भ होता है।

जीवन कल्याण के कोस

ईश्वरत्व को प्राप्त किये हुए वीतराग प्रभु ले इन उपदेशों के रूप-रूप रांग्रह ही आगम के नाम से विख्यात हैं। ये आगम एक प्रकार से जीवन कल्याण के कोश हैं जिनमें कल्याण से सम्बन्धित ऐसी कोई सामग्री नहीं, जो नहीं मिले आगमों की ब्रामणिकता में अङ्गानी आत्माओं को कोई शंका उपजे वह अलग बात है। लेकिन ज्ञानी आत्मा के लिये शंका की कोई स्थिति नहीं है। कई ऐसी शंका करते हैं कि आगम तो अमुक रागय में लिखे गये, अब आज उनका क्या उल्लेष गहरत्व रह जाता है?

आगमों के रहस्य पर इसका उत्तर पाने से पहले पर्वतीक सोचता आवश्यक है। क्या आगम वे कामज और पृष्ठ हैं जिन पर कुछ लिखा हुआ है ? क्या उन अक्षरों के बाह्य रूप में ही आगमों की महत्ता और उपर्योगिता है ? यह जरा सोचने की बात है। इन अक्षरों के अन्तर में उत्तर कर जब इनके अर्थों का अनुरास्थान किया जाएगा तो विधित होगा कि अपने पित्त्व ज्ञान एवं कर्मात् राधना में जो शाश्वत पथ आत्मा के चरम विकास का उन महापुरुषों ने देखा और आजमाया, उसी का विस्तार से विश्लेषण इन आगमों में दिया गया है। अब बताइये कि इरांगे क्या पूराना हो गय और क्या नया नहीं है ? आत्म-कल्याण की रागराया तो रादा शाश्वत है और संसार में रहेगी।

आगमों का मूल उद्गम

आगमों का मूल उद्गम तीर्थकर वीतराग एवं केवल ज्ञानी गहापुरुषों की गार्णि से हुआ। उरो उच्ची रागय गणधरों ने ग्रहण किया और उन्हीं धधरों के नाभ्यग रो आचार्यों ने ज्ञान लिया और वह आचार्य परम्परा में अद्वितीय बना रहा ज्ञानात्मिक अनुभूति के साथ ग्रहण किया हुआ ज्ञान कभी विस्मृत नहीं होता। अतः इस परम्परा में

वीतरामा वाणी अपने मौलिक रूप में स्मृति पथ में बलती रही। फिर अवसर्पिणी काल के ग्रारंग में जब पहली बार यह महसूस किया गया कि स्मृति में तणिक स विद्वेष होना शुरू हुआ है, तभी उस कल्पना ज्ञान को लिपिबद्ध कर लिया गया और वही आगम रूप में रथायित था गया।

आन्तरिक अनुभूति के महत्व को जो ठीक प्रकार से नहीं समझते हैं, वे भले ही आगमों की परम प्रामाणिकता पर शंका लाएं चरना जो ज्ञान अनुशूलित में गढ़ जाता है उसके लिये बाह्य सुरक्षा की व्यवस्था के कोई प्रश्न ही नहीं उठते। गौंड आपको इच्छाकी तुलना। आपकी भोजन की अनुभूति रो जराना चाहता हूं। बाब आपको भूख लगती है और भोजन करने की इच्छा होती है बाब क्या आप भोजन करने की बात को यों ही याद रख सकते हैं अथवा उसे लिपिबद्ध करके ही याद रख राकते हैं? युवह और शाग को रोज शोजन करना है—क्या इसे आप लिपिबद्ध करते हैं? राधारण बुद्धि में भी जब अनुभूति इस वृक्ष स्मृति के साथ बलती है तो विशिष्ट बुद्धि एवं आन्तरिक उन्नति की अवस्था में रो अनुभूति एवं स्मृति की रीक्षणाता के कहना ही क्या? जब विवेक किसी सत्य के बारे में प्रामाणिकता से आश्वस्त हो जाए तो फिर उसके अनुकरण में प्रमाद नहीं होना चाहिए।

प्रभु के गार्ग को खोजने वाले राधक का इरा दृष्टि रो चाबरो बड़ा अवलम्बन आगम ही हो राकते हैं। प्रार्थना गैं कवि ने इसी स्थिति के सम्बन्ध में वेतावनी का संकेत दिया है

वरतु विचारे जो आगम करि रे
चरण शरण में न ह ठांय रे।

छद्मस्थ पुरुषों के अध्यूरे ज्ञान के वक्कर में कोई सब्ला साधक ग्रहित न हो जाए। इसके लिये आगम का ही सहारा प्रामाणिक माना गया है। आगमों के तत्त्वों को भी यदि चर्तु—विचार की अपनी विवेक करें तो वारतविक विकारा उपरब्ध नहीं हो राखेगा।

आगम रहस्य की गहनता

आगमों गे रामाहित ज्ञान एवं रहस्य अतीव गहन है। महान् इस दृष्टि से कि कोई उराका वाचन कर ले या कुछ इधर-उधर का अर्थ समझ ले, उससे आगमों के गम्भीरता का अनुमान नहीं होता है। उन्हें पढ़ने और समझने के बाद भी जब एक एक विषय पर नहराई रो गनन और चिन्तन नहीं किया जाए तब तक उनके गूढ़ार्थ ज्ञानदशा गे रपट नहीं होते हैं। आपके हाथ में आग हो और आप यह भी जानते हैं कि इस आम में बहुत ही मीठा और स्वापिष्ठ रस है, किन्तु आपके उसका अनन्द कब आएगा? हाथ में पढ़ा रखने से या उसको चूसने से? कल्पना करें कि उसके ऊपर-ऊपर ही जीश किसावें तब भी क्या स्वाद आएगा? स्वाद तो बैत कर उसके भीतर से ररा निकाल कर चूराने से ही आएगा। आगमों का रहस्य भी इरी प्रक्रिया से बोधगम्य हो सकता है।

आगमों के रहस्य में गहरे उत्तरकर उत्तम विकास एवं ज्ञान, दर्शन, वारित्र रूपी रत्नों को प्राप्त करन है तो आगम रूप मंजूषा की कुंजी प्राप्त करिये। यह कुंजी आपको विवेक, श्रद्धा एवं क्रिया ली त्रिवेणी रहाने से किये गये जाग्रत अनुकरण से प्राप्त होगी। चिन्तन और गनन से जब भन अन्दर की गहराईयों में गोते लगाएगा। तब उरामों से विवार एवं भाव रूप गोती अवश्य निकलेंगे। आगम जो रहस्य आत्मानुभूति में समाया हुआ है।

परम शुद्ध स्वरूप की दृष्टि से आत्माभिमुख होने की कला का ज्ञान इर्हीं आगमों ने मिलेगा। मनुष्य संसार के पदार्थों एवं उनकी पासगाओं से मन को हटाकर इस चिन्तन में उसे केंद्रित करे कि मैं कौन हूँ, मैं किस रातर पर हूँ, पथा गेरा रातोंब्ब लक्ष्य क्या है पथा उरी रान्धर्म गे परिवर र रामाज एवं राष्ट्र की दशा पर विवार करें। यह विचार-जितना गम्भीर होगा, कुंजी भी शीघ्र प्राप्त होगी। अन्तर्ज्ञान से जितना तादालय सम्बन्ध बनेगा, उन्ना ही आगमों वा रहस्य सहज बनता जाएगा।

बहेमुखी बुद्धि के इसके लिए अनार्नुखी बनानी होगी। पांचों इन्द्रियों और मन के माध्यम से यह बुद्धि निरन्तर बाह्य वासनाओं ली तरफ दौड़ती रहती है। इसे जब अन्दर की ओर केन्द्रित करेंगे तो यह आगमों के नवीन अथों का अनुरांधान भी कर सकेगी। पांचों इन्द्रियों रो जो ज्ञान होता है, वह ज्ञान गति के अरिथे अधिक पिरतार रो प्राप्त होता है और इन छहों साधनों से प्राप्त ज्ञान को ही एक वैज्ञानिक व्यावहारिक प्रयोग में लाता है। प्रयोग से अनुमान और अनुमान से प्रयोग, यह एक वैज्ञानिक का क्रग होता है। इसी क्रग रो ही वह प्रागणिकता की तुला बनाता है।

अनुभूति के स्थूल व सूक्ष्म क्षेत्र

गौतिक तुला का आधार बाह्य बुद्धि और तर्क होता है। जैसे हाईब्रोजन और ऑक्सीजन के गिश्रण रो पानी बनता है अथवा अगुक फोर्मूले रो अगुक रासायनिक क्रिया होती है, यह निश्चित है। एक वैज्ञानिक नई नई खोज करता है और नवीनता की जिज्ञासा उसे रहती है। एक अध्यात्मवादी भी बुद्धि और चर्क से काम लेता है, ज्ञान को कसौटी पर करता है किन्तु उसका आधार केवल बुद्धि और तर्क ही नहीं होता। उसक मूल आधार अनुभूति पर टिला होता है, जिसकि विज्ञान में अनुभूति का कोई स्थान नहीं है। यही कारण है कि विज्ञान का क्षेत्र रथूल है, वही अनुभूति की प्रधानता के कारण आध्यात्मिक क्षेत्र सूक्ष्म हो जाता है जिसे देखने और समझने के लिए ज्ञान चक्षुओं की आवश्यकता होती है। आगमों का रहस्य तथा ज्ञान गुरुत्व रूप रो इन्हीं ज्ञान-चक्षुओं को खोलने का ग्रभावशाली काग करता है।

यही कारण है कि यूरोप के वैज्ञानिक रास्य ट्रिपि वी जेज्ञारा। लेकर भारत तो रहे हैं और अभी भी आते हैं। वे यहाँ विविध दर्शनों का गहरा अध्ययन करते हैं और सन्त महात्माओं से भी इस विषय में चर्चाएं करते हैं। वे यहाँ के साहित्य में भी शोध कार्य करते हैं और उराके राम्बन्ध गें नवीन विश्लेषणों का अनुरांधान करते हैं।

जैन दर्शन के विषय में जर्मनी के विद्वानों ने काफी गहराई से शोध कार्य किया है तथा उन्होंने जो टीकाएं लिखी हैं, वे अत्यधिक महत्वपूर्ण हैं। उनके विशाल शोधकार्य के सामने यह महसूस करने की रिचर्टि है कि इगारा आलोचना राहित बहुत कम है। इगरो अधिक गठरूरा करने की रिचर्टि क्या होगी कि रांरकृत राहित का ग्रामाणिक इतिहास किसी भारतीय का न होकर जर्मन विद्वान् का है। विदेशी विद्वान् यहां आकर भारतीय दर्शन साहित्य और आगमों का गहरा अध्ययन करें तथा उनके रहरणों का पता लगाएं तथा हगारा युवा एवं प्रबुद्ध वर्ग इरा अशाह ज्ञान-चग्रद रे उपेक्षित रहे—यह कौनी विडम्बना है ?

"जिन खोजा तिन पाइयाँ, गहरे पानी पैठ" इह महाकवि बिहारी का दोहा है किन्तु जगम के विषय में यह अनुभूत सत्य है कि जो इनके गूढ़ थोंगे जितना अधिक गहरा उत्तरेगा, उत्तरना ही उसे नवीन ज्ञान प्राप्त होग। रयाहाद को ही लौजिये— राष्ट्रेष्ट्र दृष्टि पर आधारित यह सिद्धान्त समन्वयवाद के रूप में जगत के विभेन्न वैवारिक संघर्षों का समाधान करने में सक्षम है। जिन जगमों में ऐसे दिव्य सिद्धान्तों का वर्णन आया है तथा गगती सूत्र में जिन आध्यात्मिक प्रश्नोत्तरों का उल्लेख है या उन्य आगमों में जो दार्शनिक चर्चाएँ आई हैं—उन्हें यदि ठीक तरह रो रागड़ाने के प्रबुद्ध गुरु गिले तथा रागड़ा कर फिर उन पर गाँलिक रूप रो चिन्तन किया जाए एवं उनकी सुखमता का परिवय लिया जाए तब कहीं जाकर आगमों के अगम ज्ञान का रसास्तादग किया जा सकता है। साधारण दृष्टि से तो ऐसा लगता है जौरो सुख, दुःख, पाप, पुण्य आदि तत्त्वों पर चर्चा क्या की जाती है, आगा के विषय में ही राहेंन विष्टपेषण किया जाता है किन्तु विशेष ज्ञान से ही प्रत्येक विषय में नवीनता का अनुभव लिया जा सकता है। जीव, अजीव, बन्य, मोक्ष आदि तत्त्वों का गहरा विनान जैगागमों की ही देव है।

तत्त्व-चिन्तन की स्पष्टता

तत्त्व चिन्तन के रामबन्ध में गैं अपना ही एक अनुभव रुनाता

हूं। जब मैं धार में था तो कॉलेज के एक प्रोफेसर नियमित आया करते थे और दार्शनिक चर्चा करते थे। इक दिन वे आये और उन्होंने कहा—महाराज ! आपका सापेक्ष दृष्टि का सिद्धान्त स्याद्वाद तो एक प्रकार रो रांशयवाद है—इरामों के ई भी निश्चयात्मक तथ्य नहीं हैं। फिर उन्होंने जगद्गुरु शंकराचार्य तथा डॉ. राधाकृष्णन के उच्छरण दिखाकर कहा कि उन्होंने भी स्याद्वाद को संशयवाद ही कहा है। ऐसा उन्होंने इसलिये कहा कि उन्होंने जैनागमों का अध्ययन नहीं किया था।

मैंने उनकी शंका का समाधान करते हुए स्पष्टीकरण किया कि आप एक बार उन पुराणों ले उल्लेख को पूर छटा कर रवान्त्र विनान पर आ जाइये और इरा छोटे रो रूपक रो रयाद्वाद का गर्व समझिये। रूपक है “स्यात् अस्त्वेव घट” अर्थात् कथंचित् घड़ा है ही यह ‘ही’ किस तथ्य का ह्योतक है ? निश्चयात्मकता का ही तो, फिर भी इरागें ‘रयात्’ शब्द हैं। यह शब्द दूरारों का अस्तित्व रत्नीकार करता है। रवभाव, रवद्रला, रवक्षेत्र एवं रवकाल की दृष्टि से तो घड़ा है ही। लेकिन स्यात् का अर्थ कथंपेता है तो पर भाव, पर द्रव्य, पर क्षेत्र एवं पर काल की दृष्टि से वह घड़ा नहीं भी है यह इस रूपक से प्रतीत होता है।

मैंने गिर्जार से स्मज्जाया कि घड़ा स्य पर अपेक्षाया कालशाय की दृष्टि रो रवद्रव्य गें है। रवक्षेत्र की अपेक्षा रो जिराना आकाश प्रदेश है और काल की अपेक्षा रो घट की वर्याचार्य गें है एवं भाव जी अपेक्षा से पांगी गर्ने की स्थिति के प्रसंग में हैं। यह तो घड़े जा सद्वाव रूप अस्तित्व हुआ किन्तु वर्ण, गंध, रस और स्पर्श जी दृष्टि रो घड़े का रूप पाठिये रो भिन्न है। द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव जी दृष्टि रो इरा प्रकार पाठिये का घड़े गें अभाव है और इरा अभाव स्थिति का सूचक ही ‘स्यात्’ शब्द है।

पाठिया नहीं है तो नहीं है, यह स्वरूप भी उस घड़े में रहा हुआ है। घड़ा किस रूप ने नहीं है कि पाठिये के रूप में नहीं है, पाठिये के क्षेत्र, काल और भाव में नहीं है। यह चरों दृष्टि के रूप में नहीं है। इरा तरह उह घड़ा है और नहीं भी है। रयाद्वाद के शिद्धान्त

का यही रहस्य है जो वस्तु के ५० ही रूप पर नहीं, बल्कि सभी रूपों पर सभी अपेक्षाओं से विचार करता हुआ उसके सम्पूर्ण स्वरूप ले सकता है।

प्रोफेरर राहब को यह दृष्टिकोण रागड़ा गें आ गया। तब उन्होंने ख्वराही कह कि शंकराचार्य और राधाकृष्णनन् यदि पहले जैनागमों का अध्ययन कर लेतो तो वे इस स्थानाद सिद्धान्त के विषय में इस प्रकार नहीं लिखते। जर्मन विद्वान् लॉ. अलबर्ट अश्नस्टीग ने स्थानाद के सिद्धान्त पर आधुनिक विज्ञान की दृष्टि से काफी विशद विवेचन किया है, जिसे गौने उन्हें पढ़ने का सुझाव दिया।

आगगों के गूँड़ रहरयों का चागत्कार आपको विज्ञान के क्षेत्र में भी निलेगा। आगम के ही विषयों को आधार बनाकर कई वैज्ञानिकों ने इस क्षेत्र में नये नये अन्वेषण एवं अनुसंधान किये हैं। पूर्वकाल में वैज्ञानिकों के आधार पर वगस्ति में जीव नहीं माना जाता था किन्तु वगस्ति में जीवन के स्पष्ट संकेत मिल रहे थे जिन्हें अनुभय गें लेल्लर भाई कन्हैयारामजी ने खोज करके एक विरहा लेख लेयार किया था। रार उगदीशवन्द बरु की खोज तो बाद में प्रकाश में आई। इसी तरह ध्वनि, प्रकाशन, परनायु आदि की वैज्ञानिक खोजों में भी आगमों का बहुत बड़ा सहारा भिला है। आगगों ले रहरय तो गूँड़ हैं, लेकिन जब तक राधक की पकड़ गूँड़ नहीं बनेगी तब तक उन रहरयों की गूँड़ता भी उरा पर प्रकट करेगी ?

स्वाध्याय अनिवार्य है

आप स्वका इस दृष्टि से कर्त्तव्य है कि अपनी बुद्धि एवं धोर्यता से आगगों का नियमित आध्ययन-स्वाध्याय करें एवं उनमें उल्लेखित विषयों पर निरन्तर गन्न और चिन्तन की आदत लालें। इसके लिये पहले अन्तर्मुखी प्रवृत्ति अपना कर इन्द्रियों एवं मन जी ग्रहण शक्ति का जितना अधिक विकास कर सकें, करते रहें। जब बुद्धि रिश्वर बनेगी और विवेकपूर्ण होगी तो आगगों के अर्थों ली गहराई गें खबर और चिन्तन का निष्कर्ष निकालने ली प्रवृत्ति का भी

निर्माण होगा। अपनी अल्प बुद्धि एवं मन्द विनान शब्दों के अधार पर कोई यह कहने की चेष्टा करे कि आगम में कोई सार नहीं है तथा मेरे दृष्टिकोण के अनुसर ही वस्तु का अमुक स्वरूप है तो ऐसा कहना उसका दुर्साहसरा गात्र ही होगा। एक बुखार ऐर॥ होता है जिराँगे गेहूं की रोटी कल्पी लगती है। अब कल्पना करें कि ५—५ विद्वानों को एक साथ ऐसा बुखार हो आया और उस स्थिति में उन्होंने गेहूं की रोटी छाकर यह निर्णय दिया कि गेहूं की रोटी का स्वाद कल्पा होता है तो क्या यह निर्णय विहृत्तापूर्ण होगा? क्या उत्तरा निर्णय को हर गेहूं की रोटी खाने वाला राधारण पुरुष भी गान्ध कर देगा?

गानव रवभाव में जब गोहजनेता यश—लेख॥ रूपी बुखार छाया हुआ हो तब उन विकारों के वशी॒त होकर वह सिद्धान्तों लौ जो व्याख्या कर देता है, वह बुखार ग्रस्त व्यक्ति की तरह सही व्याख्या नहीं दे सकेगा, और जो व्याख्या वह देगा उत्तरा भ्रग ही आधिक बढ़ेगा। आगम के रिद्वान्तों की व्याख्याओं पर भी यही तथ्य लागू होता है कि यदि उनकी वास्तविकता को समझना है तथा नवीन सत्यों की शोध करने की जिज्ञासा है तो विवेकपूर्ण श्रद्धा के साथ आगमों का अध्ययन किया जाना चाहिये।

आगमों के अध्ययन को साकल बनाने के लिये मन और गरितष्ठ में शुद्धि का होना आवश्यक है। यदि भीतर में विकारों लौ आधी चल रही है, चित गें घंघलता भरी दुई है तथा हुद्दि गें रिधरता का अभाव है तो वैसी दशा में न तो आगमों का अध्ययन ही हो सकता है और न नगवान् की प्रार्थना ही। कथा भाग में अपके सामने आ रहा है कि विकारों की आधी में पड़कर श्रीकेतु राजा का मन—मस्तिष्क कितना आन्दोलित हो रहा है?

विनयधर पर श्रीकेतु का शिंकजा

दूसरी ओर विनयधर सेल श्रेष्ठ वरित्र है जो श्रावक ब्रत अंगीकार किये हुए शुद्ध वृत्ति में जीवन यापन कर रहा है बीच के दलाल पर भी उराने अविश्वारा नहीं किया, उसकी रारल वृत्ति गें प्रपञ्च को रथन ही नहीं था। ये तो अबने विश्वारा की तुला रो ही राबलों

नापते थे। इसीलिये उस दलाल में उन्होंने कोई धोखा नहीं देखा। जबकि दलाल चारों सेलानियों के शील व्रत को खंडित करके श्रीकृष्ण राजा को ग्रसन्न करने का षष्ठ्यंत्र रच रहा था।

एक दिन उरा दलाल ने हिंसाब ले कागजों के बीच में एक ऐसा कागज सखकर बंदल सेठजी ले सामने पेश किय जिस पर एक संस्कृत का श्लोक लिखा था। सेठजी संस्कृत भाषा समझते नहीं थे। उसने कहा कि चूंकि मैं आप के बहीखातों का हिंसाब लिखा रहा हूँ आप छूपा करके इन कागजों की नकल बना दीजिये। सेलजी ने सोचा कि रोज यह गेरा काग निःखार्थ भाव से कर रहा है तो आज गें मी इराका काग कर दूँ। यह रोच उन्होंने करवे बना दी।

संस्कृत के श्लोक व ले कागज को लेकर सीधा वह महाराजा के पास पहुँचा और उस दलाल ने कहा कि षष्ठ्यंत्र का वहला वरण सफल बन गया है। वह श्लोक इस तरह का था कि जिससे सेठ कानून के दोष में आते थे। सेठ के विरुद्ध यातावरण बनाने के लिये राजा ने नगर के कई प्रतिष्ठित नागरिकों को बुलाकर रोठजी के हाथ का लिखा वह श्लोक बचाया और विनयवर रोठ के बदनाम करने का काम शुरू किया। घटनाएं आगे बढ़ेगी लेकिन जहां काम, क्रोध, मन और माया के विकार आत्मा ले घेरे चैने हों, वहां आगनों के गूँड रहस्यों का ज्ञान करना तो दूर-राष्ट्रारण ज्ञान प्राप्ति ली रिंशति भी यहां कठिनता रो बनती है।

गानव जीवन डॉपि दुर्लभ होता है। यदि इस रूप को विकारों की दशा में कांच की दाढ़ काग लेकर नष्ट कर दिया जो वह भयंकर बुद्धिहीनता होगी। इस रूप के प्रकाश में आगमों के गूँड रहस्यों ले शोध करके ज्ञानार्जन कीजियं और अपने जीवन के सार्थक एवं धन्य बनाइये।



तक, श्रद्धा और विश्वास का संकट

"पंथाङ्गो निहालूरे बीजा जिन तणो....."

यह प्रश्न श्री अजितनाथ की प्रार्थना है। इन पंक्तियों ला उच्चारण केवल उच्चारण की दृष्टि से ही नहीं किया जाता। उद्देश्य और प्रथारा यह होना चाहिये कि इन पंक्तियों में जीवन विकारा वा जो अर्थपूर्ण सार समाया हुआ है, उन भावों को समझा जाए तथा उनसे इस जीवन को मांजने की सतत चेष्टा की जाए।

प्रार्थना के उच्चारण से शक्त के हृदय में यह विचार जागना चाहिये कि यह जो मेरा जीवन नाना पिंड दुःखों से परिपूर्ण है, अनेक विपक्षियों द्वारा देखे जाने के लिए अशानि। वा वायुगंडर विखाई देता है वा इन पारिशेष्यारियों में कैरो रारे हाँड़ावारों से ऊपर उठकर मैं अपने जीवन में शान्ति और निर्मलता प्राप्त करूँ। प्रार्थना की सच्ची सार्थकता इसी में है कि सैद्धान्तिक पवित्रता, शावनापूर्ण उत्तराह एवं सुदृढ़ कर्ग-शक्ति के राश गनुष्य आगे जीवन लो विकारा की राहेंल्ल श्रेणी तक पहुंचा दे।

शुद्धेकरण की इस भावन के राथ जब गनुष्य उपने जीवन को नया मौल देता है तब वास्तविक विशुद्ध जीवन का लक्ष्य नी उसके समक्ष स्पष्टतर होता चला जाता है। विपक्षियों, विषमताओं और विडग्गनाओं से सतत सतर्क रहता हुआ वह उस स्थान लो प्राप्त करने के लिए दृढ़ रांकल्पी बनता है जो निरापद स्थान रवयं भगवान् श्री अजितनाथ प्राप्त कर चुके हैं। तब रपष्ट लक्ष्य के राथ उसकी दृष्टि मार्ग और साधनों की तरफ जाती है कि जिस मार्ग

एवं साधन को अपना कर प्रभु ने परम ज्ञान प्राप्त किया, मैं भी क्यों नहीं उच्छीं को उपगाने ली चेष्टा करूँ ? इस निश्चय के साथ ही उसमें पुरुषार्थ का शब्द भी जागृत होने लगता है। जब लक्ष्य स्पष्ट हो, राहीं गार्ग रामज्ञा ने आ जाए और सच्चे राधन धार्त हो जाए तो आत्मा ने पुरुषार्थ की जागृति रखामालिल है।

शाश्वत मार्ग की खोज

किन्तु मूल समस्या ही यह होती है कि प्रभु के उस नार्ग की खोज कैसे की जाए ? अन्वेषण का लार्य सहज नहीं होता। एक विचारक हो या वैज्ञानिक—जब वह अपने शोध कार्य में जुटा होता है तो वह कई विचरों का विश्लेषण करता है अथवा कई पदार्थों वा परीक्षण और उत्तर के परिणाम पर अपनी गौलिक शक्ति से अन्वेषण की नई दिशाएं खोज निकलता है। यहीं विधि आत्म 'वैकास' के मार्ग को खोजने में भी अपनानी पड़ती है।

अन्वेषण की यह विधि सुगम कैसे हो—यह भी गहराई से विचारने की बात है। आज का मानव अपने आप को तार्किक दुल्हि रो युक्त गानता है। यह द्वन्द्व तर्क और अद्वा के बीच उठता है कि इस विधि रो सुगम एवं राफल बनाने में तर्क का योग विशिष्ट होता है अथवा श्रद्धा का। एक युग ऐसा रहा होगा जब मनुष्य न तो अति अद्वयान् था और न तर्क प्रधान ही। अपने मध्यस्थ जीवन से सन्तोष एवं सन्तुलन के राथ वह अपना जीवन यापन लरता रहा होगा। किन्तु इस परिवर्तित युग गें उराने श्रद्धा के पलड़े रो तर्क के पलड़े को ज्यादा वर्जनदार बना दिया है।

श्रद्धा और तर्क के भावनात्मक इतिहास पर एक दृष्टि लालें तो समझ में आएगा कि जब कोई विशिष्ट विचार वाला व्यक्ति समझ आता है तथा उसली विशिष्टता के प्रति पूरे ज्ञान एवं विवेक के साथ राहजा ही गें जो हृदय प्रनवित हो जाता है—वही प्रभाव अद्वा का उप प्रठण करता है। वह अद्वा खुले गए और खुले ग्रितष्ठ की अद्वा होती है। वह तर्क सम्मत भी होती है, किन्तु कोरे तर्क के शुष्कता से

मुक्ता भी होती है। तर्क के बल मस्तिष्क को झकझोरता है और उसकी सीमओं में ही बधा रहता है। इस कारण कोरा तर्क अन्तर्गत वाना लो लगार पाने में दुर्बल रहता है। सजग श्रद्धा मन और मस्तिष्क—दोनों को झाकझोरती है तथा अपनी तरलता से रामूची आए। जो झाँकूत करती है।

विवेक-शून्य श्रद्धा

श्रद्धा के सहारे नगुण्य ने ऊँची से ऊँची उन्नति सम्पादित की है। किन्तु जब यहीं श्रद्धा अपना विवेक खो देती है और परम्परा ली लकीर गें रांकुचित होकर रींग लोंगे आबद्ध हो जाती है तो वहीं अद्वा आए हो जाती है और अन्धता को बढ़ाने लग जाती है। ऐसी श्रद्धा के सहारे कई लोग विपरीत मार्ग को भी पकड़ लेते हैं। अतः श्रद्धा के दो भेद किये जाते हैं। एक सुश्रद्धा और दूसरे कुश्रद्धा। अब चेश्टास के साथ अब तक हन्सान ने तरलकी की तथा बुरे विश्वास के साथ उसका पतन भी हुआ। श्रद्धा और विश्वास का वातावारण कई शताब्दियों तक बला।

वेन्नु वर्णान शताब्दी गें श्रद्धा का स्थान कुछ दूरी रहा है। आज तर्क को प्रधानता मिल रही है। मनुष्य के सामने जब भी कोई प्रश्न आता है तो वह पूछता है कि यह क्यों, व्या और कैसे है? तर्क किये बिना राहरा वह किरी भी कार्य को खोकार नहीं करता है। तर्क की जौरों आंधी चल रही है। यहीं कारण है कि प्रभु ह्वारा आवरित आत्म विकास के मार्ग को भी वह सिर्फ तर्क के उधार पर ही खोजने की इच्छा रखता है। तर्क भी जब श्रद्धा से विहीन हो अविश्वास की लुंडा से ग्रस्त हो तो क्या आत्मिक दृष्टि का समुचित विकास संभव है? तर्क भी चाहिये किन्तु लोरे तर्क का हठवाद अनादृष्टि को उत्पन्न नहीं करता। आणिक दृष्टि वारी भव्य आए एं तर्क को भी उत्पुत्त करती है। लेन्नु तर्क के राथ—राथ वरपुरवरूप के अन्वेषण में इस गाढ़ना को भी साथ रखती है कि जो स्वरूप दिव्य आत्माओं ने देला और बताया है, उस पर शानदृष्टि से विश्वास भी किया जाए।

तर्क की सीमाएं

राघु पूछे तो तर्क, तर्क तक रीगित रहता है, किन्तु भावना की ऐसी गहराइयाँ भी हैं, जिनमें तर्क का प्रवेश नहीं होता। तर्क अपनी अपनी सीमाओं में बलता है। वहाँ शब्द असीम होती है। ज्ञानीजनों ने कहा है कि वर्तमान मस्तिष्क की अपेक्षा से मानव की एक परा शूगि आती है, जहाँ उराकी अन्तर्चंतना गरितिष्क की शक्ति से ऊपर उठकर अत्यन्त विश्वास के राथ जो अन्तरावलोकन करती है, वह सत्य तर्क की परिधि में नहीं आता। विश्व में जिपने जितने पदार्थ परिलक्षित हो रहे हैं, उन पदार्थों के स्वरूप का भी जब वह तर्क के बल पर विश्लेषण करता है तो कुछ दूरी तक तो तर्क उसका साथ देता है लेकिन उसके बाद ऐसी गहन स्थिति आती है जहाँ तर्क ली गति अवश्य हो जाती है। इस विश्वाल विश्व को रामाङ्गने के लिये हेतुवाद भी राहायक बनता है—तर्क रो ज्ञान को गति गिलती है किन्तु जहाँ हेतुवाद स्वयं रुक जाता है, वहाँ अहेतुवाद से स्वभाव ले स्थिति का प्रसंग आता है।

जब मनुष्य अपने शाश्वत स्थान की ओर गतिशील होता है तो उस बिन्दु पर तर्क की गति समाप्त हो जाती है एवं अन्तर की अनुशूति जागृत होती है। इसीलिए शास्त्रकारों ने कहा है कि जहाँ परारिधि के गार्ग की खोज करनी हो, वहाँ तर्क का आश्रय निरर्थक हो जाता है

“तर्क विद्यार वाद परम्परा रे पार न पहुँचे कोय।”

तर्क की दृष्टि से जहाँ एक वाद जन्म लेता है तो उसके विरोध में ग्रतिवाद भी खड़ा हो जाता है। तर्क और प्रतितर्क—यह क्रम बन जाता है। इसलिये जो केवल तर्क और वाद की परम्परा में पड़ जाते हैं, उनका पार पहुँचना संभव नहीं आता। विकारा उनले लिये शक्य नहीं होता।

पौ संकेत यह मिलता है कि यदि तू पूर्ण शान्ति। एवं पूर्ण विशुद्धता का मार्ग खोजना चाहता है तो केवल तर्क का आश्रय मत ले। जिज्ञासा की तृप्ति के लिये तर्क को भी जगा किन्तु उस सीना

तर्क कि जिससे विश्वास बढ़े और आत्मविश्वास पुष्ट बने कोरे तर्क को ही यदि अपनाया तो 'अति सर्वत्र वर्जयेत्' की नीति के अनुसार वह आत्मा की निश्चयात्मकता को नष्ट कर देगा। तर्क—वितर्क से विचारणा में नित प्रति रांशय उत्पन्न होते जाएंगे और उसका परिपाण यह होगा कि उस आत्मा को अपने विकारा का गार्ग न रागड़ा में आएगा, न दिखाई देगा। कहा भी है संशयात्मा विनश्यति। जो आत्मा संशयों से ग्रस्त हो, उसका पतन अवश्यंभावी होता है।

तर्क, श्रद्धा और विश्वास

तर्क समत श्रद्धा और श्रद्धापूर्ण विश्वास का मध्यम मार्ग ही इस के रण ऐरा। राजगार्ग हो सकता है जिरा पर चलकर गनुष्ठ अपने वर्तगान जीवन की रागरथाओं का रागधान भी पा सकता है और जात्मविकास की ऊंचाइयों पर पहुंचाने वाले मार्ग का अन्वेषण भी कर सकता है। बाह्य जीवन की स्मस्याएं संसार से जुली हुई हैं और रांशार की परिरिथतियां प्रत्यक्ष अथवा परोक्ष रूप से आत्मा ली विकारा गति को भी प्रभावित करती हैं। यदि रांशार की परिरिथतियां विषम हो तो उसमें जात्मसाधना भी अधिक कठिन होती है। बाह्य जीवन और संसार के विष-पाद जितनी घटती हैं तो उपना ही उसका सुपरिणाम भी आन्तरिक विकास की गति में परिलक्षित होता है।

इस दृष्टि से आज इस तथ्य पर चिन्तन होना चाहिये कि वर्तगान जन—जीवन किरा ओर जा रहा है, इसकी पतवार किराके हाथ गें है तथा किरा प्रकार के गार्ग पर जीवन को लाया जा रहा है ? इसके लिये न सिर्फ व्यक्ति के, बल्कि पूरे मानव समूज के सामूहिक जीवन का आटोपाना अवलोकन आवश्यक है। प्रत्येक मानव को ऐसी दृष्टि बनानी चाहिये। इसके लिये पुरुष या स्त्री में कोई शेद नहीं है। यदि इस तरह की दृष्टि नहीं बनती है तो मनुष्य का जीवन लक्ष्यहीन होता जाएगा। आज जिरा तरीके से गनुष्ठ जी निरिदिधियां छल रही हैं, गं हृदय में विवार करता हूं कि वे गनुष्ठ को वास्तव में लक्ष्यहीन बना रही हैं अथवा उसका जो लक्ष्य है, वह

विपरीत लक्ष्य है। विपरीत लक्ष्य के कारण ही विपरीत प्रतिविधियाँ हैं और विपरीत नैतिक धरातल है। उसके वर्तमान जीवन की अस्तल्लस्तता का यही कारण प्रतीत होता है।

दिक्कारणीय विषय रह है कि उराको ऐरी गतिविधियाँ क्यों हैं? इस वेकृति का मूल उसके अपने जीवन के अविश्वास में रहा हुआ है। वह अपने जीवन में विश्वास को खोपा जा रहा है नये नये संशय उत्पन्न होते जा रहे हैं। संशय और स्थिरता में विरोध होता है जिसका अर्थ है कि चंचलता बढ़ती जाती है। यह कितने आश्चर्य की भावत है कि धर्मस्थान गें बैठे हुए इन्हाँन के विष्ट भी बंबल हो जाता है। धर्मवार्ता अवण करते हुए भी गन का रांवरण न कर राकें—यह शोबनीय दशा है।

संशयात्मा बिनश्यति

अविश्वास और बंबलता ये दोनों संगे साथी हैं। जिसके अपने में विश्वास नहीं, उसे दूसरों में भी विश्वास नहीं होना। अविश्वास की इस अवस्था में जब सब और संशय ही संशय दिखाई देगा। तो फिर गन बंबल ही तो रहेगा—उसे स्थिर बनाये रखने की स्थिति ही कहाँ रहती है? बंबलता राबरो पहली बोट नैरिज्जा पर करती है। नैतिकता के पतन के कारण ही भारत का नाम बदगाम है कि यहाँ तो धर्मस्थान में भी अपराध हो जाते हैं और अन्य कई देशों ने बिना दुकानदारों के दुकानें चला करती हैं। जोरों अखबारों की दुकान है तो अखबार रखे हुए रहते हैं—उन गर प्रत्येक का गूल्य लगा होता है और एक डिब्बा पढ़ा रहता है किन्तु दुकान पर कोई बैठा नहीं। ग्राहक आता है, रवाः ही गन परान्प का अखबार ले लेता है एवं उसके गूल्य की राशि डिब्बे में डाल देता है। दुकानदार दिन गें, एक बार आकर राम्हाल लेता है। राधारण नैतिकता की भी यह निर्णय है विदेशों गें, और यह पेश किरा नैतोक प्रान की ओर आगे बढ़ रहा है?

विश्वासहीनता के कारण इस देश में अनैतिकता की जैसे होड़ लगी हुई है। प्रत्येक नागरिक दूसरे को लगना बाहता है और

मेहनर की बजाए उगाई पर अधिक बलना लाहता है। इस सम्बन्ध में एक दिलचस्प किस्सा याद आ गया है। एक मेले में एक राजपूत और एक ग्रामीण मिले। राजपूत ने दिखाऊ म्यान और मूल तैयार कराके अन्दर लोहे की छड़ रखकर नकली तलवार छाथ में ले रखी थी तो ग्रामीण ने नीचे गोबर भर कर ऊपर धी ला। रखे हुए बर्तन को ले रखा था। उस ग्रामीण ने राजपूत से शुद्ध धी खरीदने का आग्रह किया तो राजपूत ने नकद की बजाए धी के मूल्य में तलवार देने की पेशकश की। ग्रामीण गान गया क्योंकि वह खुश था कि गोबर की बजाए तलवार आ रही है और राजपूत खुश था कि नकली तलवार की एकज में शुद्ध धी मिकल रहा है। दोनों ने अदला बदली कर ली। इस प्रकार हर द्वेष में एक दूसरे को उगारे हैं और फिर उगोरे उगोरे मिलकर उगाई का क्षंधा बढ़ाते रहते हैं। यस यह अवस्था अत्यधिक दरानीय नहीं बनती जा रही है ? इन्सान इन्सान कम और हैनान ज्यादा होता जा रहा है।

गहरी दृष्टि से जब मैं इस सारी परिस्थिति पर सोचता हूं तो लगता है कि मनुष्य ने जितना विश्वास खोया है, वह लाना ही आत्मविश्वास से ही न बनता जा रहा है। जहाँ आत्मविश्वास नहीं, वहाँ सफलता भी नहीं आती तर्क सामत शब्द ही आत्मविश्वास ली जानायी जाती है। किरी रवरूप जो पर्व रो रागड़ा, चरा पर शब्द हुई और शब्द होने के बाद विश्वार जग गया, तभी वह रवरूप स्पष्टतर होता रहता है। यदि उसके प्रति प्रतिपल झांका करते रहे तो रवरूप की स्पष्टता कर्णी भी प्रलट नहीं होगी। यही स्थिति ठिचार व्यक्ति अथवा किरी अनुभाव के प्रति भी होती है। कोरा तर्क अद्वितीयता अविश्वासी और कोरी शब्द अस्ती होती है। दोनों ला सन्पुलन रहे। शब्द की प्रमुखता आत्म विश्वास की गहनता जो बढ़ाती है।

आत्म-विश्वास का सम्बल

तर्क ईश्वर तक नहीं पहुंचता किन्तु आज गनुष्य तर्क रो ईश्वर

को पाना चाहता है, जिसके अभाव में वह ईश्वर के प्रति अश्वद्धा लगता शुरू करता है। इस तरह ईश्वर में अर्थात् अपनी ही आत्मशक्ति में दृष्टि विश्वास खोकर चंचल गति से सत्ता और सम्पत्ति के पीछे पड़ा हुआ है। जितनी राता और राम्पति को वह केन्द्रित करता है, उसकी तृष्णा और अधिक बढ़ती जाती है। रता और राम्पति को वास्तव में अपने सुख के लिये नहीं, दूसरों के सुख के लिये काम में ली जानी चाहिये। किन्तु यह कब संभव हो सकता है जबकि आत्म 'विश्वास' का सम्बल गनुष्ठ ने पकड़ रखा हो। इराले विपरीत जब वह श्रद्धाहीन और विश्वराहीन हो तो उसकी विपरीत गतिविधियों को पनपने रो कौन रोक सकता है? इस प्रकार की विकारपूर्ण परिस्थितियों में किसी प्रकार का क्रान्तिकारी कदम उठाना भी आसानी से संभव नहीं होता।

आध्यात्मिक क्रान्ति की आवश्यकता

आज देखा जाए तो आध्यात्मिक दृष्टि रो व्यापक एवं प्रशावपूर्ण क्रान्ति की आवश्यकता है। भगवान् गहानीर ने जिन आदर्श तत्त्वों ला प्रतिपादन किया, उनके बल पर यह आध्यात्मिक क्रान्ति संभव है, बशर्ता कि वार्क समरा श्रद्धा के उद्घार पर अपने अनार में गहरा विश्वास पैदा किया जाए। यह आत्म विश्वास उन्दर की शक्ति को न सिर्फ प्रकट करेगा, बल्कि उसे विकसित कर परम स्थिति तक भी पहुंचाएगा। यह भौतिक राता और राम्पति गनुष्ठ का कल्याण करने वाली चीजों नहीं हैं। गौं नहीं कहता कि रामी इन्हें छोड़कर राधु बन जाएं तो श्रेयरकर ही है। फिर भी मेरा कहना है कि इनको सिर पर बिजाकर बलने जी रिथ्ति मत पैदा कीजिये। सत्ता और सम्पत्ति में भ्रोसा करने ला गतजब है कि आपको अपनी आत्मा गैं विश्वारा नहीं है। जब आत्मा गैं विश्वारा नहीं होता तो ये राता और राम्पति रिर पर ही बैठती हैं और ऐसी स्थिति वास्तव में हास्यास्पद ही होती है।

इरा राम्बन्ध में आपने एक दृष्टान्त पूँ कि एक व्यवेत ने नई खुबसूरत साईकिल खारीदी। उसने सोचा कि रास्ते पर चलाने से तो

साईंकेल धूल से खर ह हो जाएगी इसलिये वह अपनी साईंकेल को सिर पर उठाकर चलने लगा। ऐसे व्यक्ति को यदि आप देखें तो क्या कहेंगे ? स्तान से पागल कह देंगे, किन्तु इसी स्वरूप को अपने में आप देखने की कोशिश नहीं करते और देखकर भी राधान हीं नहीं होते। राता और राम्पति नर-हित करने के राधन हैं—राईंकिल जी तरह उन पर बैठकर बले किन्तु जब सत्ता और सम्पत्ति को सिर पर चढ़ाकर स्वयं के आत्म विश्वास को उनके तले पर आप रौदिते हैं तब भी क्या आप अपने आपको पागल लहते हैं ?

गनुष्य की दशा का भी तो ख्याज कीजिये। राईंकिल के दो पटियों की तरह भौतिक जीवन के भी दोनों बटिये हैं—राता और सम्पत्ति। इनको मनुष्य सिर पर रखकर बले या इन पर बैठकर बले। सत्ता और सम्पत्ति पर अंकुश रखकर जो चलते हैं, उन्हीं के हृदय में भगवान् अंजितनाथ के विकार—गार्ग के प्रति अगित श्रद्धा उत्पन्न होती है और वे उस श्रद्धा से आत्मविश्वरा को सुदृढ़ बना लेते हैं। सुदृढ़ आत्मविश्वासी व्यक्ति एक दिन ईश्वरत्व के सर्वात्म लक्ष्य पक्ष अवश्य ही पहुंचता है।

आज चारों ओर जो यह विश्वास का संकट छाया हुआ है उसके नूल में सत्ता और सम्पत्ति के प्रति वित्तुण्णा ही गरी हुई है जो आत्म-विकारा के प्रति श्रद्धा को राबल नहीं होने देती। द्रुनिया में आज जितने देश हैं, दल हैं अथवा रांगड़न हैं, उनमें से अधिकांश का लक्ष्य सत्ता और सम्पत्ति को प्राप्त करना है वाहे वह कितने ही अन्याय, शोषण और दमन से प्राप्त हो। यह विपरीत लक्ष्य है और इससे विपरीत प्रवृत्तियों का ही फैलाव बढ़ता जाता है। कहने के लिये जनता के कल्याण की बातें सभी कहते हैं किन्तु अपनी नीतियाँ से राता और राम्पति के रवाईयों के अनुकूल ही बलाते हैं। इरी कुवेष्टा में रानी परफ विष्ण लाऊं का जाल फैलता जा रहा है।

यदि क्रान्ति करनी है और वर्तमान जीवन में आमूलधूल परिवर्तन लाना है तो विश्वास के संकट का निस्तार करना होगा तथा अन्तर की अनुगूति के साथ समता दर्शन को सिद्धान्त और

व्यवहार में अपनाना होगा। समता दर्शन क्या है? सभी आत्माओं के स्वारूप में मूल रूप की दृष्टि से समता है तथा उसी समता को लक्ष्य बनाकर जब लोई कर्मनिष्ठ बनोगा तो वह परमात्मा के साथ अपनी रामता रथापित कर लेगा। यह रामता की भावना एवं स्थिति रांग। ऐसके जीवन में भी आनी चाहिये और इसके आने का अर्थ यह होगा कि जीवन में द्रव्य, सम्पत्ति और सत्ता ब्रह्मान स्थिति को म्हटव नहीं दिया जाए, बल्कि चिंतनशील तत्त्व एवं कर्तव्य निष्ठा को प्रमुखता देते हुए रामय शावना को प्रबल बनाएं। रात्ता और रामति को नीचे रखें तथा कर्तव्य निष्ठा को ऊपर, तब ऐसा प्रतीत होगा कि जीवन धारा ही जैरे बदल गई है। यही धारा समता दर्शन की धारा होगी।

श्रद्धापूर्वक जब भगवान् अजितानाथ के मार्ग को खोज ली जाएगी तो ज्ञात्विकास का केन्द्र समझ में आ जाएगा। तब मूल बिन्दु आत्मा होगी और जो भी राधन गूळ बिन्दु को पुष्ट लरते हों वे ग्राह्य होंगे तथा जिनरो गूळ बिन्दु भूधला बनता हो उन्हें छोड़ना पड़ेगा। समता-दर्शन इसके कासौटी देता है क्योंके यह तर्क, शब्द। एवं आत्मविश्वास के समन्वित रूप पर खड़ा होता है। इससे ग्रातुत्त्व शावना का विकास होगा और सहयोग के दावरे बढ़ेगे। प्रत्येक के प्रति कर्तव्य पालन में सजगता फैलेगी और मायावी बृत्ति घटेगी। दिकारा ही इस स्थिति में गनुभ्य न रामाइ द्रोह करेगा, न राष्ट्रद्रोह—क्योंकि वह कभी भी आत्मद्रोह नहीं कर सकेगा।

विश्वास का संकट दूर करें

विश्वास का संकट राने मिटेगा, जब कोई कभी भी आत्मद्रोह नहीं करना वाहेगा। जब भरपूर विश्वास होग। अपने आप पर और सब पर, तो अनैतिकता टिक नहीं सकेगी। जैसे एक परिवर होता है, उसमें यदि सभी सदस्य ईमानदार और दिश्वस्त हैं तो न किसी का किसी के प्रति रांशय होगा। एवं न कोई किसी बात जो किसी से छिपाएगा। विश्वास भरी ऐसी अवस्था में राबका। जीवन भी सुखमय होगा तथा सबके बीच शान्ति व सन्तोष भरे सम्बन्ध भी बने-

रहेंगे। अविश्वास और संशय में भटके परिवारों की दुखपूर्ण स्थिति अधिकांशतः देखने में आती ही है। समाज, राष्ट्र एवं विश्व की स्थिति इसी के लापक संदर्भ में ली जा सकती है। सभी स्तरों पर असन्तोष का जो उंधंड चल रहा है उसके पूल में यही अविश्वास है जो किरणी को दूरारे के ब्रति कर्तव्यनिष्ठ होने से रोकता है और रांकट को रावंत्र फैलाता रहता है।

मैं सोचता हूँ यह मूल में बुराई है, जह में ही बीमारी है। तभी तो सारा स्वरूप गिरज रहा है और जब ऐसी विकृति फैलती है, तब क्रान्ति ही उसका निदान होती है। आज भी ऐसी क्रान्ति का गुरुत्वाधार राम तादर्शन पर रथापित किया जा राकता है। ब्रह्मेक विचार और आवरण में सत्य ही समतादर्शन का प्राण होता है जिसके द्वारा विकारों को नष्ट किया जा सकता है।

शगदान महावीर ने ऐसा ही किया था तथा महात्मा बुद्ध ने भी इन्हीं विचारों को प्रशस्त किया। इनमें 200 वर्ष गूर्ह एक झरनिया नामक व्यक्ति के नाम भी इतिहारा में उत्ता है, जिसने व्यक्ति और रामूँह के जीवन में परिवर्तन लाने के लिए शान्ति क्रान्ति का गंत्र दिया। इसी संदर्भ में मैं सन्त विनोबा भावे के उन शब्दों को दुहराता हूँ जो उन्होंने पूज्य श्री गणेशीलाल जी महाराज साहब के समझ कह थे कि जौनियों की रांझा भले ही कग हो किन्तु उनके आहिंरा, रात्र, रागेक्षयाद और आपरिग्रह के रिद्वान्त अवश्य ही दृष्टि में गिर्शी की तरह विचारों में दुलते जा रहे हैं। विनोबाजी ने यह भी कहा था कि अगर इन सिद्धान्तों का पालन जैनी लोग निष्ठा से करने लगें तो उनका चरित्र आज के विकृत विश्व में गई चमक से गर लते।

परखने और चलने का तालमेल

जब ऐसे क्रान्तिकारी सिद्धान्त हमारे सामने हों, ईश्वरत्व को प्राप्त किये गहापुरुषों के पदचिन्हों गाला पथ भी हुंगे दिखाई दे, तब भी शिर्फ तर्क के नाम पर हग तर्क करते चलें और हृदय लौ आस्था से उन्हें समझने का प्रयत्न न करें जो जीवन में क्रान्ति का

आविर्भाव कैसे हो सकता है ? तर्क परस्परने की कसौटी है, बलने का सम्बल नहीं—वह तो श्रद्धा होती है जो चलने की ग्रेसण भी देती है और कर्मरत होने का पुरुषर्थ भी जगाती है। इसी विधि से अविश्वास और रांशय का धना आन्दोलन भी दूर होता है तथा विश्वास का प्रकाश फैलता है जिसके लज ले गें आत्म विकारा का गार्म हर्गे रपष्ट दिखाई दे जाता है।

अपार दिश्वास जगाने वाले इन क्रान्तिकारी सिद्धान्तों पर निरन्तर चिन्तन की आवश्यकता है जिससे ज्ञान की नई—नई किरणें फूटें और विश्व के कण—जग में गधुरता ज प्रवाह बिखार जाए। राता और राम्पति की गोठ दशा रो ऐरी उन्नति तो रामव है ही नहीं, बल्कि दिश्वास का संकट कहिन होकर विश्व को विकारों और विषम्ताओं की भूमि बना देगा, जैसा कि वह आज बना हुआ है।

सम्ता सिद्धान्त के धरातल पर आत्म—विकास के लक्ष्य लो परिलक्षित करते हुए चलते रहने की कोशिश की जाएगी और श्रद्धा व विश्वास की तरलता व भावुकता उराके साथ होगी तो क्रान्ति जा हिंगुल बजाएगा जा राकेगा— वाहे वैरो लोगों की रांख्या कम ही क्यों न हो। तभी भगवान् अजितनाथ के मार्ग के लोज़ का काम भी पूर्ण और सफल बन जाएगा।



लाल भवन

27.8.72

आत्मा और शरीर का गति-भेद

"जे ते जीत्या ते मुझ जीतिया रे....."

भगवान् श्री अजिपानाथ के 'पंथङ्क' यानी मार्ग को खोजने की बात बल रही है। यह मार्ग कोई प्रव्य मार्ग नहीं है, आत्म विकास या सूक्ष्म मार्ग है। मनुष्य ढो प्रकार से गमन करता है एक तो बाहर ली पिंडि से तथा दूसरे अन्दर की पिंडि से। द्रव्य मर्ग पर पांवों से चला जाता है, किन्तु आत्मा—विकार के गार्ग पर गन और आत्मा की धृष्टि रो बलना हो। है। पांवों रे बलने के लिए गार्ग का अन्वेषण वर्ग चक्षुओं की स्फायता से होता है। जब मनुष्य अपनी गजर फैलाता है तो सामने जलक, कच्चा रास्ता या उगड़ाणी देखकर उसके जहारे आगे बढ़ता है। इस रथूङ गार्ग को खोजना तथा शरीर को उरा पर चलाना तो राहज है किन्तु दिल्ल—गार्ग का अन्वेषण करना ऐसे उरा पर आत्मा की समस्त गतिविधियों को बलाना कठिन कार्य होता है। इसे ही साधना का नाम दिया हुआ है।

शरीर की गति और आत्मा की गति गिन्न—गिन्न है या एक ? इसी में आत्मविकास का रहस्य छिपा हुआ है। स्वरूप की दृष्टि से शरीर ज़ड़ है और आत्मा जेतन तथा आत्मा के रादभाल रो ही शरीर प्रापवान् बनत है या बना रहता है तो वरतुरिथिति यही रहनी चाहिये कि शरीर का नियंत्रक जात्मा हो। किन्तु ज़ड़ के संसर्ग से आत्मा में भी ज़द्दत्व समाता है और सांसारिक व्यानोहों में पँडकर यह आत्मा भी शरीर—सुख के नियंत्रण में पँड जाती है। सांसारिक आत्मा और मुक्तात्मा के स्वरूप में यही प्रमुख अन्तर होता है और इस कारण यही

प्रमुख समस्या भी होती है कि कैसे शरीर अर्थात् जीवन को सं-सा-
न्तिविधियां आत्मानुशृति से नियंत्रित हो और कैसे आत्मा अपने
सर्वोच्च विकास का अन्वेषण कर ले एवं अपना सत्पुरुषार्थ जगा कर
उस पर दृढ़ता रो और उचित गति रो गनन करें ?

यह विभेद घातक है

वर्तमान जीवन की विडाबना यही है कि शरीर और आत्मा की
नति में एकरूपता ली अपेक्षा भेद अधिक भरा हुआ है। जिस समय
शरीर धर्म—रथान गें बैठा हुआ है—आंखें गुनिरेण को देख रही
और जान उनकी वापी को श्रवण कर रहे होते हैं तो नन उस गति
से भटक कर तिजोरी में व्यापार में और न जने कहां कहां पहुंच
जाता है ? शरीर तो निकलता है ऑफिस में जाने के लिये, मगर मां
कहीं बाजार गें निकल जाता है। यह दोनों का गति—भेद ही पत्तन ला
गूँज है और इरालिये लाब तक प्रबज्ज नियंत्रण की रहायता रो दोनों की
नरि में एकरूपता पैदा नहीं की जा सके, तब तक भगवान् का “पंथङ्गा”
में दृष्टिकोण नहीं हो सकेगा।

इस गति भेद पर विजय पाने का कार्य इतना कठिन है कि
कर्मठ साधना के बल पर विरले पुरुष ही शरीर और आत्मा ली
नतियों गें एकरूपता रक्षणीय लर गते हैं। जहां योग—रथान ला
प्ररांग हो, विशिष्ट गहत्ता जब योग प्रवृत्ति गें चलते हैं तो यारतन
में उनके शरीर की गति आत्मा की गति में विसर्जित हो जाती है।
किन्तु सामान्य जन का जीवन अश्रद्धा एवं अविश्वास की कुंजा से
इतना अधिक ग्रस्त होता है कि मन का निग्रह उसके लिये दुःसाध
य अवश्य बना रहता है। मन का शटलाय ही उसले सारे जीवन ला
भटकाव होता है। शरीर की पौङ रो भी गन की पौङ बेगेल पिशा
गें इस क्षेत्र बलती रहती है ‘के उसके क्रिया—कलापों में आन्तरिक
अनुशृति का उनुगाव नहीं रहता और उसकी बाहर की गतिविधि नी
चंचलता एवं अस्थिरता के झकोरों में लज्जालडाती रहती है।

भगवान का ‘पंथङ्गा’ उस अन्तर्दृष्टि की ओर संकेत करता है
जिसकी स्फायता से ही मनुष्य इस गति—भेद को हटाकार एकरूपता

के मार्ग पर आरुङ्क हो सकता है। सावधानी का विषय यह रहता है कि हमारे मन की जो गति है, वह किस राह से होनी चाहिये? मन की गति की तो राहें अनेक हैं। शिष्य और कषाय की राह भी है—काम और क्रोध की तराह भी गन दौड़ता है और अन्य विकारों की दिशा में भी वह भटकता है। मन की ऐसी गति अनादि काल से बल रही है। किन्तु यदि आन्तरिक शक्ति को समझ कर उसे उगारा जाए और उसकी राहायता रो गन लो नियंत्रित किया जाए तो उसकी राह प्रगति और जागृति ली—पुरुषार्थ और त्याग की राह भी बन सकती है।

शासन किस का चले ?

मन की ऐसी दुरंगी गति को हम विगति और प्रगति का नाम दे राकते हैं। जब गन विकारों की ओर भागता है तो रांरारिक वित्तियाँ उसे क्रमाव बढ़ता है तथा शरीर का शारान प्रबल बनता है। जब शरीर का शास्न बलता है तो निश्वय ही जल्मश्वित दुर्बल होती जाती है। विगति की ओर चलने पर आत्मा अपने सच्चे सामर्थ्य लो दबाती है तथा शारीरिक रुख के व्यागों में प्रलुब्ध बनती है। आनन्द की ऐसी दशा उस कैदी की दशा से मेल खाती है जो अपने दुर्दशा को समझते और उससे मुक्त होने की इच्छा रखते हुए भी उससे मुक्त नहीं हो पाता है। यद्यपि शक्ति जा ता की ही होती है, किन्तु उसकी यह दशा विषय विकारों की परतंत्र दशा होती है। जिस अवस्था में परतंत्रता हो, आगा 'अजित' नहीं बन राकती और ऐरी परतंत्र अवस्था मानव जीवन के वास्तविक विकास की दृष्टि से हिलावह नहीं होती है।

परतंत्रता की इस टिगरि में संसार की आत्माएं बल रही हैं। अधिकतर आत्माएं अपनी विगति से बोगान हैं और इस विगति को ही रुख गानकर भान्नियों में लुढ़करी रहती है तथा जन्म—गरण के बन्द में डोलती रहती है। किन्तु कुछ आत्माएं ऐसी भी होती हैं जो अपनी इस परतंत्रता को महसूस करती हैं और उससे छुटकारा पाने की अपनी अभिलाषा भी बनती है। ऐरी आगाएं ही तब यिश्वरा और पुरुषार्थ जगाती हैं तथा अपने विकारों के गार्ग को खोजने में प्रगारा—रत बनती हैं।

दिव्य मार्ग पर गति

इस दृष्टिकोण से आध्यात्मिक मार्ग पर भरोरा। रखने वाली भव्य आत्माएं प्रभु के चरणों में प्रार्थना के रूप में आत्म निवेदन प्रस्तुत करते के लिये उपस्थित होती हैं तो वे यही चाहती हैं कि हे गगवान्! ये बहर के रास्ते अतलाने वाले तो अनेक मिल जाएंगे—वे पढ़ा और पिछड़ा हुआ आदमी भी अपने उपयोग के रसों की याहिरों रखता ही है, और वे रासों वह भी दूसरों को बताला सकता है किन्तु अध्यात्मिक दृष्टि से अजेय मार्ग का पता मिल सके तथा उस पर चलते हुए आत्मा को कोई लिंग न सके, आत्मा की अनगत शक्ति के टिलास पर कोई कुठारघात न कर सके, आत्मा के पवित्र स्वरूप को कोई मलिन न बना सके, राह में उसे काम, क्रोधादि विकारों के लुटेरे लूट न सके—ऐसा गिरिंचा मार्ग गगवान् ने दर्शाया है और वह मार्ग उन्हें दीख जाए। गव्य आत्माओं ली जब ऐसी अशिलाषा बनती है तो वही तीव्र बनकर उन्हें त्याग एवं पुरुषार्थ की दिशा में आगे बढ़ती है।

इस दिव्य मार्ग पर बलने वाली आत्मा उसे दिव्य नयनों से ही देखती है। पैद्य नयन अन्नार शयिरा के नटन होते हैं जिनकी ज्ञानदृष्टि दिव्यदृष्टि का निर्माण करती है। चर्म चक्षु इस मार्ग ले नहीं देख सकते हैं। यह उनकी गरी से परे है। अध्यात्मिक मार्ग को देखने के लिये अन्नार की आंखें खुलती चाहती हैं। ये दिव्य नेत्र ही आत्म स्वरूप को दर्शते हैं एवं उसे विकास का मार्ग खोजते हैं। किन्तु जब ऐसे दिव्य नेत्रधारियों को कोई खोजने निकले तो उसका हृदय कई बार हतोत्तराहित होता है, क्योंकि ऐसों पुरुषों का गिलना भी दुर्लभ है। इसीलिये उक्त प्रार्थना की प्रक्रियाओं में कहा गया है कि

“वस्तु विचारे रे दिव्य नैना तणो रे,

विरह पञ्चयौ निरधार।

“तरतम जोगी तरतम वासना रे।

तपो पौध आधार॥”

कवि कहा है— गौं दिव्य पुरुषों की खेड़ा गौं जारा हूं तो लगता है के उनका विरह पल्ल गया है। विरह का अर्थ दाति से है। केवलज्ञान और केवलदर्शन को धारण करने वाले वे अन्तर्ज्ञानी

महापुरुष इस सम्यक हमारे सामने उपस्थित नहीं है। अगर वे विद्यमान होते तो हम सीधे उनके वरणों में अपने आपको डाल देते, किन्तु ऐसी स्थिति ने किया क्या जाए? उनके मार्ग को सुव्यवस्थित रूप से बताने वाले गणधर भी विद्यग्न न नहीं हैं, किन्तु आगे कहा है कि उर्धी ज्ञानग्राम परम्परा में बताने वाले “तारताम जोगी” आर्थात् आवार्य और गुणेयों की वाणी का आधार पकड़ना चाहिये। यही आधार जीवन को निर्णायक गति देने वाला हो राकता है।

आचार्य उनारबाति ने इरा गार्ग को रपष करते हुए कहा है— “सम्यज्ञान दर्शन चारित्राणि मोक्ष मार्गः”

आत्मा के स्वरूप को शरीर की कैद से सम्पूर्गतया मुक्त करना है तो उसका मार्ग है कि सम्यक् ज्ञान, दर्शन और चारित्र्य की आराधना ली जाए एवं उस पर गति करने का लक्ष्य उस आत्मा को बनाना चाहिये। इस तीनों को संयुक्त रूप से ग्रहण करने पर दिव्य दृष्टि उत्पन्न हो सकती है परंथा यिद्या मार्ग पर मन और आत्मा को अडेंग गति से उग्रसर किया जा सकता है। इसके मूलमंत्र पर व्याख्या की जा रही है कि समता दर्शन के इस मार्ग का स्वरूप क्या है?

समता की धुरी

समता दर्शन की व्याख्या करते हुए बताया गया है कि— “सम्यक् निर्णायिक समतामयं च यत् तच्छीवनम्”—इस एक ही वाक्य में जीवन दर्शन का रागुया रहस्य भ्रा पड़ा है। राय ज्या है, शेष क्या है? उराका निर्णय करने वाला रौम्यता व रागानता पर जो आधारित है, वही वारतव में जीवन है, और ऐसा जीवन ही रागता शिद्धान्त का आराधक जीवन कहा जा राकता है। आत्मा की गति उस रागता ली धुरी के राथ जुँड़ जाती है तो शरीर की गति आत्मा के नियंत्रण में आ जाती है। जब तक यह जीवन रागता का स्थल नहीं बनता है, उस तक पान और गरितप्य की उत्तरानें रुलझ ती नहीं हैं और उराके बिना मोक्ष का गार्ग भी नहीं गिलता है।

रागतादर्शन की इरा पृष्ठभूमि में शिद्धान्त और व्यवहार के

तालगेल को रागझाना होगा और उस ज्ञान के साथ यदि जीवन में रागतादर्शन का यात्रिकनित् रवरूप उतरे तो जीवन की रागग्र परिभाषा आगे के लिए ठीक तौर से व्यवस्थित हो जाएगी। इसी रवरूप लो व्यवस्थित करने के लिये लाल्हणिक दृष्टि से श्रावक की ल्याख्या लौ गई है। आत्मविकास के गार्ग को खोजने वाले व्यक्ति में आत्मा और शरीर का गति—भेद दूर करने के निगम रो कौन—री भूगिका होनी चाहिये, कैरी योग्यता व गुणवत्ता होनी चाहिए—इच्छाका क्रियिक निरूपण श्रावकधर्म में किया गया है।

शरीर की गति को नियंत्रित करके आत्मा की शक्ति जो प्ररक्षित करने की दिश। का पहला कदग व्रत और त्याग से प्रारम्भ होना चाहिये। अग्र व्रत ग्रहण करने और त्याग धरण करने जो रवभाव नहीं हैं तो वह सामान्य जीवन दर्शन का राकार रूप नहीं पकड़ सकेगा। और न ही आत्मा की गति को सुव्यवस्थित बना सकेगा। भले ही सराका दृष्टिकोण राग बन जाए किन्तु व्रत के हिना आचरण का अरण आगे नहीं बढ़ सकेगा। लिंगी को दिल्ली जाने का गार्ग गालूगा हो जाए और दिश्वारा भी पैदा हो जाए कि उस गार्ग से अवश्य ही दिल्ली पहुंचा जा सकेगा। किंतु भी अगर कोई उस दिशा में चलने का पुरुषार्थी ही नहीं करे तो क्या वह दिल्ली पहुंच सकेगा?

व्रत ग्रहण का महत्व

व्रत ग्रहण इस दृष्टि से आत्मविकास के लिये किये जाने वाले सत्युरुषार्थ का प्रथम वरण होता है। समता का अर्थ समझ लेना एक बारा है, लेकिन रूपक धर्म व्रत धारण करने के लिए निरन्तर रूप से आना चाहिये। यदि वह नहीं आता है तो मानव अपने जीवन क्षेत्र में अदूरा ही रह जाता है। मगध देश के सम्राट श्रीणिक का शास्त्रों में प्रसंग आता है कि उन्होंने समता का प्रयास तो पूरा किया किन्तु व्रत ग्रहण करने का रवभाव वे नहीं बना पाये। इस स्थिति में एक बार उन्होंने महावीर प्रभु से निवेदन किया कि यदि इस समट मेरी मृत्यु हो

जाए तो गेरो गति क्या होगी ? प्रभु ने बेड़िशाक कहा कि तुम्हारी आत्मा नरकगागिनी बनेगी। श्रेणिक को आश्चर्य हुआ तो उन्होंने रामझाया कि तुम्हारे गें व्रत ग्रहण की क्षमता का आभाव होने से आचरण शिथिल रहता है, कोई पुरुषार्थ नहीं बनता है तथा बिना आचरण एवं पुरुषार्थ के लक्ष्य तक कैसे पहुंचा जा सकता है ?

पुरुषार्थ का श्रीगणेश व्रत ग्रहण रो होना चाहिये। यदि ऐसा रवभाव नहीं है तो उसे बनाने की क्षमता गम्भीर को पैदा करनी चाहिये। गानव यदि पुरुषार्थ करे तो इस विश्व में उसके लिये अशक्य कुछ भी नहीं है। पुरुषार्थ करने पर भी आगर उपलब्धि नहीं हो तो उसके लिए इसका आलन्बन लिया जा सकता है कि गेरे साथ पूर्वजना के कगीं का बध है—इस आवरण उपलब्धि अवश्यक हो गई। कोई पुरुषार्थ नहीं करता है और हाथ पर हथ धर कर हैठ। रहता है और रोचता है कि उस उपलब्धि का उसका भास्य नहीं था तो इस तरह भास्य भरोरो बैठे रहने वाले इन्द्रान का आवरण भास्यक् नहीं कहला सकता है। पुरुषार्थीन न अपना कल्याण कर पाता है और न संसार ने शान्ति स्थापित करने की योग्यता प्राप्त करता है।

शील, विनय और सरल व्यवहार

रामायादर्शन के आवरण की पहली आवश्यकता है—व्रत ग्रहण। व्रत ग्रहण करना और उसका निष्ठा रो पालन करना जीवन में रौम्यता का आविर्गीव करता है। दूसरी आवश्यकता है शीलवान होना। शील का अर्थ स्वाध्याय की शद्रता एवं चरित्र की निष्कलंकता से लिया जाना चाहिये। ब्रह्माचर्य की दिशा में भी शीलवान को अग्रसर होना चाहिये। तीसरी आवश्यकता है कि रनाध्याग, तप, विनय आदि रादगुणों रो आत्मा को सम्पन्न होना जाए।

स्वाध्याय से विनान की क्षमता होगी तो विनय धर्म के मूल को स्थिर करेगा। तप मैल को तपाकर काट देगा। इन गुणों को जो धारण करेगा, उसका सरल व्यवहारी बन जगा स्वाधारिक है। सरल व्यवहारी रो तारपर्य है कि उसका लग्जहार बिल्कुल रारल हो, जो कुछ

कर रहा है, धोपक है अथवा जो कुछ है वह किसी के लिये बीच्छे की नहीं है परिचिता और सरल छवदय से सबके साथ पेश आए। जो नीं बात हो उसे सरलता से कहे जाए वह कटु सत्य ही है। गलती को रतीकारे व क्षमाप्रार्थी होने। बच्चे की श्री रारलता हो तो ऐस। रारल व्यवहारी रामतादर्शन का श्रेष्ठ आराधक बन राकहा है।

सरलता के रूपान पर आज सांसारिक व्यवहार में दंभ, कपट और धूर्तता का फैलाव ज्यादा है। इसका एक दिलचस्प उदाहरण स्वाप्त आचार्य श्री फरमाया करते थे कि एक बड़ी लाल तीसरी मंजिल पर आपनी फाइलें उलझ रहे थे। उस रात्रि उन्होंने ५७ बृद्ध और नरी रिश्तेदार नीचे इस प्रयोग न रो आया कि वह एक गुकदगे में उलझा गया था जिसमें उसे बड़ी लाल से निःशुल्क सहयोग की अपेक्षा थी। दुर्बलता के कारण उसने ऊपर चढ़ जाने की बजाए नीचे से ही बड़ी लाल राहब का पता लगाने के लिये उन्हें आवाज दी। बड़ी लाल राहब रामजा गये लिये यह कौन है और क्यों आया है? गुफ्त की रिरापच्ची करना उन्हें अच्छा नहीं लगा, इसलिये अपने सामने बैठे अपने ६ लों से उन्होंने कहा कि ज कह दे, मैं अन्दर नहीं हूँ।

बच्चा तो सरलता की प्रतिमूर्ति होता है। उसने उसी तरह जाकर कह दिया कि पिताजी ने कहलाया है, वे अन्दर नहीं हैं। बृद्ध राब रामजा गया, इरालिये रीढ़ा ऊपर जाकर बोला—आपके पुत्र ने कहा कि आपने कहलाया है, आप अन्दर नहीं है—इरालिये मैं ऊपर बला आया हूँ। आप स्पष्ट ही कहला देते कि मेरा मुकदमा लेने की आपकी इच्छा नहीं है किन्तु ऐसा कपट व्यवहार आपने क्यों किया? बड़ी लाल बोले तो क्या बोले? किन्तु यह अन्दर-बाहर का शेद संसार में खूब चलता है और उसे हेशियारी कहा जाता है।

यह अन्दर-बाहर का भेद ही गनुष्य के चाम्पूर्ण व्यवहार में छाया रहता है। रारल व्यवहार की उग्रह कपट व्यवहार किया जाता है, पर उतना ही भेद शरीर और आत्मा की गति में भी बढ़ता जाता है। सरल व्यवहार को स्मरादर्शी की घौथी आवश्यकता इसी कारण बताया गया है। जन-मानस में अगर सरल व्यवहार की क्षमता बन-

लगे तो कई प्रकार के दोष तो स्वतः ही नष्ट होने लगेंगे। आज का चारों ओर का व्यवहार इतना कपटपूर्ण बना हुआ है कि कोई यदि सरल व्यवहारी बनाने का प्रयास करता है तो दुनिया उसे छुद्ध कहने लगती है। लिन्चु जिराने रामाता दर्शन की राधाना की है, वह न तो ऐसे किसी अन्य को बुझ करेगा और न रख्य ऐसी कहु बात कहने वाले से विद्युत्त्व ही होगा।

महात्मा नांदी के सरल व्यवहार का और वह श्री राजनैतिक क्षेत्र का उदाहरण तो सबके सामने है। किसी बात को न ले लिपाते थे और न राख्य कहने से भरते थे। वह उनका राखल व्यवहार ही उनकी प्रतिष्ठा का गुल कारण था। अंग्रेजी राजकार के कपटपूर्ण व्यवहार के बावजूद भी उन्होंने अपने सरल व्यवहार में कभी परिवर्तन नहीं किया। आज मनुष्य भले ही अपने मन में इसको होशियारी समझे कि गैं कैरी चतुराई और चालाकी से उत्तर देता हूँ, लेकिन भूतेता का पद्धा कभी भी फटे बिन नहीं रहता है। इस कारण राखल व्यवहार का अपना अरि विशेष महत्व होता है।

राखल व्यवहार ही रामायापर्श्व का प्रबल वाहक बनता है और यही शरीर तथा आत्मा के गति भेद को न्यूनतम बना सकता है। भावना और आचरण की सरलता उनकी एकरूपता को स्थापित करती है। वह जैसा रोचता है, वैरा कहता है और जौरा कहता है, वैरा करता है—कहीं भी व्यवहार नहीं—गोगनीर नहीं, तब क्या आत्मा की रवरश गहि के विरुद्ध शरीर अनुशासन हीन गहि कर सकता है? यह तो कपट व्यवहार ही हो। है जो दुसंगायन पैदा करता है। इसलिए समाज जीवन को बनाने तथा बढ़ाने के लिए यह गुप जरूरी है कि वह सरल व्यवहारी हो तथा सेवाशादी भी। इसके साथ—साथ वह प्रवचन कुशल हो और प्रावक—प्रवचन वाला हो। ऐसी स्थिति में उसकी प्रतिष्ठा एवं प्रगाणिकता में अतिशय वृद्धि होती जाएगी।

काम के वशीभूत श्रीकेतु राजा

सद्गुणों के ग्रहण करके जो अपने जीवन में उत्तारदा जाता

है, उसके जीवन में पवित्रता का विस्तार होता रहता है और उसी मात्रा में समतादर्शन का स्वरूप भी प्रकाशमान होता चला जाता है। कथा भाग में आप सुन रहे हैं कि ऐसा ही समतामय, सद्गुणी एवं एकरूपता वाला जीवन था यिन्यधर रोठ का। किन्तु गहाराजा श्रीकेतु विलार के वशीभूत होकर रोठ-पनियों को अपनी शथ्या-शायिनी बनाने के कुछकाँ में बलने लगे। ऐसा ही दलाल उन्हें मिल गया जिसने प्रपंच करके सेठ के हस्ताक्षरों से हिला एक श्लोक राजा को लाकर दिया और उरो प्रगुण नागरिकों की राशा गें राजा ने ज्याख्या के लिए इस कारण प्रत्रुत किया जिरारो विनयधर रोठ के चरित्र पर लाञ्छन लगे। वह श्लोक दिलारी मावना से सम्बन्धित था। उसमें एक विकृत वरित्र वाल व्यक्ति पर स्त्री के प्रति विद्योग सन्नाप को व्यक्ति करते हुए वर्णित किया गया था। जितों द्वारा श्लोक का ऐसा अर्थ सुनाकर राजा ने गफली क्रोध दिखाते हुए नागरिकों से कहा कि जिसे आप अब तक रादा चरित्र मूष्ण कहते थाये हैं, उसाल में उराक ऐसा दुष्परिष है तो उसे वयों नहीं दण्डित किया जाए ?

श्रीकेतु को इस प्रस्ताव के विरुद्ध कई नागरिकों ने माम्ले ली पूरी जांच करने का निवेदन किया कि क्या सेठ ने इसे वास्तव में ही किसी परस्त्री के लिए लिखाया है अथवा इसके पीछे कोई प्रपंच है। किन्तु राजा ने अपने प्रभाव रो काग लिया जिरारो विषय पर विवाद बढ़ गया। श्रीकेतु किसी भी प्रकार विवाद पर निर्णय लेखवाने का प्रयारा करते हैं किन्तु मूल बात यह है कि जो कपटपूर्ण व्यवहार करता है यानी अन्दर कुछ और है तथा बाहर कुछ और—उसका गांडा आखिर में तो फूटता ही है, किन्तु बीच में उराकी धूर्तता भ्रान्ति तो पैदा कर ही देती है। यही भ्रान्ति धूर्त की पूजी होती है।

आत्मा की गति और शरीर की गति ने भेद जिराना अधिक होता है, वहां उत्ताना ही अधिक दम्भ, कपट एवं धूर्तता भरा व्यवहार भी दिखाई देगा। सरल व्यवहार ही इस गतिगैद के दूर करता है और इस गति शेद के घटते जाने में ही आत्मप्रिकास क मार्ग निष्पत्तक एवं निर्विघ्न बनाता जाता है। शरीर की गति जब आत्मा की

निरि का अनुसरण करेगी तब आन्तरिक शक्ति का उद्भव होगा। वह निरन्तर अशिष्यद्व होती हुई मूल स्वरूप को प्रदीप्त करने लगेगी।

समता दर्शन-एक समूची जीवन-पद्धति

समता दर्शन जीवन के प्रवाह को इसी प्रदीपा दिशा में मोड़ना चाहता है। समतादर्शन—एक समूची जीवन—पद्धति है जो मनुष्य के सामाजिक एवं आन्तरिक विकास के स्वरूप को साझा बनाती है। शरीर और आत्म। ली गति में एकरूपता का अर्थ है— बाह्य और अन्तर ली निरि में एकरूपता; विवार, वाणी और कर्म की एकरूपता। एवं ज्ञान, श्रद्धा तथा चरित्र की एकरूपता। वास्तव में यही एकरूपता आत्मविकास का सच्चा मार्ग है। सरल व्यवहार से पनापती हुई यह एकरूपता जब अपनी उत्कृष्ट श्रेणी में पहुंचती है तो वह आत्मा और परगतामा ली एकरूपता ले रखापित कर देती है। रागतादर्शन का यही रूपा लक्ष्य है।

भगवान् श्री अजितानाथ का आदर्श 'पंथङ्गा' यदि खोजना और निहारना है तो उसके लिये शरीर की कैद से अर्थात् गौतिकता ली कैद से आत्मा को मुक्त कराना ही होगा, क्योंकि जब गौतिकता ला नियन्त्रण होता है तो ठिकार छैलते हैं और जब आत्मा या आध यात्मिकता का नियन्त्रण होता है तो भौतिकता भी परहित। कारण बन जाती है इस कारण आत्म—नियन्त्रण की स्थिति लो बढ़ाने की आवश्यकता है, क्योंकि इसी से सम्यक् निर्णय लेने ली क्षमता बढ़ेगी और रागतामा वातावरण की रचना होगी। भगवान् ला गार्ग इसी दिव्य दृष्टि से दिखाई देता है।



लाल भवन

28.8.72

आत्मशक्ति का मूल

“काल लब्धि लद्दि पंथ निहालशूरे.....”

भगवान् श्री अजितनाथ की प्रार्थना के गाध्यग रो आत्मविकारा के गार्ग के अन्नोषण की दिशा में विचार चल रहा है। इस गार्ग लो सही राशीके से दखने के लिए विभिन्न राशीकों का इसके उल्लेख आया है जिनमें अनुकूल एवं प्रतिकूल परिस्थितियों का सामना करना पड़ता है। उनसे संघर्ष करते हुए अप्रसर होने का संकेत के रूप में कहा गया है कि तन्द्रा की तारतम्यता और तीतरागदेव की वाणी के अवलम्बन के बाद भी यदि राम्यकृ रूप रो उत्तराशक्ति प्रस्फुटित नहीं होती है। तब भी हतोत्तराहित होने की स्थिति नहीं आनी वाहिए।

आत्मा अनन्त शक्ति की घनी हो तो है और वह शक्ति कहीं बाहर से मिलने वाली नहीं है, वह तो अपने अन्दर ही है। जो अप्रकट शक्ति है, उसे प्रकट करने, विकसित करने एवं पूर्णतः प्रकाशित करने का प्रश्न है। इस हेतु कई साधनों का अपलग्बन्ध लिया जा सकता है। दिव्य गहात्माओं का संयोग गिलता है, किन्तु कोई दौर्धकर का निगित भी गिल जाता है। फिर भी जब उस शक्ति की अग्निव्यक्ति नहीं होती है तब कई आत्माओं में एक निराशा सी छा जाती है, किन्तु ऐसी वृत्ति उचित नहीं है। निराशा के साथ ये आत्माएं ऐरी धारणा भी बना लेती हैं कि गहात्माओं एवं दौर्धकर ला निगित गिल जाने पर भी अन्तर्शक्ति प्रकट नहीं हुई तो फिर निगित का कोई महत्व नहीं है। यह धारणा भी उन्ने मूलक है।

कार्य, कारण, उपादान और निमित्त

किरी भी कार्य को राम्पन्न करने के लिए कारण रूप उपादान भी होता है और निमित्त भी राठायक बनता है। जो हताशा गें निमित्त को निरुपयोगी मानकर उपादान को ही सब कुछ मान लेते हैं तो वह भी उचित नहीं है। उपादान ही सब कुछ हो तो उपादान रूप आत्मा की शक्ति तो आगा गें अनादिकाल से विद्यगान थी, है व रहेगी, फिर उराकी अभियन्ति क्यों नहीं होती है? रेरा क्यों बना रहता है कि वह शक्ति वही रहती है और आत्मा संसार के झंझावारों में इधर उधर लुढ़कती रहती है?

वास्तव में एकान्त दृष्टिकोण किसी भी तत्त्व को सनझने में और सग्यक् रूप से समझने में सहयता नहीं देता। एकान्त दृष्टिकोण जब आता है तो वह गनुष्ठ के एकांगी बना देता है। जब गनुष्ठ दोनों नेत्रों की बजाए एक ही नेत्र से देखना शुरू करे तो दूरारे की उपेक्षा स्वरूप दृष्टि प्रदान नहीं करेगी। इस कारण सिर्फ उपादान को महत्वपूर्ण कहना और निमित्त की उपेक्षा करना समीक्षीय नहीं है। उपादान और निमित्त दोनों का अपने—अपने स्थान पर अपना—अपना महत्व है। निमित्त किंतु श्री श्रेष्ठ हो, किन्तु उपादान की योग्यता न हो तो निमित्त क्या कर सकता है? कारीगर कितना ही कुशल और वपुर हो, पर राधन—रामग्री उपयुक्त नहीं हो तो वह वे ईरवन। नहीं कर सकेगा। इसी प्रकार साधन सामग्री श्रेष्ठतम हो और कारीगर मूर्ख हो तो उससे भी कुछ बनाने वाला नहीं है।

सही स्थिति यह है कि केवल उपादान और निमित्त—दोनों का सम्बन्ध हो जाना भी पर्याप्त नहीं है। उपादान और निमित्त के राथ—राथ अन्य भी कुछ कारणों की अपेक्ष होती है और उस अन्य राधन रामग्री को भी रामने सखकर ही इन्हाँन भगवान् के गार्ग पर चले तो कार्य को सापन्न कर सकता है। इसीलिये प्रार्थना में कहा गया है कि—

काल लघि लही पंथ निहाल शूं रे
ए आशा अवलम्ब ।

ए जन जीवे रे जिनजी जाणजो रे आनन्दधन मत अम्ब।

जहां तीर्थकर सरीखा प्रब्ल निमित्त मिलने पर भी और उपादान रूप आत्मशक्ति के अन्दर विद्यमान होने पर भी यदि आत्मिक ज्योति प्रज्ञवलित नहीं हुई है तब भी निराशा का प्रश्न नहीं है क्योंकि काल (रागाय) के ऐसे बिना भी लक्षि -हीं होती है और इस कारण सम्य की प्रतीक्षा करने का भी इसमे निर्देश दिया गया है। ज्ञानीजनों का स्वप्नक एवं त्यगियों को उपस्थिति जीवन में एक आन्तरिक उल्जारा को ब्यक्त करने ले राबल कारण होते हैं और वह उल्जारा उपादान की शक्ति है लेकिन आवरोध के रूप में जो गिर्यारात्रि भोह कर्म के टिळ अवस्थिति रहते हैं, वे उपादान की अभिव्यक्ति में बाधक बन जाते हैं। तब बाध को क्षय किए बिना उपादान के साथ निमित्त की सफलता संगव नहीं बनती है।

कर्म-पिण्डों को क्षय करें

इन बाधक तत्त्वों यानी कर्म-पिण्डों को क्षय करने का प्रयास प्रथम आवश्यक होता है और जितने आशीक ये कर्म जोरावर और गजबूत होते हैं, उतना ही प्रगारा कठिन और कर्गठ प्रगारा करना पड़ता है। भव्य प्राणी जब यह कठिन पुरुषार्थ करते हैं तो काल धर्म पकने पर ये बाधल रात्रि भी नष्ट हो जाते हैं, तब निमित्त की सफलता भी दीखती है और आत्मशक्ति की अगिर्व्यक्ति भी होने लगती है।

यह कालअवधि कर्मों की अवधि होती है और इसी कारण कवि ने हतोत्तराहित नहीं होने का निर्देश किया है। जिरा रोज इन कर्मों की अवधि पकेनी उस रोज चे आवश्य ही हिलेंगे और नष्ट होंगे, इसलिए पुरुषार्थ का क्रन ब्रह्माबर जारी रखना चाहिए। इस पुरुषार्थ में बाधक तत्त्वों को दूर करना भी शामिल है तथा निमित्त का सदुपयोग करना भी शामिल है। पुरुषार्थ में रत रहते हुए धैर्य से प्रतीक्षा की जाएगी जो एक दिन आत्मशक्ति की सम्पूर्णतः अभिव्यक्ति सुनिश्चित है। कभी कोई भाग्य के भरोसे बैठे रहने की कोशिश करो

हैं तो उनके लिए ज्ञानी जन कहते हैं कि तू प्रगाद रत कर और रागाय मात्र के लिए भी प्रमाद मत कर तथा काल-लङ्घि का सहारा लेकर भी अपने सत्पुष्टार्थ में जुटा रह। तब जीवन ज्योति का दर्शन अवश्य ही निलेगा।

मैं सोचता हूँ कि सबके लिए यह पुरुषार्थ ही सज्जा मार्गदर्शक बन सकता है, किन्तु कई बार निरन्तर प्रयास भी ठिष्मरा में पर्सिणी हो जाते हैं, तब तर विषमाता की स्थिति को रागतागय उपलङ्घि के साथ जोड़ना चाहता है, जिससे आत्मशक्ति को अग्निव्यक्त होने वा प्रबल अवलम्बन मिल जाता है।

यदि जीवन में समता को दृढ़ अनुपात में लेकर चला जाए तो काल लङ्घि की दृष्टि से विलग्य लग सकता है किन्तु अग्निव्यक्ति निश्चित हो जाएगी। समरा स्तिष्माना दर्शन जहाँ विवार सन्ता वी प्रेरणा देता है तो वह रागत्र रूप से जीवन को रागतागय बनने वा भी निर्देश देता है। ज्योही वैवारिक साम्भ की स्थिति बनती है तो गरितष्ट की सुधङ्गता का अन्य अंग—उपांगों पर भी सुप्रभाव पड़ता है। विचारों के समतामय होने के साथ ही जीवन का सारा छांचा एक नए परिवर्तन की करवट लेता है।

रागतागय का जो यह विशेषग लगाया गया है, उसाता विशेष नहृत्व है। समता की तरलता जीवन के अणु-अणु के साथ समरस होनी चाहिए, तभी इस 'मय' का अर्थ सार्थक बनता है। रागता का क्रग विचार, उचार और आचार के अनुरार चलना चाहिए। विचारों में समानता, वाणी में समानता और फिर आचरण में समानता यदि पूर्णांशों में आ जाए तो फिर जीवन की ज्योति लो प्रकाशित ढोने से कौन री बाधा रोक राकती है? विचार ही वाणी में फूटते हैं और वे ही जीवन के अन्दर उतरते हैं, और जब यह काय सग्यक रूप से सग्न्न होता है तब समतामय स्थिति उत्पन्न होती है। यही स्थिति आत्मशक्ति को पूरे तौर पर उजागर बनाती है।

आत्मशक्ति का मूल कहाँ?

आत्मशक्ति ली अभिल्यक्ति के इस प्रकार कई अंग और रूप

हो सकते हैं, किन्तु उसका मूल कहाँ रहा हुआ है इसे स्पष्टतः समझने की आवश्यकता है। अहिंसा समता का प्रधान अंग है और इसी तरह आत्मशमिति की अशिव्यकित का मूल। शास्त्रकारों ने अहिंसा का रूपक इरा प्रकार दर्शाया है कि इरा रांरार रामी रामुद्र में चारों नितियों में आपाएं भटकती हैं और उन्हें लोई राहारा नहीं दीखता। कल्पना करें कि बीय समुद्र में एक रैसल गिर जाता है और वह लूबने की रिक्ति में आ जाता है, तब यदि उसे एक दामु दिर्खाई देतो उसे बचने की आशा रो कितनी शान्ति गिर जाती है? तब वह उत्तराहपूर्वक टापू की ओर तैरने लगता है। उरी प्रकार इरा रांरार रामुद्र का टापू अहिंरा को गाना नथा है। संसार में गोता ख ने वाले प्राणियों को अहिंसा से ही आश्रय मिल सकता है। यह शरण रूप अहिंसा भव्य प्राणियों को प्रभु के मार्म की ओर मोड़ने वाली होती है। इसे टापू कहें, ज्योतिर्स्तंश या ज्हाज कहें—अशिग्राम एक ही है।

अहिंसा के शास्त्रीय नाम

शास्त्रकारों ने अहिंरा के विभिन्न पक्षों को रपर्श करने ली दृष्टि से इसे विविध नामों एवं विशेषणों से सम्बोधित किया है। अहिंसा को “निर्वाण” यानी निर्वाण भी कहा है। निर्वाण का अर्थ होता है—मोक्ष अर्थात् जीवन की चरम सीमा और परम शान्ति ला स्थल। आप से चेंगे कि अहिंसा मोक्ष कैसे है? मैं कहूँगा कि वह गोक्ष का एक प्रमुख कारण है। इराके लिए गोक्ष के तात्पर्य को राखना होगा। जहाँ आपा के चरण रींग। तक विकारा हो और रागता का पूर्ण रूप प्रकाशित हो वह मोक्ष है। यह स्थिति अन्तर के कारण से बनती है। इसलिए कारण से कार्य का विचार किया गया है।

कारण से कार्य का विचार करने का अर्थ है कि जब कर्ता प्रसंग आता है तो कहा जाता है कि जल मनुष्य के लिए प्राण है—जीवन है। “अन्न वाही प्राणः का वेदोऽनेत्रे उल्लेख है और ‘धीवही प्रापाः’ के भी उल्लेख है तो वया अन्न और धी प्राण हैं? यहाँ प्राणों से तात्पर्य है कि जो इन्द्रियों को शाक्ति देते हैं उन्हें प्राण रूप कह

दिया गया है। इसी रूपक से अहिंसा को निर्वाण कहा गया है क्योंकि अहिंसा के कारण से आत्मशक्ति का ग्रकटीकरण रूप कार्य सम्पन्न होता है।

यह शास्त्र का बचन और ज्ञानियों का अनुभव है कि गितने-जितने अंश में हम अहिंसा की शरण में जरे हैं उतने उतने अंश में हमारा मोक्ष भी होपा जाता है। अपा संसार के अन्दर मोक्ष की स्थिति का कोई कारण है तो वह अहिंसा ही है। मानसिल, वाचिक या कार्मिक हिंसा से दूर होकर जब कोई सिद्धान्त और ल्यवहार से पूर्णतया अहिंसा का आराधक बनता है तो ऐसा नान लिया जाना चाहिये कि उसका जीवन पूर्णतया रागताम य हो गय है। अहिंसा वह प्रबल राधा है जिसकी सहायता से समरामय जीवन के साध्य को निश्चियता रूप से प्राप्त किया जा सकता है।

अहिंसा को 'गिल्बहिओ' यानी निवृत्ति भी कहा है। जहाँ हिंसा है, चाहे वह किसी भी प्रकार की हो—उससे निवृत्ति होने पर ही अहिंसा की आराधना की जा राकी है और जीवन—रक्षण जी स्थिति में पहुंचा जा राकी है। अपा हिंसा रो निवृति के कारण अहिंसा का यह नामकरण भी किया गया है।

अहिंसा का अन्य नाम 'समाही' अर्थात् समाधि भी शास्त्रकारों ने बताया है। समाधि किसे कहते हैं? आपने सुना होगा कि कई प्रापायाम करके वायु को कपाल में चढ़ा निष्ठोष्ट होकर समाधि लेते हैं। वे यह रागडारों हैं कि श्वास का निरोध करके वे रागाधि प्रडण कर रहे हैं किन्तु वस्तुतः वह रागाधि नहीं है। रागाधि कहते हैं शान्ति को नीज की शान्ति और पर की शान्ति। यह समाधि अहिंसा से ही ब्राप्त हो सकती है। हिंसा नहीं होगी तो शान्ति फैलेगी ही—यह प्राकृतिक तथा है। हिंसा नहीं करने रो रखने में रोद्र भाज गैदा नहीं होगा एवं दूरारों के प्रति रक्षा की प्रवृत्ति पनपेगी। इरालिए पररपर सम्पादा का भाव बढ़ेगा और समाधि का वातावरण विस्तारित होगा। अतः जहिंसा से बढ़कर शान्तिकारक और कौनसा विवार तथा आवार हो सकता है? जो अहिंसक है उसको उसकी समाधि से कौन छिगा

सकता है ? इसलिए सब्दी समाधि श्वास निरोध के नहीं हिंसा—गिवारण को कहा जाना चाहिए। एक अहिंसक सच्चा सनतात्मारी होता है और समता—समाधि की जगनी है।

अहिंसा-शक्ति और कीर्ति भी

अहिंसा को फिर कहा है—रात्ती यानी शब्दित। ननालिख बाह्य शक्तियां दिखाई देती हैं और मनुष्य सौवता है कि मुझे शस्त्र की शक्ति प्राप्त हो जाए। यंत्र की शक्ति मिल जाए। सता या सम्पति की शक्ति मिल जाए अथवा शरीर की शब्दित मिल जाए—किन्तु इन सभी बाहरी शक्तियों के पीछे वह गठकता रहता है और अन्तर की सब्दी शक्ति पाने की ओर अपना ध्यान नहीं लग ता है। इस शक्ति के रागाने अन्य रम्भी बहरी शक्तियां गौण होती हैं। आत्मशक्ति को प्राप्त कर ले तो ये सारी शक्तियां निरर्थक हो जाती हैं। यह आत्मशक्ति प्राप्त होती है अहिंसा से। इसी कारण अहिंसा का नामोल्लेख शक्ति रूप में भी किया गया है। एक अहिंसक की कैरी शक्ति होती है, इराली रागरागिक डालक तो गहाता गांधी के जीवन से गिलती ही है। अहिंसक की शक्ति आत्मा पर आधारित होती है, अतः अडिग और अजेय भी होती है।

‘कित्ती’ अर्थात् ‘कीर्ति’ शब्द से भी शास्त्रकारों ने अहिंसा को सम्बोधित किया है। मनुष्य कीर्ति के पीछे झूटे झूठे सधानों ले अपनाकर भटकता है और उराकी प्राप्ति के लिए तरह—तरह लौ कोशिशें करता है। किन्तु यदि किरी को राज्यी एवं आगिट कीर्ति प्राप्त करनी है तो उसे अहिंसा को अपना लेना चाहिये। यदि कोई एक दुःखी मनुष्य की भी सहायता करके उसका दुःख दूर कर देता है तो वह उस उग्कार को भूल सकता है ? वह जहां जाएगा बात करेगा, अपने रक्षक और सहायक की अवश्य प्रशंसा करेगा। एक अहिंसक तो अपना सामर्थ्य के अनुसार सैकड़ों हजारों, और उस तरह का कार्य व अवसर हो तो जाखों का दुख दूर करने की क्षमता रखता है। वया प्रभु के आदर्श जीवन से असंख्य प्राणि यों का दुःख पूर

नहीं होता ? यदि इतने लोग एक अहिंसक की रवैंत्र प्रशंसा करने लगें तो सोचिये कि उसकी कीर्ति कितानी व्यापक हो जाएगी ? कीर्ति की कामना नहीं होनी चाहिये, किन्तु अहिंसा और समतामय जीवन बनाकर जो बलपा है, उसको कीर्ति रखता ही विशृंख डोपी बली जाती है। आपकी आंखें देखी बात का ही दृष्टान्त दूँ कि परम हिंसामय तात्त्वरण में लाल गांधीजी नोआखली (बंगाल) गये तो एक अहिंसक का कैसा सुन्नतामाल पड़ा और उससे उनकी प्रतिष्ठा भी कितानी अभिवृद्ध हुई ? अहिंसा अपश्य ही कीर्ति प्रदाता भी है।

अहिंसा को कान्ति में कह है। वमल है तो है तो शरीर भी प्रगावशाली लगता है, फिर जहाँ आत्मशक्ति ली दमक निल जाए तो वहाँ रोजरिवा की करी कैरो रहेगी ? ज्ञानी जन कहते हैं कि अगर तू अपने स्वरूप को चमकाना चाहता है तो बाह्य एवं कृत्रिम साधनों के पीछे मत भाग, बल्कि आपने जीवन में अहिंसा को प्रगुण स्थान दे और फिर देख कि वास्तविक कान्ति से कैसा लेज टपकता है ?

आप आश्चर्य करने के अहिंसा को रति भी कहा है और निरति भी। रति का उर्थ कान है नहीं, अनुरक्षित भी होता है और वह अनुरक्षित अगर किसी एक व्यक्ति ने न होकर उदारवारित्र के अनुसार सगूण वसुधा के प्राणियों में हो तो यह उस अनुरक्षित लो हग अहिंसा का श्रेष्ठ रवरूप नहीं कह सकेंगे ? इस राह अहिंसा रति है तो विरति इसालिए कि हिंसा रो विलग होने पर ही अहिंसा की स्थिति आती है तो हिंसा रो विरति अहिंसा का रूप हुआ।

अहिंसा शीर्ष-स्थान पर

पितिध नामों ली अपेक्षा से यह अहिंसा का घोषित विपेचन नहीं, बल्कि विविध रूप में उसका स्वरूप दर्शन है। जीवन निमोण के विविध अंगों में आहंसा की प्रतीक्षा शीर्षस्थान पर है। गानव शरीर का रूपक लें तो आहंसा + सिद्ध के समान है। जिसका मस्तिष्क ठीक नहीं तो उसका विचार और आचार-दोगों ही विकृत रहेगा। आप देखते हैं कि सन्तुलित मस्तिष्क वाले की ही स्वाधिक प्रतीक्षा रहती है चाहे उसके अन्य अंगोंपांगों में कोई दोष भी हो। शीर्ष ठील तो रह

ठीक, क्योंकि शीर्ष बिंगड़ जाए तो कहा नहीं जा सकता कि किस किस अंग को कितनी—लितनी हानि उठानी पड़े ? जिसके मस्तिष्क में पागलपन आ जाए और वह अपना नियंत्रण खो बैठे तो फिर उसकी कथा दशा हो जाएगी ?

यही शीर्षस्थान अहिंसा को प्राप्त है। जो आत्म विकास के मार्ग पर कुछ अन्य सदगुण तो अपना ले किन्तु हिंसा का त्वाग न करे तो क्या वह उस मार्ग पर आगे बढ़ सकेगा और क्या वह उन प्राप्त सदगुणों के भी अपने साथ टिकाये रख सकेगा ? मस्तिष्क ठीक है तो हाथ—पैरों से भी ठीक काम लेगा तथा दूरारे अंगों से भी आपना—अपना काम कराएगा। किन्तु यदि हाथ—पैर और दूरारे अंग तो रह ठीक हैं मगर केवल मस्तिष्क ही ठीक नहीं है तो क्या अन्य सभी अंगों का ठीक होना ठीक तरह से उपयोगी बन सकेगा ?

इसले विषयीत यदि मस्तिष्क बिल्कुल स्वस्थ और सन्तुलित है और दूसरे अंगों में गाढ़ित द्वमता या शक्ति नहीं भी है तब भी मस्तिष्क अपनी क्षमता से कुछ न कुछ ऐसे समाध निकाल लेगा कि जिनके द्वारा काम बलाया जा राके। इसी प्रकार एक व्यविधि जिराने के बल छेरा॥ छोड़ी है और दूसरे विकारों को नहीं छोड़ सका है तो वह ज्यों ज्यों अधिकाधिक अहिंसक बनता जाएगा। अपनी आत्मशक्ति को वह बढ़ाता जाएगा और उराकी राहायता से अन्य लिलाओं से भी गुरुकित पाता जाएगा।

आहेर। आत्मशक्ति को प्राप्त करने की वह पहली रीढ़ी है। जेरा पर पांव रख लेर ही ऊपर की ओर बढ़ा जा राकर॥ है। आहेर॥ की आराधना से शक्ति का संचय करती हुई आत्मा ऊर्ध्वासी बन सकती है। यह कहा जा सकता है कि आत्मशक्ति का मूल अहिंसा में ही है और जिराने गूळ को पकड़ लिया, गूळ को पुष्ट और दृढ़ बना दिया उरो कौन हिला रकता है ? चुदृढ़ गूळ याले वृक्ष की शाखाएं और उपशाखाएं पलेंगे तो उस पर पत्ते, पूळ और फल भी लगेंगे। जिसकी जड़ हरी है, उसकी डर बीज हरी रहती है।

अहिंसा का आराधक विनयधर

क्या विनयधर रोठ की हरी—मरी आत्—शक्ति को श्रीकेतु राजा उजाह राकेगा ? डिलारों में रंगे गनुष्य जा विकृत प्रथारा रानी और से बलता है किन्तु समता एवं अहिंसमय व्यक्तित्व को लिंगा पाना भी असाध्य ही होता है। श्रीकेतु हिंसा का प्रतीक बनकर अहिंसाक रोठ को दबोचने की कोशिश करता है। उराने रान, दाग, दंड, भेद रो नागरिकों को अपने पक्ष में करने के प्रयत्न आरम्भ कर दिए। स्वार्थ या प्रभाववश कई नागरिकों के राजा के पक्ष में हो जाने के बावजूद भी एक नागरिक ने स्पष्ट रूप से सभा में कहा। राजन् ! आप कुछ भी घट्यंत्र करें—असली हंस तो मोती ही चुगता है और मोती न मिले तो लंघन कर लेता है, किन्तु मैले में या अन्यत्र करी अपनी चौंच नहीं छालता है। विनयधर रोठ राज्यरित्रता की प्रतिगृहि है और रहेगा। उठ कभी पर—स्त्री लम्पित नहीं बन राकता है।

श्रीकेतु राजा के भिराष्ट्र तो विकृता था बेकाबू था। वे कुपित हो उठे और गरज कर बोले मैं राजा हूँ, शवेता सम्पन्न हूँ। मैं चाहे जो कर सकता हूँ और करूँगा। इस कोप ने साव्वारण रूप से सभा पर असर डाला। आप तो जानते हैं कि जो संसार में बैठे हुए हैं और रम्पांति के पीछे भागते हैं, उन पर राता का किंतना और कैरा। आपके रहपा है ? यह तो अहिंसाक वी ही जापाशकि होती है कि यह किसी भी अन्याय को सहता नहीं और किसी से भी भय खाता नहीं। संसार के ल्यार्थों में पहुँचे हुए लोगों का साहस ही किंतना होता है ? या तो ल्यार्थ छोड़ें या उन्हें दबना ही पड़ता है।

उसी समय राजा ने सेनाभ्यादा को बुलाकर अज्ञा दी कि वह पर्याप्त रौनिक शक्ति आपने राथ ले जाकर पुरना विनयधर रोठ भी हवेली को धेर ले लै रोठ और उनकी वारों रोडानियों को बन्धी बनाकर उनके समने प्रस्तुत करे। दुष्ट व्यक्ति जब कोई बात कहता है या करता है तब उसमें उसका दुरंगाटन बगाबर बना रहता है। श्रीकेतु गहाराज का गरिताष्ट भी विकरा भावना से ग्रस्त एवं राजकीय गद रो गत्त बना हुआ था। बाहर रो तो वह विनयधर रोठ के पर—स्त्री

लम्पट सिद्ध करके उपने सव्वरित्रिता की छाप लगा रहा २। किन्तु किसी लज्जाज़गल स्थिति थी कि असल में वह स्वयं पर—स्त्री लम्पट बनाने के लिए कितन गायांची घड़यंत्र रथकर कामयाबी पाना चाह रहा था।

राजाज्ञा लेकर जब रोनाल्यक्ष विनयधर रोठ लौ हवेली पर पहुंचा तो वहाँ आहिरा और रागता का विशुद्ध वायुगांडल छाया हुआ था। पसग विनेत्रा अपिशय आपविन्न को भी विनेत्रा की ओर प्रभावित करती है और उस विशुद्ध वारावरण का आसर उस सेनाल्यक्ष पर भी पड़ा। यह अरार अदृश्य होते हुए भी उरो ऐरा प्रतीत हुआ जैरो उरो शीतर छाया की तरह शान्ति के अनुभव हो रहा हो। उस रोनाल्यक्ष को गहररुसा हुआ कि वायुगांडल पर रवयं रोठ एवं रेहानियों के पवित्र जीवन का ही प्रभाव वरिलाई ही रहा है।

सेनाल्यक्ष सोचता है कि यह शान्तिप्रदायक प्रभाव ऐस ही है जैरा जल—प्रवाह के रागीप शीतलता और पुष्टित उद्यान के रागीप रुग्मा का प्रभाव होता है। इरी के रान्दर्भ में उराने रोना कि ऐरो पवित्र व्यक्ति पर राजा ने ऐरा जाधन्य आरोप क्यों लगाया है तथा ऐसी कठोर आज्ञा उसे क्यों दी है? उसके मन में तरह—तरह ली ऊहापोह चलने लगी। फिर भी वह तो राज्य रोक क्या और उरो राजाज्ञा का पालन करना क्या, वह हवेली के गुरुग्न हार पर पहुंचा और उहाँ के एक भूय रो पूछा कि रेठ भीतर व्या कर रहे हैं? उत्तर गिला कि ये अपने धर्म क्रिया—कल्प में साधनारत हैं। सेनाल्यक्ष को अधिक आश्चर्य हुआ कि इतने बड़े राजकीय कोष के बावजूद यह व्यक्ति शान्त गति रो धर्ग—राधना गें लग हुआ है।

रोनाल्यक्ष ने फिर भी हवेली गें ग्रवेश करके विनयधर रोठ रो गिलने का उपक्रम किया तो उनके परिवार जनों ने उरालो रोका कि धर्म—साधना के समय वे कुछ भी बालेंगे नहीं और उसमें किसी भी प्रकार से विळा डालना भी उचित नहीं होगा। वह स्वयं सेठ के तथा उनके परिवार वालों के धीर्घ रो प्रभावित होता है, फिर भी उराके गन गें यह भी शंका उठती है कि कहीं बहाना तो नहीं बनाया हुआ है। उराने परीका करने का निर्णय किया। रोनाल्यक्ष राधनागृह के बाहर खड़ा हो गया। उसने देखा कि भीतर बिल्कुल सादगी का वातावरण

है और रोठ ध्यान गें तल्लीन है। उनके गुख पर किरी तरह की विना का चिन्ह तक नहीं था। यारों पत्नियां भी वहीं बैली हुई थीं और वे भी राज्यवृत्ति गें लगी हुई थीं। रोनाश्वय बाठर—खड़ा खड़ा सावधानी से उनकी बौकसे करने लगा।

हिंसा और अहिंसा के दो दृश्य

हिंरा और अहिंरा के दोनों ओर दो दृश्य देखिये। हिंराक प्रवृत्ति पर उत्ताल श्रीकेशु आर्त और रौद्र ध्यान के निकृष्ट विवारों में हूब रहा है। उसके वेहरे पर कोप और आतंक के निशान हैं तो भय की रेखाएं भी खिंची हुई हैं। हिसक में न समता होती है, न आत्मशक्ति। वह तो बाहरी शक्ति पर इतराता है जो अन्त में धोखा दे देती है। इरो कर्तव्य दूराश ही दृश्य होता है एक अहिंराक के आन्तरिन का। वहाँ न क्रोध होता है, न भय। उस आकृति पर तो पूर्ण शान्ति का अनुभव बना रहता है। यही दृश्य दिखाई दे रहा था सेत विनयधर की आकृति पर, क्योंकि उसके पास अहिंसा की साधना और उस पर आधारित आत्मशक्ति थी।

लितना अन्तर होता है दोनों प्रकर की शक्तियों के बीच। श्रीकेशु के पास साता और सम्पत्ति की आपार शक्ति थी, फिर भी वह नयीता था वयोंके विकारों से भय ही पूटपा है। आपार बाह्य शक्तियों के समक्ष अकेली आत्मशक्ति भी तुलना में कर्व गुना सशक्त होती है। यही कारण है कि अहिंसा का आरामक एकदम गिर्णीक होता है। अन्तर का उरो ऐसा राम्भल होता है कि वह जैरो झुकाये नहीं झुकता। वह किरी के गारता नहीं और आवश्यकता हो तो रथयं गरने रो कभी पीछे हटता नहीं। ऐसा होता है अहिंसा का बल, जो जल्मा की अनन्त शक्ति को जगाता है और उसे गतिमान बनाता है।

एकबार अहिंसा एवं समता की सग्यक् साधना से जिसने अपनी आत्मशक्ति को जगा दिया, वह फिर अश्वत्त नहीं रहता। वह अपनी उस शक्ति के विकसित करता हुआ परस्म शक्ति तक पहुंच ही जाता है। भगवान् को दरह वह भी अनन्त शक्ति सम्पन्न बन ही जाता है।

अहिंसा की आराधना

"संभव देव ते धुर सेवो सवेरे....."

यह भगवान् श्री राम्भवनाथ की प्रार्थना है। भगवान् एक प्रकार रो रात्य के प्रतीक होते हैं। उनका जो आदर्श जीवन है, वह रात्य ला प्रतीक रूप होता है। हम कहा करते हैं कि सत्य है भगवान् है और उसका करण यही है कि जिस सत्य मार्ग पर आगे बढ़ कर जो वे साधना लेते हैं। उससे वे जब पूर्ण सत्य के दर्शन कर लेते हैं तब वही आत्मा परमात्मा का नरम श्रेष्ठ स्वरूप धारण कर लेती है। इस तरह हम कह राकते हैं कि रामी भव्य प्राणियों का अन्तिग राम्य भी रात्य ही होता है, व्योकि रात्य है वही कल्यणकारी है और जो कल्याणकारी है, वही सुन्दर है। जो सुन्दर है, वही दिव्य और भव्य है। यह सुन्दरता आत्मा की सुन्दरता होती है। आत्म सौन्दर्य हीं जीवन का अन्तिग लक्ष्य होता है, जो अन्तर की शक्ति गे प्ररक्षुटन रो विकरित होता है।

रात्य के रात्य को प्राप्त करना रारल नहीं होता। इस गार्ग गे जिस प्रकार की कठिनाइयाँ आती हैं, उनसे कई बार गनुष्य के मन पर हताशा की लहरें दौड़ जाती हैं और उसका उत्साह शिथिल होने लगता है। वह सोचता है कि यह मार्ग तो असाध्य है—इस पर वह कभी भी चल नहीं सकेगा। आन्तरिक कर्ग शन्तु जब उसाली गति पर बास—बार आघात करते हैं तो वह अलगन्त ही निराश हो उठता है और उस साध की ओर बढ़ने से रुक जाता है व्योकि उसे वह असंभव मानने लग जाता है।

मन और मस्तिष्क की दुर्बलताएं

गन और गरितश्च की इरा प्रकार की भयंकर दुर्बलता के क्षणों में जब वह भगवान् श्री रामवनाथ की प्रार्थना पर अपना ध्यान केंद्रों परता है तो उसके शिथिल अन्तर में उत्साह का एक नया ज्वार प्रकट होने लगता है। प्रभु के आदर्श जीवन दर्शन में उमंग की लहरें फिर दौड़ने लगती हैं और तब वह पुनः उत्साहित होता है कि उत्तराकी गति उत्तरा गार्ग पर अग्रसर बने। इरा उत्साह जागरण के राश्य ही उत्तराके मन में यह संकल्प सुदृढ़ बनने लगता है कि भविष्य में वह कदाचि अपने निश्चय से डिगेगा। नहीं। संमवनाथ को स्मरण करके जैसे उसका उत्साह द्विगुणित हो जाता है।

दृढ़ संकल्प के निर्माण के बाद जब साध्य को पाने की ललक तीव्र हो उठती है तब वह गनुष्ठा उत्तरा राश्य को पाने के लिये उपयुक्त राधान की खोज लेने लगता है। अब याब रथ्य को पाना है यानी भगवान् को पाना है तो जैसा कि पहले स्पष्ट किया जा तुका है कि अहिंसा की उसके लिये श्रेष्ठतम् साधन है। साध्य तभी मिलेगा जब साधान समर्थ होगा, वरना साध्य सदैव साध्य ही बना रहेगा। कशी भी उपलब्धि के रूप में प्रकट नहीं हो सकेगा।

आहिंरा जो ही रथ्य की रिद्धि रामव ई। जिरो राम्वनाथ प्रभु ने राम्भल कर दिखाया है औंर जिनके आदर्श जीवन—रूद्रों रो होंगे भी संभव कर दिखाने की प्रेरणा प्राप्त हो सकती है। 'संभव' शब्द से ही संकेत उस नानसिक भूमिका पर पहुंचता है, जहां से एक हताश ल्यक्ति की उमंग एक नये दौर में पैदा होती है। असंगव की कल्पना करते ही जिस तरह निराशा का अधेरा मन और मस्तिष्क पर छाने लगता है, उसके ठीक विपरीत रामव जी रिथिति गहरे अन्तर में भी आशा की प्रकाश किरण को बाकाने वाली है। इसीलिये कहा गया है कि संगवनाथ की सेवा करो, उन का स्मरण करो अर्थात् उनके सामर्थ्य, उनकी शक्ति और उनकी सतत् संगावना को अपने अन्तर्मन में रागाहित करते रहने का प्रयारा करते रहो।

संगव की धूमिल सी आशा भी जब नवोत्साह का संचार लरती

है तो भगवान् श्री संनवनाथ का नाम स्मरण प्रेरणा का महदस्त्रोप है। उनकी ग्रार्थना यदि सच्चे हृदय से की जाए तो ऐसी प्रतीति होने लगेगी कि इस विश्व में असंघव नाम की कोई स्थिति नहीं होती। अरांभव का अर्थ है—अरामार्थ्य, अकर्गण्यता एवं कापुरुषता। जहाँ अशक्ति है वहाँ अरांभव है वरना वास्तव में अरांभव कुछ भी नहीं है। असंघव को भी संभव लर दिखाने की शक्ति इस आत्मा में विद्यमान है। किन्तु जब संभवनाथ का स्मरण किय जाएगा तो वह शक्ति उद्घाटित होनी तथा अन्तर की रारी सुषुप्त शक्तियाँ जाग्रत हो उठेंगी। दृढ़ रौकल्य पुरुषार्थों को उद्बोधित करेगा कि शीघ्रतिशीघ्र आत्मा की अनन्य शिल्पों के पूर्णता प्रकट किया जाए और प्रेरणा देगा कि संभवनाथ के नार्ग पर वाहे किंतु भी बाधाएं डिगाने को आएं फिर भी कठिन साधनों के बल पर प्रस उत्साह से साक्षा को प्राप्त करके संवनाथ के सच्चे अनुगामी बनें।

पुरुषार्थ नियोजन की दिशा

इरा पुरुषार्थों को नियोजित करना है—राहीं राधन रन अहिंसा को अपना कर राथा अहिंसक शक्ति को अड़िग और अजेय बनाकर। अहिंसा की उपासना शौर्यपूर्वक ही की जा सकती है, क्योंकि अहिंसा सदा ही वीरों का धर्म रह रहा है, लायरों का कर्म नहीं। जो सच्चा वीर है वह तो अहिंसा को अपनाता ही है, किन्तु जो अहिंसक है उसके जीवन में तो कभी कापोशी के क्षण आते ही नहीं। वह वीरतापूर्वक ही जीता है, कठिन इर्थों रो रांधर्ष करता है तथा एक वीर की तरह अपने अन्तिम लक्ष्य को प्राप्त करके रहता है।

मैं बराबर बतालाता आ रहा हूँ कि जो अहिंसा को विवार लापी और कर्म से अपनाते हैं, वे ही अपने जीवन में सच्ची समता का भी संचार कर पाते हैं। 'सम' शब्द सहनशीलता, संयम, सौम्यता और सामानता का एल राथ, धोतक गाना गया है। राग की स्थिति का अर्थ है कि उसके जीवन में रागररात आ गई है। यह रागररात रिंग अहिंसा की निरन्तर उपासना से ही सच्च छो सकती है।

अहिंसा के समता और समता से सर्वोत्तमा यह आत्मविकास का स्थानाविक क्रम होता है।

समता की रस-धारा और परख बुद्धि

अहिंसा और समता की रस धारा से जिसने अपने जीवन को समरस बना लिया है, उसकी पहिलान एक साधारण सा पारस्परी होगा। यह भी कर लेगा। आप देखें कि सामने मिट्ठी के दस कोरे घड़े पड़े हुए हैं। अब क्या आप जान सकेंगे कि कौन सा घड़ा जल से पूरा गरा है, कौन रा आथ अधवा कौन रा पूरा ख ली होकर कोरा का कोरा है? शायद आप थे छोटी-री दृष्टि को पैनी बनायेंगे तो आर नी रो जान लेंगे। सजलता घड़े के अन्दर तक ही नर्यादित होकर नहीं रहती है किन्तु वह बाहर तक प्रकट होकर दिखाई देती है। उसी सजलता के रपष्ट चिन्ह आपको घड़े के बाहर भी दिखाई देंगे और उत्तरे घड़े में जल की स्थिति का आपको ज्ञान हो जाएगा।

घड़े की रागता की तरह ही अहिंसा और रागता भी राजलता भी थोड़े रो विवेक के साथ ही रपष्ट रागड़ा रागड़ा गें जाने याती स्थिति होती है। जब यह रस धारा म्नुष्य के मन और मस्तिष्क में प्रवाहित होने लगती है, और उससे विचार तथा आचार में एक क्रान्तिकारी परिवर्तन आता है तो उसकी रजलता बाहर भी पूर्णती है। तब बाहर की दुनिया भी उस धारा को आरानी रो रागड़ा लेती है। अहिंसा एवं समतामय जीवन का प्रेरणादायी प्रभाव बाहर भी उसके अंग अंग से अभिव्यक्त होने लगता है।

जीवन में अदर्श का प्रवेश ढो रहा है—इसका ज्ञान इसी स्थिति से हो सकता है कि उसके जीवन की इस रसधारा ले प्रवाह की क्या स्थिति है? जिसके जीवन में रागता का एक अंश भी प्रविष्ट हो जाए तो उसमें तेजरियता प्रकट हुए बिना नहीं रहेगी। हर क्षेत्र में उसकी झलक आएगी और वह जल के घड़े की तरह स्पष्ट परिलक्षित होने लगेगी।

अहिंसा के स्पर्श पर उसके विविध नामों की दृष्टि से पहले प्रकाश लाला गया था, किन्तु उस न मावली में कुछ और विशेषणात्मक

शास्त्रीय नाम बब रहे हैं, जिन्हे भी व्याख्यातक रूप से समझेंगे तो उससे अहिंसा का स्वरूप और अधिक सुन्दर हो सकेगा तथा उसली सक्रिय उपासना की तरफ दृढ़ संकल्प भी आगे बढ़ेगा और वह कलिं पुरुषार्थ को भी जाग एगा।

अहिंसा का अगला नाम 'खनि' बताया गया है। खनि यानी क्षान्ति। क्षान्ति कहते हैं क्रोध के निग्रह को। क्रोध का प्रसंग सामने हो और शड्काने वाली स्थितियों के बावजूद वह व्यक्ति ही क्रोध ला निग्रह कर सकता है जिसने अपने आप को अहिंसा का कट्टर उपाराक बना लिया है। राम्यकथ की आराधना को भी रागत ही कहा है और रागता रो क्षान्ति का राद्युण जीवन में स्वतंत्रता है तो कारणमूत होने से अहिंसा शान्ति भी है।

महंती विशेषण भी अहिंसा के लिये प्रयुक्त हुआ है। महंती का अर्थ है कि सभी धार्मिक अनुष्ठानों में उसका समावेश होने लगे और सभी तरह की धर्म-क्रियाओं में उसका अतीव उत्त्वाह बना रहे। ऐसा वही कर सकता है जिसके जीवन में अहिंसा का अंश रागा गया है। जो विवार और आवार-दोनों विषयों रो अहिंसा ले रहा। रूप को भी भली भाँति समझ कर उसे क्रियान्वित करने का यत्न करता है, उस जीवन में शानौः शानौः ही सही, महानता का प्रकट होते जाना सुनिश्चित होता है।

अहिंसा-बोधि, धृति और समृद्धि हैं

'बोहि' शब्द से भी अहिंसा को पुकारा गया है। बोहि यानी बोधि-जिसका अर्थ होता है कि रात्र्धर्ष जी प्राप्ति। हिंसा से पूर डटो रहने पर इस रत्य का बोहि होने लगता है कि आता। क्या है। उसकी अनुगृहीति क्या है और शक्ति क्या है, क्योंकि आलिक सद्भाव ही अहिंसा के श्रीगणेश से समझ में आने लगता है। इराजिये गानना चाहिये कि अहिंसा की उपाराना रो झानाजीन ला प्रयारा भी पूर्ण राफल बनता है। किसी की बुद्धि कितनी ही तीव्र हो, किन्तु यदि उसमें अहिंसा और समता की झलक न हो तो वह बुद्धि -

तो स्थिर हो सकेगी और न उसके प्रभाव से शनि लाभ ही हो सकेगा। ज्ञान को जगाने वाली भी अहिंसा ही होती है।

अहिंसा का नाम धृति भी कहा है। धृति उरा शक्ति का नाम है जो चित्त की चंचलता को रोक कर उरे गंभीर, स्थिर और उत्तम बनाती है। धृति की कारणमूला भी अहिंसा है और इसी परह सब्दी आत्मिक सनृद्धि की कारणमूला भी उहिंसा को ही माना गया है।

अहिंसा समृद्धि क्यों है? समृद्धि का अर्थ है सम्यक् प्रकार से ऋद्धि। यह ऋद्धि केवल भौतिक ही नहीं होती है, बल्कि आत्मिक भी होती है। भौतिक ऋद्धि भी किरी के पारा है और उसका वर्तगान जीवन अचांयनित और उरान्तुलित है तो रागज्ञाना चाहिये कि यह ऋद्धि उसके पूर्ण जन्म की आशधना का प्रतिफल है, क्योंकि ऋद्धि वी उपलद्धि अहिंसा वी सफल साधना पर ही निर्भर करती है। आत्मिक ऋद्धि की तो मूलधार ही अहिंसा है। अहिंसा के अनुपालन से सद्गुणों का समावेश आत्मिक अनुगामों में होने लगेगा और उससे निश्चय ही आएगा की श्री अभिवृद्ध होगी। यह श्री वृद्धि ही तो रामृद्धि बन जाती है। अहिंसा का नाम इस कारण रामृद्धि के साथ रिंद्रि भी है, क्योंकि समृद्धि का सीधा परिणाम सिंद्धि के रूप में ही तो प्रकट होता है।

अहिंसा-वृद्धि, स्थिति और पुष्टि भी

अहिंसा का नाम वृद्धि भी है। मनव की वृद्धि किस कारण से संचर होती है। अगर वह अपने ज्ञान, दर्शन और चारित्र्य में बढ़ रहा है तो उस वृद्धि का गूज कारण भी अहिंसा की उपाराना में ही रागाया हुआ है। उस कारण के अन्दर कार्य का उपवार करके ही अहिंसा को वृद्धि भी कहा है।

अहिंसा को "ठीरि" यानी स्थिति भी कहा है। अनादि और अनन्त जो मोक्ष की स्थिति है, वह अनन्त काल तक रहेगी। ऐसे मोक्ष में अजर अमर रूप से स्थायी प्रस्थापना का कारण भी उसी अहिंसा में निहित है।

आहिंरा 'पुष्टिली' भी है। पुढ़ठो का नाग पुष्टि है। जितना भी पुण्य-प्रकृति के गुण होने का प्ररांग अता है, वह आहिंरा ली बदौलत ही आता है और उराकी गात्र चाहे जीवन नें न्यूनांशों में ही क्यों न उतरी हो—वह भी उराकी भवी प्रगति को पुष्टि देने वाली होती है। यों कहा जा सकता है कि आज्ञानी रो आज्ञानी तथा क्रूर रो क्रूर प्राणी के गन में भी कुछ न कुछ अहिंरा का अनुभव तो रहता ही है। यह हो सकता है कि उराएं अहिंरा का खरूप विद्यानान न होलर उराला विकृत रखरूप ही दिखाई दे रहा हो। बीज रूप में अहिंरा की पुष्टि राह में होती है, जो यक्षिचित् राहानुभूति रूप में यदा—कदा ही रही, प्रकट अवश्य ही होती है।

इसे रागझाने के लिए एक दृष्टान्त दे रहा हूं। बिल्ली छोटा रा प्राणी है, किन्तु खभाज रो परा हिंराक होता है। उराएं अहिंरा का कोई भी अंश तो ऐसा दिखाई नहीं देता है किन्तु गोह दशा रो उरा रूप को विकृत गानकर ही देखें तो आप जान राकेंगे कि बिल्ली भी अपने कोमल से नवजाप बब्ले को बड़ी कोमलता से अपने दाँतों से पकड़ कर धर धर धूमाती है। मजाल है कि कहीं एक दाँप भी उसके नड़ जाए। प्रत्येक प्राणी में अहिंसा का बीज होता है किन्तु आवश्यकता ऐसी परिस्थिरियों की होती है कि वह बीज उन्य साधनों से पुष्टि पाता हुआ उस प्राणी को अहिंसा की श्रेष्ठ उपासना की ओर गतेशील बना सके।

आहेर। को आगे बलकर 'नन्दा' यानी आनन्दयायेनी और 'भद्रा' याने कल्याणकारिणी भी बताया गय है। आहिंरा की आराधना करने वाला अपने आप को आनन्द और कल्यण के रस रो आप्लविन न कर सके— यह कौरो राम्भ है, बालेक वह तो उरारो अपने पाश्वर्वती उन्य प्रियेयों एवं वापावरण को भी आनन्द रो भर देता है तथा उन्हें कल्याण की दिशा में मोड़ देता है।

आत्म-शुद्धि की प्रतिमूर्ति

शारत्रकारों ने अहिंरा को विशुद्धि की प्रतिगूर्ति भी कहा है।

आत्म विशुद्धि का प्रारम्भ अहिंसा की आराधना से होता है तो उसकी सर्वश्रेष्ठता भी इसी आराधना की उत्कृष्टता से प्राप्त होती है। आप अहिंसा के साबन्ध में स्थूल रूप इतना ही सोच कर नहीं रह जाएं कि किसी प्राणी को नहीं गारने जा ना ही उहिंर। है। शारन्त्रीय दृष्टि रो अहिंसा की व्याख्या अति सूक्ष्मता से की गई है, जिससे स्पष्ट होता है कि अहिंरा न रिए शारीरिक क्रियाओं को निरन्त्रित करती है, बल्कि वाणी और मन को गहराइयों में प्रवेश करके समग्र जीवन में पवित्रता का विस्तार करती है। आत्मा-विशुद्धि का मैल भी अहिंसा की आराधना नॉ रागड़ा जाना चाहिए।

आत्म शुद्धि का अहिंसा के साथ अभिन्न सम्बन्ध माना गया है। अहिंसा अगर मूल में रहती है तो आत्मशुद्धि छोती है। अगर मूल गैं नहीं है किन्तु उराका बाहरी दम गात्र दिखाया जाता है तो उराता आत्म-विशुद्धि के साबन्ध में कोई भी असर नहीं पहुँचा। कभी-कभी यह प्ररांग भी आता है कि रागतारण अहिंरा के अभाव गैं अभी आगा अहिंसा का दम दिखाकर साधु धर्म भी ग्रहण कर लेती है, उच्च क्रिया भी कर लेती है तथा पुण्य संचय से उच्च गति में भी पहुँच राकरी है। किन्तु वह आत्म-विशुद्धि की ओर अपने वरण नहीं बढ़ा सकती है क्योंकि उसमें अहिंसा की क्षमता नहीं होती है।

संसारी आत्माओं में शवी और अशवी का प्रसंग चालू है। इसमें भटी आत्मा वह कहलाती है जिसमें मोक्ष गमन की क्षमता ही और अशवी आत्मा में वह क्षमता नहीं होती। इस कारण मोक्ष गमन की क्षमता भी अहिंसा की आराधना से सक्षम होती है। विशुद्धि वही आत्मा कर पायेगी जो अपने सारे आचरण में अहिंसा और समता का अंग बनकर चल रही हो।

यह परमोर्धार्म है

इस समस्त विश्लेषण से यह सत्य हृदयंगम लिया जाना चाहिए के ईश्वरत्व प्राप्त करने के सबल साधन के रूप में अहिंसा ही है। अहिंसा की महिमा इस पिस्तृत पर्ण से स्पष्ट होती है कि जीवन में जो कुछ भी अच्छा है वह केवल अहिंसा के प्रथम साधन से ही प्राप्त

किया जा राकता है। 'अहिंसा एवं धर्म' इसी रात्रि का रूचक है। जहाँ अहिंसा है वहाँ धर्म है और धर्म ही सत्य को एवं भगवान् ली धारण करता है।

ऐसे परम धर्म रूपी अहिंसा की धर्म आप सब्दे एवं निष्ठावान् मन से आराधना करना चाहते हैं तो उसका श्रेष्ठ समय चातुर्मास लो ही बताया गया है। राखु-नुनि वातुर्गारा काल में एक ही स्थान पर ठहरते हैं तथा वे वीतरग वाणी को जो गित प्रति श्रवण कराते हैं उतारो इस दिशा में गहरी आरथा की जागरण होनी चाहिए। इस वातुर्मास काल में पर्युष। पर्व एक आध्यात्मिक दीपावली के समान है जो कि आत्म के सारे कलुष को धोकर अहिंसा एवं समता ली आराधना से आत्मस्वरूप को घमकाए।

अहिंसा से लोकप्रियता

अहिंसा अपने आराधक को लोकप्रियता भी भरपूर देती है। आपने देखा है कि रजनीति में भी अहिंसा का सफल प्रयोग करने वाले गहातगा गांधी कितने आधिक लोकप्रिय रहे, बल्कि उन्हें तो श्रद्धा रो राष्ट्रपिता कहा जाता है। ऐसी ही लोकप्रियता अहिंसा एवं समता के आवरण से विनश्यधर सेठ को भी प्राप्त थी। समता और विषमता के जीवन में जैसी विपरीतता होती है, वह सेठ विनश्यधर और राजा श्रीकेतु के चरित्रों से झलकती है।

सेनाध्यक्ष र जाज्ञा की पालना की प्रतीक्षा करता है कि सेठ अपनी धर्म-राधना रो निवृत्त हो तो वह उन्हें बन्दी बनार। यथारागय राधना रो निवृत्त होकर रोठ ने अपनी पोशाक बदली और देखा तो विवार किया कि उनकी हवेली में सेनाध्यक्ष और सेना क्यों? उन्होंने सेनाध्यक्ष से कारण पूछा तो वह कुछ भी बनाते में अलमर्थ था। उसने तो सिर्फ़ सारे परिवार को बन्दी बनाकर ले चलने का आग्रह किया।

विनश्यधर सेठ ने कहा कि बिना अपराध का शान हुए और उसके रपब्लीकरण का आवार दिए ऐसा किया जाना तो उसलोग प्रतिष्ठा के विरुद्ध होगा, अतः उन्होंने कुछ राज्य की गांग की। सेनाध्यक्ष ने प्रतीक्षा करने का आश्वासन दिया। कई मुखिया लोग तो

राजा श्रीकेहु की समा में बैठे हुए थे, सेठ ने अवशिष्ट प्रमुख लोगों को अपने रहां बुलाया तथा उन्हें सारी स्थिति से अवगत किया। विचार के बाद उन्होंने निर्णय लिया कि रह राजा का अन्याय है और इसे उसको जाताना चाहिए।

मुखियाओं ने पुरना जनता को तैयार किया कि वरित्रशील की रक्षा में उसे सर्वस्व न्यौछावर कर देना चाहिए। सामान्य जन भी उस समय में तिरोकर्शील थे व सत्य की रक्षा में सन्नद्ध रहते थे। वे विशाल प्रदर्शन लेकर राज-प्रसाद पहुंचे और अपनी पुकार र जा को सुनाने लगे कि विनयधर रोठ पर आकाशण ऐरा अन्याय क्यों किया जा रहा है? यह रोठ की लोकप्रियता ही थी कि नृ० का एक-एक नागरिक उसके पक्ष में निकल पड़ा था और उसकी रक्षा ले लिए स्वयं कैसा भी कष्ट भुगतने के लिए उड़त हो गया था।

राजा ने बाहर आकर जनता से मिलने की बजाए उसके एक प्रतेनिधि को ही अन्दर बुलाया। उसने सेठ के अपराह्न के विषय में जानकारी चाही। वारतविकाता को रामाते हुए भी टिक रहते राजा ने कहु उपर पिया—निर्णय करने वाला गौं रवयं हूं और जो गैंने किया है, तोक किया है। उनके अपराध का उचित दण्ड दिया है। मुखिया ने टिक्कोह की बात कही कि उन्हें राजा को मनमाना काम करने के लिए नहीं बनाया है। ऐसा रामाता भी एक अहिंसक के रागर्थक का ही हो राकत है।

बीरों का भूषण-अहिंसा

‘अहिंसा वीरस्य भूषणम्’ जो कहा गया है, वह एक वास्तविकता है। अहिंसा से मनुष्य वीर बनता है और वीरों की अहिंसा ही संसार के भ्रष्ट वारा वरण गौं त्याग और विराग का एक नया उत्तराध फैला राकती है। जो यह रामातो हैं कि आहेंसा ने रोक कायरसा पैदा की है, वे अहिंसा के जच्चे स्वरूप को समझते ही नहीं। अहिंसा का सच्चा आत्माधक ऐसा श्रेष्ठ वीर होता है जो दूसरों की तो रक्षा करता है किन्तु अपनी गृह्य को हथेली पर लिए घूगता है।

यदि श्री सम्पादनाथ की सच्ची गवित करनी है और सत्य लो

सर्वांशंका: प्राप्ति करना है जो अहिंसा और समाजाभव जीवन की सब्दी आराधना कीजिये और अपनी अन्तररचित को प्रकट कीजिये, तब देखिए कि क्या दुष्कर से दुष्कर कार्य भी आपके लिए असंभव रह नहीं है ? असंभव को भी संभव कर दिखाने वाले अहिंस के वीर ही होते हैं।



लाल भवन

30.8.72

सेवा और उसकी गहनता

“आज महारा संभव जिन बर हितचित् सूं गुणं गास्यां....”

शगवान् श्री संशावनश की प्रार्थना की प्रथम पंक्ति हमें सेवा का सन्देश देती है। सेवा, सेवक और सेव्य का तत्त्व समझने योग्य तो है ही, किन्तु वे वरने योग्य अधिक हैं। रोवा कैरो और कैरी की जाए। कैराको की जाए तथा कर्ने वाले की योग्यता व क्षमता कैरी हो—इस पर पहले चिन्तन किया जाना चाहिये। साधारण सेवा का विषय भी गहन होता है। इसीलिए तो कहा गया है कि “सेवा धर्मः परम गहनः योगिनागप्यगम्यः” अर्थात् रोवा करना इतना गहरा और कठिन काग है कि जो बड़े-बड़े योगियों तक के लिये अगम होता है। फिर जह प्रभु की सेवा का प्रसंग हो, तब वो उसके गहनता का कहना ही बहुत ?

प्राणु की सेवा के रूप में एक की सेवा से सबकी—यानी समस्त संसार की सेवा संगव बनती है। आत्मा अनादि काल से इस विशद् निश्च गे परिभ्रगण कर रही है। अनेक प्रकार ली रोवाओं का कार्य इरारो बन पड़ा होगा तथा उसका यथोचित फल भी उसे प्राप्त हुआ होगा, परन्तु परमात्मा की वास्तविक सेवा का प्रसंग उससे नहीं बना है। वरना वह आत्मा भी परमात्मा रूप ही धारण करके इस परेभ्रमण से मुक्ता हो र्ही होती।

प्रभु-सेवा का अन्तर्रहस्य

सेवा का सर्वोच्च स्वरूप परमात्मा की सेवा में ही प्रकट होता है। यह सेवा संसार में सबसे बड़कर सेवा है। प्रार्थना की पंक्तियों में

कहा गया है कि यदि परमात्मा की सेवा करनी है तो इस सेवा के अन्तर्हरण को हृदय में गहरे उतार कर उराएं नियोजित होना होगा। सेवा के भेद जाने वगैर अगर उनकी सेवा की नई तो सेवा का स्वरूप विकृत हो जाएगा तथा वह निष्कल जाएगी। साधारण सेवा और प्रभु-रोप के भेद को आँकना पड़ेगा।

विस्मी सामान्य मनुष्य की सेवा करनी है तो उसके अभाव दूर करके, उसके हाथ—ऐर दबा कर तथा उसकी आवश्यकताओं की पूर्ति करके रोग धर्म को राश्ट्रक बनाया जा सकता है। किन्तु प्रमुख तो रांगार से दूर निराकार निरंजन ज्योति में ज्योति रूप विराजमान हैं पिर उनकी सेवा कैसे की जाए? कैसे सांसारिक सेवा में शरीर के सिवाय अन्य रूपों प्रभु शक्तियों का भी उपयोग किय जाता है। एक पुरुष मानसिक सेवा या बौद्धिक सेवा कर सकता है। सनात्र के विस्मी भी क्षेत्र का यायुमंडल शुद्ध बनाने की दृष्टि से भी कोई अपनी सेवा देता है। सेवा की अगणित विधियां हो सकती हैं किन्तु परमात्मा की सेवा की विधि तो इन राबरों निराली ही होती है।

सेवा के विभिन्न क्षेत्र और भेन्न रूप हैं। सेवा के पीछे कहीं स्वार्थ भी होता है और अद्विलांशतः संसारी सेवा के पीछे स्वार्थ होता ही है। रवार्थ रो उपर उठकर शुद्ध गानवीथ और आत्मीय भावना रो जब कोई निःस्वार्थ भावपूर्वक सेवा कार्य में जुट्टा है राब उसकी सेवा का वह रूप है परमात्मा की सेवा के सादृश्य में आता है। ऐरी रोवा हो और रोवक जब ऐरी 'नेःरवार्थ नावना रो रात्मोव्य लो सेवा करे तब समझना चाहिये कि वह सेवा परमात्मा की सेवा ली कोटि में पहुंच रही है। परगात्मा की रोवा का राज्ञा अभिप्राय रवयं परनात्मा, उनकी किसी मूर्ति या अन्य प्रतीक की सेवा पूजा से नहीं, बल्कि परमात्मा स्वरूप ही सेवा से है, और वह भी इस रूप में कि आप उरा राहज रोवा हारा अपनी ही आत्मा में ऐरी त्याग और विद्युद्वता की स्थिति ला रहे हैं जिससे वह परगात्मा रवरूप के निकट ही नहीं पहुंचे, बल्कि रवयं भी उरा दिव्य अजारामर रवरूप में सनातन रूप से प्रतिचित्र हो जाए।

सेवा का स्वभाव मूल में है

विश्व के विशाल प्रांगण में जितने भी प्राणी हैं, किरी न किरी प्रकार ले वगौं अथवा रामूहों गौं विभाजित हैं। वे रोवा का रवरुप रागड़ा पर सेवा करते हों या नहीं, किन्तु ज्ञाता या अज्ञाता रूप से कुछ न कुछ सेवा का कार्य करते रहते हैं। आप जिन द्वेषों के अन्दर जिस रूप में कार्य कर रहे हैं, उनके अन्दर भी अगर रोवा का निखालिरा रूप आ जाए तो राबके राब राज्ये रोवक कहला राकते हैं। एक कृषक खेती करता है, और यह सही डै कि उसके छारा उत्पादित अन्न से सारे संसार का पालन होता है तो थह कम सेवा नहीं है ? किन्तु सेवा के साथ शावना का घनिष्ठ सम्बन्ध होता है। वह अपना कृषि-कार्य करते हुए यदि शावना ने निःस्वार्थ वृत्ति ले जाता है तो वह विश्व की सेवा ही है और जो निःस्वार्थ और लोक-कल्याणकारी रोवा है उरी गें परनामा की रोवा के रवरुप का दर्शन किया जा राकता है।

इसी प्रकार एक शिक्षक विद्याध्ययन करता है। कृषक जो शरीर का पालन करता है किन्तु विद्या सिखाकर शिक्षक मनुष्य के मन और मास्तिष्क को ढालता है। यह उससे भी बढ़कर सेवा है। किन्तु एक शिक्षक यदि सही स्मज्ज कर अपना कार्य करे कि महीना बीतने पर जो वेतन उरो गिलेगा, वही उसकी रामूची उपलब्धि है तो उसका निपाना आर्थिक दृष्टिकोण उरो रोवक की श्रेणी में नहीं पड़ुचाता। शुद्ध कर्त्तव्य निष्ठा एवं पर कल्याण का भाव जब प्रमुख होगा और उसमें व्यक्त या अव्यक्त रूप से अपना कोई स्वार्थ मिला हुआ नहीं होगा, तभी रोवा का रवरुप प्रकट हो राकेगा। प्रत्यक्ष रवार्थ नहीं हो किन्तु गद-ग्रतिष्ठा या लौर्ति तक का लेभ भी आगर किसी सेवाकारी में मिला हुआ। हो जो भी उससे सेवा की झल्ल नहीं पूटेगी। इसी प्रकार एक विकित्सक, अधिकारी, व्यापारी एवं अन्य किसी भी वर्ग के नागरिक की वृत्ति सही दिशा में चले तो उससे सेवा का स्वरूप झलकने लगेगा।

कोई यह चोने कि अगुक वर्ग का नागरिक उगुक कार्य करके उसारो वेतन लेता है या अन्य जाभ उठाता है तो उसका वह कार्य रोवा

कैसे कहलाएगा? सेवा भावना प्रधान होती है और जब कोई भी कार्य करते हुए प्रमुख भावना यह है कि उससे सामूहिक या सार्वजनिक कल्याण का मार्ग खुले और उससे भावनात्मक श्रेष्ठता का वातावरण निर्मित हो तो उसका वह प्रयारा रोवा के अन्तर्गत ही आयेगा। चाहे नौंप रूप से उस कार्य रो उसको निजी लाभ भी हो रहा हो किन्तु उसके प्रते उसका न तो मनत्व हो और न आसवित।

अनासक्त सेवा

अनासवित्त सेवा का प्रमुख गुण माना रखा है। आसवित्त जहाँ गोह और त्वार्थ का गूल है, वहाँ अनासवित्त निःरतार्थ वृत्ति की प्रेरिका। इस अनासवित्त रोग का गीता में प्रधान रूप से वर्णन किया गया है और आज वो जन्म धर्मी है, अतः गीता के प्राप्तेता एवं सेवा के नंत्रपाता श्रीकृष्ण के आदर्श जीवन पर भी हम विवार करेंगे। अनासवित्त जिसनी उच्छ्वाल होती जाती है उत्तरी सेवा की चमक भी बढ़ती जाती है। उस सेवा की स्थिति में एक ग्रकार का आत्म-विसर्जन का शाव प्रबल हो उठता है।

यह आत्म विसर्जन ही परमात्मा की सब्दी सेवा का पहला पाया है। व्यक्ति निजत्व को विसर्जित कर दे और अपने आपको समष्टि की सेवा में विलीन कर दे— वह उसके हृदय की श्रेष्ठता अवस्था बन जाती है। आत्म स्वरूप को सर्वत्र विस्तारित कर देने का दूराता नाम ही हग 'रोवा' कह राकरे हैं। 'आत्मवत् रावभूतेषु' की वृत्ति बनने पर निषात्प कहा रह जाता है ? यो कड़ दें कि निजत्व अपने ही संकुपित दायरे में धिरा न रहकर समस्त विश्व जी परिष्ठि तक फैल जाता है। सेवा की इस गहनता को जब सूक्ष्म दृष्टि रो रामङ्गा जाए तब रोवा, रोवा एवं रोवक के परपर प्रावन्धों की नति भी भली प्रकार हृदयोग्य की राकती है।

प्रार्थना गे कहा गया है कि "रोवन कारण पटली भूगिला रे....."। इसका अभिप्राय यह है कि जौरो कृषक बीज बोने के पटले भूमि को तैयार करता है उसे ऊर्वर एवं कृषि योग्य बनाता है, तब वह

उसमें यथासमय बोज बोरा है। उसी प्रकार एक सेवक का भी यह धर्म है कि वह सेवा की आराधना प्राण करने से पूर्व यह अन्तरालोकन करे कि सेवा योग्य उसकी आत्मिक पृष्ठशुभि सही तौर पर निर्मित हो चुकी है या नहीं।

परनात्मा की सेवा करना चाहते हो तो पहले उस सेवा के योग्य अपने आप का स्वभाव, वरित्र एवं नियम बनाओ। अयोग्य विधि से प्रगु की सेवा संभव नहीं होती है। इसी प्रार्थना में इस योग्यता के निर्धारण के रूप में तीन शब्दों का उल्लेख आया है। वे तीन शब्द हैं—अभय, उद्ग्रेष और अखेद। ये तीनों शब्द परितष्ठ की तीन अवस्थाओं पर प्रतीक हैं। परितष्ठ की ये अवस्थाएं जब अन्तःकरण को छूती हैं तो उनके साथ कर्म की जो धारा बहती है, वही सब्दी सेवा का रूप ग्रहण करती है।

सेवा की तीन अवस्थाएं

सेवा कीपृष्ठशुभि इन तीन अवस्थाओं के आधार पर निर्मित होती है। प्रगु की सेवा के लिए अग्राय बनाना आवश्यक है। प्रगु ली रोवा करना चाहे और किस भी भर बना रहे तो वहाँ उस रोवा जी भूगिका नहीं बनती है। अभय का अर्थ है—भय का निपाना अभाव—भय देना, न भय खाना और मृत्यु मुख में जाते हुए प्राणियों लो अप्यदान देना अहिंसा की आराधना ला संघा प्रगाव अभ्य वृत्ति के विकारा रूप में फलित होता है। जब अभय वृत्ति का विकारा होता है तो मंगल और कल्याण का प्ररांग आता है। रोवा प्रत्येक ला मंगल और कल्याण चाहती है, बल्कि इसी उद्देश्य के लिये वह नियोजित होती है।

अभ्य वृत्ति विघ्नहरण भी होती है। एक निर्णीक व्यक्ति विघ्न को विघ्न ही कब मानता है? वह तो विघ्नों के स्मृह को काटता हुआ मंगलगाय लक्ष्य तक पहुंच जाता है जो अभय है, वह निश्चय ही निर्लिङ्ग है। इस कारण अभय वृत्ति के राश की जाने वाली रोगा मंगलवाहिनी बनती ही है।

संसार में आप भी कई मांगलिक कार्यों को लरो हुए नास्तिक, कुँकुन आदि वदार्थों के प्रयोग करते हैं। किन्तु समझने ली बात है कि नाशवान् पदार्थों से विज्ञों का निवारण कैसे हो सकता है? इस डेतु तो अन्तर्शक्ति का ही प्रभाव फैलना चाहिये जो विज्ञों को दूर रो ही नहीं दे। अभयवृत्ति इसी आन्तरिक शक्ति की प्रतीत रूप होती है। आत्मिक शक्ति से सम्पन्न होने के कारण अभय दूरी अविनशी भी बन जाती है। ऐसी उभय वृत्ति से विज्ञ दूर से ही भाग जाते हैं और यदि उकराते भी हैं तो अविनशी के आगे नाशवान् की क्षा रित्थति कि वह टिक राके। विज्ञ पल भर गे चूर-चूर हो जाते हैं और चारों तरफ गंगलगाय व लावरण छा जाता है।

अभय वृत्ति से विश्वास और निष्ठा

अभ्य वृत्ति के विकारा के लिये आलश्यक है—आपार निश्वासा और दृढ़ निष्ठा की। आज के मानव गरितष्क छोटी—छोटी बातों से घबराता है। छोटे छोटे कार्यों में भी सर्वशक्ति बन जाता है एवं छोटी छोटी परिस्थितियों में भी आत्मविश्वास को खो देता है। वह ठोस एवं महत्त्वपूर्ण कार्यकलापों के स्वरूप को समझ ही नहीं पाता है। उसकी संकल्प शक्ति अशक्त एवं असहाय सी बनी हुई है तो उसका मान बुजादेल और कमजोर हो गया है। वह हर छोटी हरकतों को खलारा समझाकर हरने लग जाता है। उसका साहस हर छोटे मौके पर जवाब दे देता है। आज जो मानव—मन की यह स्थिति है वह एक तरह से हर समय शयाक्रान्त बनी रहती है। शयापूर्ण ऐसी परिस्थिति में वह परापेक्षी और परावलम्बी हो तो बन राकत है। ऐसी दयनीय स्थिति में रेवा—धर्म के पालन और उत्तराकी गहनता को समझने का सवाल ही नहीं उठता है।

अहिंसा के अनुपालन से अभय वृत्ति का विकास होता है और अभय वृत्ति रो रेवा बन पड़ती है जिराके फलरवरूप रागामाय जीवन का ऊ विभाव होता है। ज्ञानीजनों का कथन है कि हर साहसी बन, मर्य को कहीं भी स्थ न पता दे तथा स्वावलम्बन का ही ऊश्य प्रहण कर। स्वयं की क्षमता और आस्था होगी तो वारों ओर से सहयोग भी मिल

सकेगा। कहा है लि कायर और अशास्त्र की सहायता तो भगवान् भी नहीं करता। अगर आपनी पूँजी सुरक्षित है तो दूरारों की राहायता भी गिल राक्षी है और गूल की पूँजी नहीं है तो दूरारे भी उपेक्ष। ही करें। स्वयं के जीवन में अभय और कल्याण का प्रसंग है वो वह दूसरों को भी उस मार्ग पर अपने साथ ले जा सकता है। यह सोचे कि नैं स्वयं अभय के रूप में रहूँ और अपने जाप को, दुनिया ले अभ्यान देने के लिये भी तात्पर रखूँ।

रोता की शूगिका के रूप में अभय के राथ अद्वेष और अखेद अवश्याओं का भी उल्लेख है किन्तु आज वहले जन्माष्टगी के प्ररांग पर आनार कत रोता की व्याख्या करने वाले गीताकार श्रीकृष्ण के आदर्श जीवन पर विचार करना आवश्यक है। यह जन्माष्टगी उरा गडापुरुष की स्मृति-रिथि है, जिन्होंने गहाम रहा और गीता लो साथ साथ रवना की शौर्य और योग को साथ साथ बिठाया। साथ गारणतया उसी स्थानों पर उनका जन्म—महेत्स्व मनाया जाता है तथा उसके जीवन के प्रसंगों पर प्रकाश लाला जाता है।

हरि के गुण गाऊँ मैं

श्रीकृष्ण—जन्म साधारण जन्म नहीं था। एक महापुरुष ला जना सुखका शया पर नहीं, वगागार की कठिनाइयों के बीच हुआ था। कंस के भीषण अत्यावारों से पीछेपा देवकी व वरुदेव की यह सातवीं सन्तान थो जिसके गी कंस द्वारा मारे जाने का खतरा था। किन कल्टों के बीच वसुदेव अपने नवजात शिशु को गोकुल ले गये और उराकी जीवन रक्षा में राफल हो राके—इराकी काट—कथा रामी जानते हैं। गह उन्न अभय वृत्ति ही श्री जिराकी राहायता से वसुदेव श्रीकृष्ण को सुरक्षित कर पाये, और वूँके श्रीकृष्ण स्वयं अभयावार थे जमय वृति का प्रभाव पैला ही।

एक गक्त जन जब गाता है कि—

हरि के गुण गाऊँ मैं, हरि के गुण गाऊँ रे।

हरि लीला कहिये सुनाऊँ, हरि के गुण गाऊँ रे॥

थठां हारे के गुण गाने की बात क्यों कही गई है? गुणधारी

के ही तो गुण गाथे जाते हैं, ताकि उनके गुणों को ग्रहण करने की प्रेरणा बन सके। रहा हरि का अर्थ है जो दुःखों का हरण करते हों। जगता को सुख और शान्ति का बोध दें—वे हरि। श्रीकृष्ण का समग्र जीवन धान—दुःख हरण का ही तो जीवन है चाहे वह गौओं को चराना हो, गोवर्धन को लडाना हो या गहामारत गें गीता को रुनाना हो। गीता उनकी अमर कृति इसलिये है कि उसमें एक सम्पूर्ण दर्शन की व्याख्या है। कर्मण्यता का शंख फूंकने वाला यह ग्रंथ अनास्तकत कर्म की अपूर्व प्रणाली प्रदान करता है।

गीता का अमर स्वर-निष्काम सेवा

गीता का गूर्ज दर्शन गह भारत से प्रस्फुटित हुआ। गहामारत का गुल कारण उन्नाय था। अन्नाय के रागक तोई नमुराकृता धारण करे यह श्रीकृष्ण को स्तु नहीं था और अन्नाय का प्रतिक्षेप करने के लिये जिस रूप ने श्रीकृष्ण ने अर्जुन को ललकारा वह रूप ही गीता का रूप है। निष्काम कर्म—गीता का अगर रवर है। यह रवर अभ्य का रवर है—यह रवर आत्माकृत का रवर है। गीता की प्रेरणा एक दश सिर्फ अर्जुन को ही नहीं थी यह उन सबके लिये प्रेरणा का स्वर है जो अन्नाय के विरुद्ध अपना सिर झुका लेते हैं और खूं का घूंट पीकर उस अन्नाय के सहते रहते हैं, मगर न्याय की रक्षा में अपने सर्वस्य का बलिदान करने के लिए तैयार नहीं हो पते हैं। अन्नाय करने और राहने वाले दोनों को एक ही अपराध—कोटि में लिया गया है। इस कारण गीता न्याय—रक्षा और नीति—रक्षा जा अमोघ स्वर है।

श्रीकृष्ण को गोपाल भी कहा है, वहोंके वे गायों की सेवा करते थे। अरे, इतने बड़े महापुरुष और गायों की सेवा में अपना सम्य लगाते थे ! आज के समर्थ गुरुष के तो मनुष्यों तक की सेवा करने का न प्रयारा है, न रागय। तो श्रीकृष्ण बड़े थे या आप हड़े हैं? जारा गंभीरता से विवारने का विषय है कि व्यक्ति बड़ा -ही होता है। सच्ची सेवा उसे बड़ा बनाती है। गायों की सेवा करके भी श्रीकृष्ण

महापुरुष कहलाए और आप को वृति दुःखी दर्दी मनुष्यों की सेवा करने की ओर भी नहीं झुकती—यह कैसी गत्तुस्थिति है ?

जन्माष्टगी के दिन लोग बाहर ले आयोजन रख लेते हैं किन्तु इसका आरामी प्रयोजन जो है, वह है अन्तरायलोकन् दुग अपने अन्तर में ज्ञाके और आलोचना करें कि क्या श्रीकृष्ण के विविध गुणोंमें से एकाध भी नु। हमने विद्यात्मक रूप से अपनाएँ हैं ? महापुरुष के गुण आलगबर के निमित्त ही नहीं गाने चाहिए, उन्हें तो गाना है इस गावना से कि उन गुणों को उनके गवत भी अपने व्याघ्रारिल जीवन में उतारें।

उन गहानुरुष के जीवन का परग आदर्श गुण था रोवा और निःस्वार्थ सेवा प्रलेल का मंत्र करने के सद्विवार से सेवा। सुदामा की कृष्ण ने सेवा की तो क्या उसमें उनका कोई स्वार्थ था ? यह उनकी प्रतीकात्मक सेवा थी कि आप कितनी ही ऊँची से ऊँची स्थिति पर भी पहुँच जाओ और उस स्थिति में नीचा से नीचा भी आपका कोई आपौय आ जाए तो आप इतनी विनग्रतापूर्वक उराली रोवा करो, वाहे आप उसके लिए आना रावरण ही क्यों न लुप्त दो।

सेवक और सेव्य की गुण-गरिमा

सेवा की जितनी भिन्ना बराई जाए वह कर्म ही होती। उसकी गहनता में जितना भीतर प्रवेश किया जाए उसकी गहनता अथाह बनती जाएगी। सेवा ऐसा लिशिष्ट आत्मिक गुण है जिससे सेवक और सेव्य—दोनों की गुण-गरिमा होती है इसीलिये संकेत किया है कि अरांभव कार्यों को भी रांभव कर दिखाने की क्षमता। उत्पन्न करने के लिये आप भगवान् श्री रामवनाथ की रोवा करें।

भगवान् को सेवा क्या करनी है वस्तुतः इस रूप में स्वयं अपनी आत्मा की ही सेवा करनी है कि वह कर्म मैल से मुक्त होकर अपने स्यापाविक स्फरण को प्राप्त करके पिशुद्ध अवस्था ले प्राप्त करे ले। आत्मशक्ति का मूल अहिंसा में है— यह आप जानते हैं। अहेंसा रो अभ्य लो रिथ्याते आती है और जो अभ्य है, वहीं रात्रा रोवक नी

बन सकता है। जो सब्वा सेवक है, वही विषमर। की साथे जंजीरे
काट कर समता का न सिर्फ उपासक, बल्कि श्रेष्ठ प्रतीक भी बन जाता
है। समता मानव जीवन की उन्नायक शालगा है।

लाल भगवन

पपप

31.8.72

बनो अभ्य तो पाओ जय

"सेवन कारण पहली भूमिका रे....."

श्री सम्मवनाथ भगवान् के वरणों में प्रार्थना की पंक्तियों का उच्चारण प्रतीदिन की तारह हमने आज भी किया। परमात्मा को किसी न किसी रूप में याद कर ही लेना चाहिये क्योंकि यदि सर्वश्रेष्ठ कोई मांगलिक तत्त्व है तो वह परमात्म स्वरूप ही है। किसी भी कार्य के प्रारम्भ में गंगा लावण्य ही यह है कि अविनाशी वात्र के नाम—स्मरण रो ही [नोर्धनता] की स्थिति रावंत्र उपासेष्टा हो जाती है तथा उस कार्य की समाप्ति तक भी कोई विघ्न उत्पन्न नहीं होता।

प्रार्थना की इन पंक्तियों के उच्चारण में भी यही अर्थ निहित है। मंगलाचरण हम करें तो यह ज्ञान भी हमें होना चाहिए कि हम किस कार्य को प्रारम्भ कर रहे हैं ? क्या हम किसी सांसारिक लालरा की पूर्ति के लिए प्रभु का नाम—स्मरण करना बाड़ते हैं अथवा विषय वासनाओं की कामना का उद्देश्य लेकर परमात्मा भी सेवा के इच्छुक हैं ?

हृदय को टटोलें !

वास्तव ने मानव जीवन के सदुनयोग रूप कौनसा श्रेष्ठ कार्य करणीय है— कौनसा लक्ष्य ग्राहा है ? इस हेतु अनतहंडय लो टटोलने की आवश्यकता होगी। यह 'गौ' जिरो हग अपने आप्लो मानते हैं कौन है, कौसी स्थिति में है और किस मंजिल पर उसे पहुंचना है ? इन प्रश्नों के उत्तरों की जब खोज की जाएगी तो यह

स्पष्ट होता जाएगा। कि यह “मैं” जो बाहर दौख रहा है, वह नहीं है। यह तो असल में वहाँ समाया हुआ है जो अन्तर-अनुग्रहीति के एक-एक स्फन्दन में परिलक्षित होता है। उसे ही आत्म-तत्त्व की संज्ञा दी गई है।

इस दृष्टि से हृदय को टटोलने का अर्थ होगा कि हम अपने ही अन्दर ज्ञाने के और परखे कि यह “मैं” कहाँ दबा पड़ा है, किन लालसाओं और पतार्थों ने उसे दबा रखा है और अब किस साधन से उसे ऊपर उठाकर उसका वास्तविक स्थान उसे दिया जा सकता है? इसी चिन्तन में आए। और परमात्मा के स्वरूप का उन्नत तथा उन्हें एक स्वरूप बनाने का रहस्य प्रकट हो राकता है। इन दोनों स्वरूपों द्वा जो वर्तमान अन्दर हैं उसके समक्ष ही निजात्मा की मालिनता स्पष्ट होती है। इसी उद्देश्य से परमात्मा के विमल स्वरूप की ओर दृष्टिपात करने ला निर्देश किया जाता है, ताकि उसे देखकर और उसकी निर्गति में निजात्मा की गलिनता का गाप तौज करके यह निर्णय किया जा सके कि किसने मैल को कैसे धोने से वह अजरामर निर्मलता हमें भी प्राप्त हो सकती?

यही प्रत्येक द्रव्य आत्मा का साध्य है और इसी साध्य द्वा प्राप्त करने ले श्रेष्ठ कार्य का जब प्रारण किया जाता है तो गंगलाचरण आवश्यक है बल्कि राध्य की ओर निरन्तर गति करते हुए भी प्रभु का नागरगरण और उनका र्घुरमदर्शन अनिवार्य है। इच्छी हेतु प्रभु सेवा को सर्वात्मक साधन बताया गया है और उसके आवरण पर बल दिया गया है।

सेवा का सामान्य महत्त्व

प्रगु की सेवा के विशिष्ट महत्त्व को हृदयंगम किया जारूर। उसके पूर्व सेवा के सामान्य महत्त्व को समझ लेना चाहिये। यदि रोता के गहत्त्व को राधारण रूप रो भी रागझाने की चेष्टा नहीं ली जाए तो रह रान्भव है कि रोता के बदले कुरोता का ही आचरण हो जाए। एक वृक्ष पुरुष है, उसका स्वास्थ्य दुर्बल है, शरीर का प्रत्येक

अंगोपांग अशक्त है, उस सनय में यदि कोई उसकी सेवा करने ली इच्छा करता है, किन्तु यह नहीं समझना चाहता कि किस प्रकार ली सेवा की जानी चाहिए और अपनी मनमानी करता है तो वह उस वृद्ध पुरुष को अपनी रोवा के बावजूद भी शक्ति नहीं पहुँचा राकेगा। इसी ही रोवा का भेद जानना कठा जाता है। रेष्य कैरा है, सरो किरा प्रकार की सेवा की आवश्यकता है इसका भेद रहस्य जनकर ही जह सेवक सेवा में निमग्न होता है, तभी उसकी सेवा सफल बन राकती है।

रोष्य के योग्य और अनुरूप रोवा की धारा प्रवाहित होनी चाहिए। गृहरथाश्च गें रहने वाले इन्द्रान की रोष गृहरथ व्यवेत किन तौर तरीके से करे और साथु अवस्था में रहने वाले महानुभाव ली सेवा साथु जग किस प्रकार से करें इसमें भी अन्तर है। सन्तों ली रोवा रान्त ही कर राकते हैं। रान्तों की रोवा है—गोचरी, पानी, औषधि आदि लाकर देना तथा कदाचित् आवश्यकता गहराह हो तो हाथ—पैर दबाना अथवा अन्य प्रकार से सेवा सुश्रूषा करना। ये सेवा कार्य गृहरथ न करे ऐसा धृवधान है। सन्तों के ये कार्य अन्य सना ही कर सकते हैं। गृहरथ की स्थिति के अन्दर के ये कार्य नहीं हैं। यदि गृहरथ सन्तों की सेवा के गैद को न समझकर सन्तों के हाथ—पैर दबाने लग जाए, उनका रागान उठाए या गोचरी वगैरा लाकर दे तो वह रान्त के सेये दोष का कारण बन जाएगा। ऐसी रोष कुरोवा जा रूपक बन जाती है कुसेवा से सन्ता का जीवन ऊपर उठने के बजाए पतेत होने लग जाएगा।

सन्तों ले योग्य कोई सेवा यदि गृहरथ कर सकता है तो वह है गोचरी की दलाली यानी प्रासुख कल्पनीय वस्तु के लिए उनको ले जाकर धथारथान बतला देना। गृहरथ के लिए यह रान्त—रोवा बन राकती है। रान्तों की गर्दांदा को ख्याल गें सखते हुए और गृहरथ अपनी भी मर्यादा में रहते हुए जब सन्तों की सेवा करता है तो यह माना जाएगा कि वह सेवा के जही प्रकार को समझता है। सन्त जो कि प्रभु के गार्ग की ओर आग्रहर होने वाले हैं—उनके निर्गलताभिग्रुही

जीवन की सेवा के प्रकार को समझे बिना आदि सन्तों की सेवा भी जाती है तो वह कुसेवा के रूप में परिणत होकर सन्त एवं गृहस्थ—दोनों प्रकार के जीवन के लिए घातक बन जाती है।

प्रभु की सेवा का भेद

रान्त के बाद ही ईश्वर का क्रग आता है। ईश्वर की रोगा, उनकी सेवा के भेद और उनके स्वरूप को समझकर ही प्रभु भी सब्दी सेवा सम्पादित की जा सकती है। ईश्वर की सेवा, सना भी सेवा की तरह सामान्य नहीं होती करण कि सन्त ली तरह ईश्वर के लिए शिक्षा पानी का प्रसंग नहीं है या गोचरी की दलाली का सवाल नहीं है अथवा किरी प्रकार की निजी वरतु की आवश्यकता भी ईश्वर को नहीं होती है। इसलिए गृहस्थ किरी प्रकार शारीरिक दृष्टि से परमात्मा की सेवा नहीं कर सकता।

सेवा के भेद को इस दृष्टि से सम्यक् प्रकार से समझा जाए तो विदेत होगा कि मानसिक, बौद्धिक, वाचिक, आत्मिक आदि कई आन्तरिक क्षेत्र हैं जिनकी सहायता से प्रगु की सेवा करके अन्दर ही अन्दर सुख—रातोष का अनुमय किया किया जा सकता है। यह गठराई रो रागाहाने की बात है कि प्रभु की रोगा प्रभु के लिये नहीं बरन् अपनी ही आन्तरिक अनुभूति एवं आत्मिक उन्नति के लिए होती है। गगवान् का स्तुति गान यदि किया गया तो उससे गगवान् को जान गिलेगा—यह कतई कल्पना या बरतुरिथति नहीं है। यदि कोई ऐसी कल्पना करता है तो यह गानना चाहिये कि यह रोगा के गर्भ को ही नहीं समझता है और न ही प्रभु के स्वरूप को ही सही तौर पर हृदय में अविद्या करता है।

प्रगु का स्तुति गान अथवा स्वरूप दर्शन वह माध्यम है, जिसके द्वारा सेवक अपनी ही आत्मा पर चिपके कर्म—मैल को धोने की आकांक्षा रखता है जिरारो कि उसका शुद्धिकरण हो तथा शानैः शानैः कर्गठ राधना के बल पर वह शुद्धिलरण परगाता की परग निर्मलता की उन्नता के समकक्ष बन जाए। वो अब सोचिये कि यह

सेवा किसके लिए लाभप्रभ है ? सेव्य के लिये अथवा सेवक के लिये? निश्चय ही वह सेवक के लिए लाभप्रद है। इसी पृष्ठभूमि पर सेवा के शेद को गलीगाति समझना चाहिये।

यदि रोबा के शेद को रागजाने की दृष्टि रो बुद्धि में लिशुद्ध विवारों का प्रसार कोई करे तो उसके निमिता रूप प्रभु सेव लो मानी जा सकती है। प्रभु सेवा के परिणामों के परेणमस्वरूप ही तो सेवक की बुद्धि का परिमार्जन होता है। इस तरह प्रभु सेव सभी प्रकार से सेवक के लिए फलदायी बनती है।

प्रभु-सेवा की पृष्ठभूमि

परनात्मा का भजन कौन करता है ? वही तो जिराके गन में किरी ला कोई डर नहीं हो, क्योंकि भयाक्रान्त व्यक्ति कभी आपने गन को स्थिर नहै कर सकता; और अस्थिर विती कभी एकाग्रता से परनात्मा का भजन नहीं कर सकता है। दूसरी ओर जो जिपाना अद्वितीय परनात्मा ला शजन करता है, उसका अन्तर्मन अधिक से अधिक शय रहित भी बनता जाता है। बाहर के जितने शय हैं उनसे उसे गुक्ति गिलती जाती है। तो प्रभु की रोबा के लिए निर्भयता पहला आवश्यक गुण है। आनंदिक धराताल पर गूलपाः यदि कोई अभय वृति ग्रहण कर लेता है तो उसे एक विशिष्ट प्रकार की आनंदिक शक्ति अवश्य ही उपलब्ध होती है।

गगदान् सगवगाथ की प्रार्थना की इन पंक्तियों में इसी सत्य को स्पष्ट किया गया है—

“सेवन कारण पहली भूमिका रे
अभय, अद्वेष, अखेद।”

अभय की दश यदि गनुष्य के गन में धुर रूप में रागा जाए तो यह सत्य है कि प्रभु सेवा की पृष्ठ-भूमि का निर्माण उसके अन्तर में हो रड़ा है। धुर का अर्थ प्रथम है और उसका अर्थ स्थिरता भी होत है। यदि आपने अन्तर में सेवा के पहले शेद की दृष्टि से लेझे अभय की पक्की गनरिथति का निर्गाण कर लेता है तो उराके अपने

सम्पूर्ण उत्तरण में भी अभय की स्थिति समुत्पन्न हो जाती है। विवार और आचार में इस अग्रय की स्थिति का जब समावेश हो जाता है तो उसके लिए परमात्मा के स्वरूप दर्शन का स्मय भी निकट आ जाता है। इसके साथ ही वह अपने “गं” के रवरूप को भी पूलता और विकृततः पुरे तौर पर रागड़ा लेता है।

जीवन में अभय वृत्ति के समावेश नहीं हो जाने का सीधा—साधा अर्थ यह माना जाएग कि वह विशिष्ट प्रकार के भय से पीड़ित है तथा प्रतिक्षण उसका चित्त भय—गीतता से अस्थिर बना रहता है। अभय की विपरीत गतिस्थिति भयपूर्ण ही तो होती है। भय के संरक्षण एवं रक्षण और गरितष्ठ गें बने रहते हैं। वह प्रभु रोवा तो क्या कर सकता है, उपने साधारण सांसारिक कार्यों को भी कानून्याबी के साथ पुरे नहीं कर सकेगा।

भय है तो प्रभु-सेवा नहीं

आप स्वयं अनुशाव करिये—किसी भी महत्त्वपूर्ण कार्य के लिए आप बैठे हुए हैं और आपके कान पर कुछ ऐसे शब्द आये कि सिंच आ गया है। इन शब्दों को सुनने के साथ ही खुले शेर की गर्जना भी आपने सुन ली, तब बचाइये कि क्या उस राग्य आप शनि रो वहीं बैठे रह सकेंगे और अपने महत्त्वपूर्ण कार्य में जुटे रह सकेंगे ? ध्यान और साधना तो दूर रही, आप शायद उस स्थान पर टिके भी नहीं रह सकेंगे। चारों ओर एकदण्ड भगदड़ गच्छ जाएगी।

इसी तरह कल्पना करें कि आप प्रभु—सेवा के भेद को सनझने के लिए शान्ति रो वीराराम वाणी का श्रवण कर रहे हैं और उस राग्य रास—रार रारकरा दुआ। और आपकी ओर ही बढ़ता दुआ काला रंप दिखाई दे जाए तो क्या आप प्रभु सेवा के रहस्य को जानने में अपने मन को तल्लीन रखकर वहीं पर बैठे रह सकेंगे ? व्याल्ड्यान कितना ही गहरत्पूर्ण चल रहा हो, लेकिन उरो छोड़कर गुरक्षित स्थान ली ओर रामी आगे बढ़ने लगेंगे।

पेखेदे, राधारण री बात है—व्यारथ न श्रवण करना क्या राप

के भय को शान्त कर सकता है ? मौके पर असली सर्प न भी हो और कहीं उस आकार का रबड़ का टुकड़ा ही दिख गड़े—तब भी गय ल्याप्त हो जाएगा। आप सोचिये, इस प्रकार के गय की वृद्धि मरितष्क में होने लगे तो क्या आप व्यव्यान अवधि कर पायेंगे ? क्या दुकान ला नागा—लेखा कर राकेंगे ? और क्या रामान्य कार्य भी शान्ति रो करने की क्षमता रहेगी ? ज्ञाधारण कार्य करना हो तब भी भय वृत्ति को दूर करनी होगी, फिर प्रभु की सेवा तो वहाँ बन ही कैसे सकती है जहाँ गन और गरितष्क गें गय ल्याप्त हो रहा हो ।

इस भय वृत्ति जो पूर हठानी है जो रामाना होगा। कि परनात्मा की रोव करने के 'लेये क्या—क्या निषेध रखने होंगे ? प्रभु सेवा के लिये मन ली गोतरी तहों में जहाँ जहाँ भी गय बैठा हुआ है, उसे स्वस्थ चिन्तन एवं निर्णयता के निर्माण के घल पर वहाँ से बाहर निकला जाए। वरतु—रवरूप की दृष्टि रो जहाँ भय ला चिन्तन है, वह चिन्तन इतना खतरनाक नहीं है किन्तु भग की वृत्ति का स्वभाव में ढल जाना। और उससे बार बर प्रकाम्पित होते रहना। मन की स्थिति को झांवाड़ोल बना देता है। इससे सेवा में जुटने ली स्थिरता ही पैदा नहीं होती ।

मानव अपने अन्तःकरण को शुद्ध करने के लिये किसी भी रथान पर बैठता है, वाहे वह रथान किमाना ही भय रहता हो, फिर भी कई बार उसका गन राधना गें नहीं लगता है। इसके कारणों पर जब बारीक नजर डाली जाएगी तो पता चलेगा कि उसके सिर पर किसी न किसी प्रकार के गय का शूत सवार है। बड़े—बड़े गय का उल्लेख आता है—इहलोक भय, परलोक—भय आदि और इन रातके ल्यक्त आशना अव्यक्त रांकार जब गरितष्क गें छाये रहते हैं जो सधना में ये सारे संस्कार पग पर पर विध्न डालते रहते हैं।

साधना में बैठे बैठे भी विना बलती रहती है कि अनुक ल्यवित का कुछ देना है, उससे इज्जत कैसे बचेगी ? अमुक बाल—बच्चे का सम्बन्ध जोड़ना है, वह नहीं जुझा तो समाज मुझे क्या समझेगा ? अमुक जिमेदारी ले रखी है, उसका निर्धार कैसे होगा ? निर्धार नहीं

हुआ तो कितनी अपक्रीति होगी ? इस प्रकार को कल्पनाएं मर्सिकृष्ण में उठती रहती है। इन कल्पनाओं से इहलोक का सम्बन्ध है और इस लोक का भय जब अन्दर ली चिन्तन धाराओं में चलता रहता है तब वह राधना गें स्थिर चित्ती केरो बन राकता है और कैरो उत्तरो प्रभु की रोवा भी बन राकती है?

भय का बीज कर्म-पुंज में

ऐसी शय-दृष्टि का बीज कर्म-पुंज की जड़ों ने रहा हुआ होता है। कारण लि पैरी अधरथा गें उरो अपने डि गिक रवरूप ला पूरा भान नहीं हो पाया है। यदि वह आत्मा के रवरूप को राव्वे अध्यै में समझ लेता है और मिथ्यात्व मोह ग्रांथि का भेदन कर लेता है और यस्तुतः गोदन करके वह अपने आप में निखालिस स्थिति से छिन्त करता है, तो फिर द्वारा प्रकार के भयों की चिन्ता रादैय के लिये रागाप्त हो जाती है। तब वह जिस क्षेत्र नें जाएगा, वहां ग्रती रो कार्य करते हुए वह सकता है। जब तक भय की जड़ निष्यात्व मोह की गांह अज्ञात रूप से मर्सिकृष्ण में लगी रहती है, तब तक आत्मा के सही स्वरूप को अग्निव्यल्त होने में वह गांत बाधक बनी रहती है। इस तरह मनुष्य के सामने न सिर्फ इहलोक के भय ही होते हैं, बल्कि परलोक के भय भी उरे राताते रहते हैं।

रामी प्रकार के भय रे नियृति के लिये ज्ञानीजनों का लक्ष्यन है कि समतानय जीवन दर्शन को अपना कर जो अपने विवार और आवार को सन्तुलित तथा समरस बना लेता है, वह अपने कर्म पुंज का क्षय करते हुए परलोक-शय से भी मुक्त बनता है तथा इहलोक के भय के प्रति भी उसकी सुदृढ़ अग्न दृष्टि बन जाती है। इसलिये जीवन की परिभाषा को रागता के पदों गें छालने और रागाने-रांव रने की आवश्यकता है। इरों रागता दर्शन के प्रथम अंग रूप गेंने उाहेंरा को बताया है।

अहिंसा और अनय दृष्टि का घनिष्ठ सम्बन्ध होता है। हेसा का मूल शय में है। भयाक्रान्त पुरुष ही हिंसा पर उताल ढोता है और ज्यों-ज्यों उसका शय कम होता है, उसकी गति अहिंसा की ओर

अंतर होती है तथा इसी प्रकार ज्यों ज्यों वह अहिंसा को उन मन से अपनाने लगता है त्यों-त्यों वह अधिकाधिक निर्मय भी बनता जाता है। एक अहिंसक पाश्विक शमित से लैस एक पूरी सेना के समक्ष भी अग्रित आए—विश्वारा के राथ खड़ा रह राकता है। वह न रिक्फ रथं निर्भय बनता है बल्कि अपने आरापारा के राग्र वातावरण में भ निर्भयता भी भावना भर देता है।

अहिंसा की अभय-शक्ति

आए अभय ले और अभय दे—इस योग्य उरो अहिंरा छी बनाती है। ग्रन्थकरों ने अहिंरा को उराके गुण—परिणाम की धृष्टि से अनेकानेक नामों से सम्बोधित किया जिसका कुछ विवरण पहले दिया गया है और उसके कुछ नामों का विश्लेषण में यहां कर रहा हूँ।

अहिंसा को एक नाम दिया गया है—प्रमोद। 'हस्यात्पाद नत्वा' यानी—हर्ष को उत्पन्न करने वाली अहिंरा होती है, इस कारण वह प्रमोद है। जहां हृदय में प्रमोद का अनुभाव है, वहां भय का अस्तित्व नहीं माना जा सकता है। अहिंसा को विभूति भी कहा गया है अर्थात् सर्व वैष्णव। वैष्णव का कारण होने से वह विष्णुति है चाहे वह इहलोक सम्बन्धी दैव से परलोक सम्बन्धी अथवा मुख्यतः आत्मिक शक्ति—स्वरूप वैमव हो या गोक्ष के दिव्य रथस्तप रूप वैमव। ये रामी वैमव अहिंरा की रातत् आराधना रो प्राप्त हो राकते हैं।

भय से सम्पूर्णतः मुक्ता होकर अभय बनना है तो शस्त्रकार कहते हैं कि तू अहिंसा के आवरण में निरत हो जा। इसलिये अहिंसा का एक नाम रक्षा भी बताया गया है। एल अहिंसक राग—द्वेष रो रथं को युराक्षित रखता है तथा दूर रों की रक्षा भी करता है। रथं की रक्षा करने में समर्थ ही दूसरों की रक्षा कर सकता है। भयभीत—स्वयं की रक्षा कर सकता है, न दूसरों की। अहिंसा रक्षा है इसला श्रेष्ठ दृष्टान्त हमारे यहां राजा मेघरथ का आता है, जिन्होंने अपनी अभय आत्मानुष्टुति से गय स्वतप्त कम्बुतर को अग्रय बना दिया और उराके लिये ये रावीच्च बलिदान के लिये भी उद्धत हो गये।

आप यह कहा जानते हैं कि बाज से पीछा किया जाता हुआ कबूतर जब मेघरथ राजा की गोद में आ गिरा तो उन्होंने उसकी पीठ पर हाथ फिरा कर सबसे पहले उसे निर्भय बनाया। जब बाज ने आकर उपना भक्षण गांगा तो उसी कबूतर के बदले अपने शरीर पर गांगा काट कर खाने के लिये देने लगे। उन्होंने बाज को रामाशास्य के विश्व में सभी प्राणियों को जीने का समान अधिकार है और फिरी को भी किसी के प्राणों का हरण करने का अधिकार नहीं है, फिर भी कई किरी का जीवन लेने की हठ लरता है तो एक अहिंराक जीओ और जीने दों के शिद्धान्त की रक्षा अपना लौटन देकर भी करे।

वह तो गेधरथ की परीक्षा लेने की देखाया थी, किन्तु उपा के जो उत्कृष्ट परिणाम थे, उनके फलस्वरूप उनकी आत्मा लो तीर्धकर नाम गौत्र का बन्ध हुआ तथा वही जात्मा आगे के भट में भगवान् शान्तिनन्द के जन्म गें अवतरित हुईं। आगा के अगर रवरूप को रामजा कर जो बलिदान की अभ्य-भावना उत्पन्न होती है, वही उत्कृष्ट आत्म शक्ति के प्रतीक बनती है।

बनो अभ्य तो पाओ जय

जहाँ अहिंर। है, वहाँ अभ्य है। जहाँ अभ्य है, वहाँ रामजा जीवन है, और समता जीवन ही धर्म का प्रभावशाली अस्तित्व है। धर्म है, वहीं आत्मशक्ति का प्रमाण है और वहीं प्रशु की सच्ची सेवा है। जहाँ यह रात्र कुछ है, वहाँ जय ही जय है। इरीजियं कहा है—यतः धर्मः ततः जयः। प्रभुरोवा की पृष्ठभूमि के प्रथम प्रलर को ही जो रामजा के उपने जीवन में उतार लेता है, उसके सारे मय समाप्त हो जाते हैं। जब मय नहीं रहते तो वहाँ शक्ति का रूप ही तो प्रकट होता है और यह शक्ति बाहरी नश्वर शक्ति नहीं, शाश्वत आन्तरिक शक्ति होती है।

आन्तरिक शक्ति से सम्बन्ध ऐसा पुरुष केरा भी रांकट उच्चके रागने आए—उराएं वह अपनी रक्षा करने में रामर्थ होता है। वह रांकट वाहे इहलोक में झूठे लांछन लग कर छह्यंत्र भरा हो क्यों न

हे उसका मन भय वैनाथुकर नहीं बनता। उप कथा भाग में श्रीकेतु राजा की वासना—लालसा और सेठ विनयधार के उज्ज्वल चरित्र एवं परन निर्णय मग का वर्णन सुना रहे हैं।

श्रीकेतु राजा ने विनयधार सेठ की रुद्धर शोठानियों को आपने भोग का साधन बनाने की हुरी नीयत से जो षड्यंत्र रवा और सेठ पर चरित्रहीनता का झुठा लाधन लगाने की सामग्री दौखार कराई उसके लिए उसने प्रमुख नागरिकों की बैठक में साम, दाम, तंड, गेद से सबको अपने पक्ष में करने की चेष्टा की तथा बाद में जगता ला प्रतिनिधि नंडल जब राजा के पास पहुंचा और उसने विनयधार जौरों चरित्रशील पुरुष के प्रति अन्याय न करने का निवेदन किया। तब भी राजा ने सेठ और उनकी बारों सेतानियों को पकड़ कर मंगाने तथा उनकी हवेली पर सील लगाने के अपने आदेश का ही समर्थन किया। उसने उस पत्र के आधार पर सेठ की चरित्रहीनता को प्रत्यक्ष बताया।

दिशि की विडम्बना देखिये कि जो स्वयं चरित्रहीन है, वह एक चरित्रशील को चरित्रहीन प्राप्तित करने पर तुला हुआ है, क्योंकि उसकी अन्तर्भुक्ति परिता बनी हुई है। श्रीकेतु की इस छप्पा कार्यवाही को भयाधारित मानना चाहिये, क्योंकि उसे अपनी ही कामुक वृत्ति ला गय बुरी तरह सता रहा था। श्रीकेतु ने सज्जनता का ढोंग करते हुए उन जन—प्रतिनिधियों को रागझाया कि वह तो इस बढ़ते हुए पाप पर अंकुश लगाना चाहता है और परस्त्रीगामी व लम्हट सेठ को दंड देना चाहता है। उसमें उन्हें बाधा नहीं छालनी वाहिये। सारी जनता को भी यहीं बात समझाने का उसने उससे आग्रह किया। उसने धमकी भी दी कि इसके बावजूद भी जो विनयधार सेठ का पक्ष लेगा, उसे भी कठोरतापूर्वक दण्डित किया जाएगा। इस धमकी से जनसमूह में शय फैल गया। और लोग पीछे हटने लगे।

विनयधार अहिंसक थे, अभ्यव थे

श्रीकेतु राजा के इस कठोर रुख से सारे नगर में हो हल्ला मच गया और जो विनयधार सेठ के प्रसंशक थे, उन्होंने भी सेठ से जाकर कहा कि राजा सत्ता मद में मदमात छोकर अन्याय पर उतारू

है किन्तु उराके निरुद्ध ते रतगं कुछ नहीं कर राकते। यिनगधरने यह सुनालर सोन्नग शुरू किया कि वे इस झूते लाल्हग और प्रलक्षण अन्याय का प्रतिकार कैसे करें? भ्य का मामूली अंश भी उनके विवर में नहीं था— निर्भय गन रो वे इस विषय पर रोवने लगे। इसी बीच राजा ने दूरारी शुगट टोली रोट और रोठानियों को जल्दी पकड़ लाने तथा उनकी हवेली पर कब्जा करने के लिये गेज दी।

पूर री शुनट टेली बड़े जोश रो रोठ की हवेली पर पहुंची रथ। सेठ व सेठानियों को हथक़ड़ियों व बेड़ियों में जकड़कर ले जाने लगी। अब सेठजी ने निर्भयपाखूर्वक कहा कि ये बेड़ियाँ तो भाग ने वालों के लिये हैं, हग राब तो राहर्ष राथ चल रहे हैं अतः इन्हें लगाने की कड़ई आवश्यकता नहीं है। उन्होंने इस बात की चेतावनी भी दे दी कि लेई सुम्ट किसी प्रकार से उनकी पत्नियों से स्पर्श न करें। उनके निर्भय और गधुर रवर का वांछित प्रभाव शुभटों पर हुआ और उन्होंने रोठजी का कहना नान लिया।

रोठ यिनधर ने तब अपनी पत्नियों को कहा कि ऐसे प्ररांग पर भी जीवन में हतोत्साह नहीं आना चाहिये, पुरुषाथे नहीं छोड़ना चाहिये तथा सब कुछ न्यौछावर करके भी शील को बचाना चाहिये। यह सुनकर वारों सेठानियों ने अपनी दृढ़ता प्रकट की और उनसे निश्चिन्त रहने को कहा। शुभट टोलियाँ इन पांचों स्त्री-पुरुषों ली आय वृति लो देखकर मंत्रमुख सी होने लगी और अपनी ओर से उन्होंने कोई आतंकपूर्ण कार्ययादी नहीं की।

शुगट आसपास चल रहे हैं और पांचों सेठ-सेठानियां निर्णयता से राजभवन की ओर आरे बढ़ रहे हैं। नगर में वारों और विन्ता और जेजार॥ व्याप्त है कि अब आगे राजा इनके राथ कैरा॥ व्यवहार करेगा? दरबार गें पहुंच कर पांचों को राजा के रागने खड़ा किया जाता है। श्रीकंतु सेठ पर दृस्ति न छलकर पहले चारों सेठनियों पर पहली नजर ढालता है और पार। है कि वे वास्तव में अलीव सुन्दर हैं। यह प्रश्न छोता है कि अब ये उसके नियंत्रण में आ गई हैं।

अभय अमर हो जाता है !

कथा—मान आगे बलेन॥ किन्तु इसाके रान्दर्भ में इस राय को भी गान लीजिये कि जो पूर्णतः अभय हो जाएगा, उसका नाम भी अगर हो जाएगा। कितनी ही छलनाएं, दुर्गविनाएं एवं हिंसक प्रवृत्तियाँ भी उसका कुछ भी बिगड़ नहीं सकती हैं। ऐसा अभय अहिंसक जब प्रशु की राज्ञी रोबा करता है तो धीरे—धीरे वह भी परनात्मरखण्ड के रामकक्ष पहुँच कर अगर हो जाता है। यही धर्म को भी दीपाने वाला होता है।



लाल भवन

1.9.72

परिणामों का परिणमन

“ भय चंचलता हो जे परिणाम नीरे.....”

मंगलावरण के प्रसांग से भगवान् श्री संभवनाथ की प्रार्थना उच्चरिता की जा रही है, अतः इन पांकियों में जो अर्थ का स्वरूप रहा हुआ है, उस स्वरूप को गलीशांति समझना तथा तदनन्तर उस अर्थ को अपने ज्ञावहारिक जीवन के साथ लागू करके चलना ही गुरुर्थः इस प्रार्थना के उच्चारण का प्रयोजन है। प्रभु की रोवा का भेद राम ज्ञाते हुए कवि ने प्रथम भूमिका के प्रथम वरण के विषय में आपयुक्ति का उल्लेख किया जिसमें यथ की स्थिति के निवारण का संकेत दिया गया है। इस दृष्टि से यह समझना आवश्यक है कि यह भय क्यों भरता है और फैलता है तथा चित्त को चंचल बनाये रखता है ?

गनुष्ठ जहाँ बड़े—बड़े भयों रो परियेता डोता है, वह वास्तव में उस मध्य से परियेता नहीं है जो उसी की आन्तरिक शक्ति को धबाकर छिपा हुआ रहता है। ज्ञानजन उस यथ का संकेत देते हैं कि यथ परिणामों की चंचलता से जन्म लेता है। परिणाम का तात्पर्य इस प्रथना में आत्मा के रत्नमाव—अनुभाव रो जो भाव या विचार प्रसफुटित होते हैं, उन्हें ही परिणाम की संज्ञा दी गई है।

इन्हीं परिणामों विवरों में किसी भी प्रकार की भय की स्थिति तथा उनमें चंचलता कैसे प्रवेश करती है, उसके अनुसंधान करने ला रास्ता भी इन प्रार्थना की पंकियों में खुलता है। परिणाम तो आत्मा का

बनता रहता है। वैसे 'परिणाम' शब्द के लई अर्थ किये जाते हैं। परिणाम का अर्थ गवना होता है तो उसका अर्थ फल से भी लिया जाता है। इसके अलावा वस्तु के अन्दर परिणमशीलता का जो गाव है—एक रूप से दूसरे रूप में परिणत होने की जो प्रक्रिया है, उसे भी परिणाम के सम्बोधन से डी पुकारा जाता है। यह परिणामशीलता जो स्वभाव तो जड़ रात्वों में भी पाया जाता है, लैकिन यहाँ जड़ रात्वों का विश्लेषण नहीं कर रहे हैं। यहाँ तो परिणाम ले स्वरूप के प्रकटीकरण का राकेत है।

परिणामों की धारा

जितनी भी आत्माएं इस विश्व के अन्दर रंगनंच पर विद्यमान हैं, उन सभी आत्माओं में परिणामों की धारा बहती रहती है। किसी में तीव्र गति से परिणामों का बंग बढ़ता है तो किरी गति से परिणामों की धारा चलती है। यह वेग विविध रूपों में परिणत होता रहता है। इस धारा में नयुनाधिकरण भी आती रहती है जो कर्मों के कायोपशम के साथ सम्बद्धता रहती है।

संसार के प्रत्येक प्राणी में परिणामों का अस्तित्व पाया जाता है। यहाँ तक कि एकेन्द्रिय जीवों में भी परिणामों का परिणामन होता रहता है। यह दूरारी बात है कि यह परिणामों को गनुष्ठ के रागान बाहर प्रकट नहीं कर सकता है। गनुष्ठ के गन गें परिणामों के परिणामन का जो उग्र रूप देखने को मिलता है, वह पशु योनि में नहीं दीखता। जब कभी परिणामों के स्वर बाहर अभिव्यक्त होते हैं तो आत्मा के अन्दर की गवनाओं की उर्मियाँ भी तरंगित होने लगती हैं। ये ही उर्मियाँ जैसे कहती हैं कि मेरे परिणाम ऐसे नहीं थे—मेरे शात ऐसे नहीं थे। उन विवारों को ही परिणाम की राङ्ग देकर बलपे हैं और वे ही। विवार गनुष्ठ को विभिन्नता का स्वर व्यक्त करते हैं।

धारा में अन्य निमित्तों का संयोग

परिणामों की उस धारा के साथ दूसरे निमित्तों का भी संयोग होता है। तब उस धारा का मोड़ दो तरह से होता है—परिणामस्वरूप

और अपरिणामस्वरूप। दूसरों के निनेता से जहां परिणामों में तब्दीली आती है—परिणाम तब बिगड़ते हैं अथवा सुधारते हैं तो वह विषाव—धर्म कहलाता है और जहां दूसरों का कोई निमित्त नहीं मिलता एवं आत्मा के राथ रांगन कर्मों का जब उपशमा, क्षयोपशमा दा क्षय होता है या तीनों उच्चरथाओं में रो कोई भी ६० अवरथा बनती है, उरा रागय भी आत्मा के परिणामों की अभिव्यक्ति होती है।

जब मोह कर्म का तथा मोह कर्म में भी दर्शन मोहकर्म वा क्षयोपशमा होता है तो उरा बक्त आरगा का परिणाम क्षयोपशमा के रूप में प्रकट होता है और गिथ्यात वर्ती रातों प्रकृतियों का उपशमा हो जाता है। उसके बाद उपशमा अत्मा के परिणाम बनने पर उन सातों प्रकृतियों का सर्वथा क्षय भी हो जाता है। तब क्षायिक भाव के परिणाम व्यक्ति होते हैं। उन परिणामों की तारतम्यता अधिकांश मात्रा में चलती रहती है। जब ये तीन उच्चरथाएं नहीं आती हैं तो परिणामों में गलिन अवरथा रहती है। उरी गलिन उच्चरथा के कारण आत्मा और परनात्मा के सही स्वरूपों का सम्यक् ज्ञान नहीं हो पाता है। इस अवरथा में हिताहित का विवेक नहीं होता है तो इसका भी भान पैदा नहीं होता कि मुझे क्या करना चाहिए, मैं क्या करने के लिये आया हूँ या इस गानव—जीवन का श्रेष्ठ प्रखोजन क्या है ?

आशुद्ध निगितों का रांयोग जब परिणामों की धारा के राथ बनता है तो उसारों परिणामों में भी उशुद्धता उत्पन्न हो जाती है। तब ऐसे व्यक्ति को कर्त्तव्य कर्त्तव्य का भान या विवेक नहीं होता है। अशुद्ध निगित के सम्पर्क से मनुष्य के परिणाम विकृत होते हैं और शुद्ध निगित के प्ररांग रो छन परिणामों में सुधार भी आता है। पर के निगित रो परिणामों में जो विकृति आई अथवा परिणामों में जो सुधारक परिवर्तन हुआ, वह विभावक परिणाम भी संज्ञा पाता है।

विभाव के इस दृष्टि से वो नेत्र किये ज सकते हैं एक शुद्ध विषाव और दूसरा अशुद्ध विषाव। शुद्ध विषाव के परिणाम उत्कृष्ट आत्माओं के नैमित्त से बनते हैं। अगर कोई त्यागी पुरुष के राम्पर्क में आता है तो उसारों आत्मा में शुद्ध परिणामों की भावना बनती

है। पर का निमित्त तो मिला, किन्तु शुद्ध मिला, जिससे उसके परिणामों में शुद्धता आई और वह अपने जीवन—विकास की तरफ आगे बढ़ने लगा तो जो विगाव की परिणाम विद्वान् करते हैं उसमें परिवर्तन अता है। इस विभाव परिणाम जल्दी कहलाता है किन्तु वह शुद्ध है और उस शुद्धता से गुणवत्ता का उद्धार राम्भव बनता है—यहाँ तक कि वह गोक्ष की भी प्रणीति कर लेता है।

शुद्ध निमित्त से मोक्ष तक की प्राप्ति

परिणामों की धारा में 'पर' का निमित्त मिले— वह विगाव कहलाता है किन्तु यह विगाव भी जब शुद्ध निमित्तों के संयोग से उत्पन्न होता है तो वह विभाव होकर भी आज्ञा—रथमाय को प्रबुद्ध बनाता है। यही प्रबोध जब प्रबल बन जाता है तो उस रांयोग से आज्ञा अपनी उच्चतम उन्नति तक सिद्ध करने में सफल बन जाती है।

अर्जुन माली की कथा इसका स्पष्ट उदाहरण है। अर्जुन माली के मन में अशुद्ध परिणाम चल रहा था। वह जाति से माली था और उस जाति में शिक्षा के प्रसार का प्रसंग नहीं था। आजीविला की दृष्टि से वह एक राधारण परिणाम को लेकर चल रहा था। लेकिन उरी अर्जुन गाली के राध उराकी परनी का राहयोग और परनी के निमित्त से छः दुष्ट व्यक्तियों का निमित्त मिला। अर्जुनमाली के सामने जब तक छः दुराचारी व्यक्तियों के मलिन परिणामों का तांडव नृत्य उपरिथित हुआ तो उराकं राधारण परिणाम इशा निगित रो अत्यन्त अशुद्ध परिणामों में परिणत हो गये। परिणामतः जो अर्जुन गाली भद्रिक स्वन व का पुरुष था, वह क्रूर स्वामान का बन गया और इताना क्रूर के प्रतिशोधस्वरूप वह प्रतिदिन छः पुरुषों व एक महिला की धारा करने लगा। उसले परिणामों की ऐसी अशुद्धता दूसरों के निमित्त से बनी। उससे जो परिवर्तन हुआ, उसका विशाविक शाब्द अशुद्ध था।

किन्तु इरी निगित का दूरारा पक्ष भी उरी अर्जुन गाली के जीवन में उत्पन्न होता है। प्रतिदिन हत्याओं में निरत अर्जुन गाली को शुद्ध परिणामों वाले सेव सुर्दर्शन का जब निमित्त मिलता है तो वह

उसका अशुद्ध परिवर्तन बब पूर्ण शुद्धता में परिणाम हो जाता है। शुद्ध परिणामों की धारा में बहने वाला सेत सुदर्शन प्रभु के दर्शनों के लिये जा रहा था, तब मार्ग में अर्जुन माली का निमित्त मिल गया। फलरवरूप वह क्रूर व्यक्ति पूर्णरूप रो अहिंसाक बन गया। फिर अर्जुन गाली भी शुद्ध परिणामों की धारा ले राथ गहावीर प्रभु के चरणों में पहुँचा और उन दिव्य महापुरुष का निमित्त पाकर उन्नरि की ऊँची सोपानों पर वह चढ़ता ही चला गया। उसकी उन्नति इतनी अद्वितीय रही कि वह उरी चर के अन्दर रखयों की जीवन-राधाना लो आगे बढ़ाता हुआ गहावीर प्रभु रो भी पहले गोक्षगामी बन गया।

यह दूरारों के शुद्ध निमित्त रो आता के परिणाम का उन्नति प्रदायक दृश्य बन कि उसे मोक्ष ताक की प्राप्ति हो गई। एक ही व्यक्ति के साथ इस प्रकार दो तरह के दो निमित्त मिले और दोनों निमित्तों रो दोनों प्रकार की अशुद्ध एवं शुद्ध धाराओं का परिणाम हुआ। यह परिणाम विभव और रवभाव के परिणाम की रिथति के साथ जब विशेष व्याख्या का प्रसंग बनता है तो वहाँ अलग शुद्ध और प्रबुद्ध की स्थिति भी बनती है।

परिणामों के इस स्वरूप को अपने अन्दर देखें !

गड़राई से देखा जाए तो स्पष्ट होगा कि परिणामों का यह स्वरूप प्रत्येक प्राणी के पास है और इस तरह आपके पास भी है। आप अपने परिणामों को बावरिथत रूप में रांचालित करें और उन्हें भावशुद्धि की तरफ आगे बढ़ाएं। रखयों के परिणामों में अच्छे निमित्त से जो परिवर्तन आता है, उसे लाने के लिये सदैव जागृत रहें। इसके साथ ही हुरे निमित्तों से इस प्रकार सावधानीपूर्वक बचते रहें कि अशुद्ध परिणामों का संयोग पैदा न हो।

परिणामों के इस नैमेत्तिक संयोग को आप पहले समझें और फिर विवेकपूर्वक उरा रखना को—हन्दू को अपने भीतर देखें, गरखें और गहरूरा करें। इस दृष्टि रो रातकंता की रिथति आपके अन्दर उत्पन्न होगी। सोचिये कि आप एक धर्मस्थान के भीतर पहुँचे तब

धर्मस्थान के अनुरूप आपके परिणामों में परिवर्तन आया। धर्मस्थान के लिये अपने स्थान से आप चलने को हुए होंगे तभी उक्त परिवर्तन ला आगास आपको होने लगा होगा। किन्तु कल्पना करें कि हवेली से बाहर निकलते ही आपको उपाल (झाक) गिलने का रांचे ग बैठ गया और उसमें व्यापार राष्ट्रन्दी कोई आकर्षिक रागाचार थे, तब उस सम्य आपके परिणाम की धारा फिर बदली और वह व्यापार के रूप में परिणत हुई। उसको गौण करके जाप फिर भी धर्मस्थान में पहुंच गये और बहाँ रान्तों का निगित पाकर उन परिणामों गें फिर अन्तर आय। यहाँ भी परिणाम वितरण वाणी तथा कथा—भाग रुनने के राथ उपार बढ़ाव पर बलतो रहते हैं। इस तरह परिणामों की प्रक्रिया प्रत्येक प्राणी के नन में बलती और बदलती रहती है।

परिणामों के इस स्वरूप को जो समझ लेता है, वह परिणामों की चंचलता को रोकने का प्रयास करता है। परिणाम जितने चंचल होंगे—कार्य उतना ही शिथिल होगा क्योंकि कर्म करने की एक दिशा में मुँड़ते मुँड़ते वे परिणाम फिर बदलकर अभी दूसरी दिशा का संकेत देने लग जाएंगे। इस कारण बंबलता के स्थान पर स्थिरता। लाने का निर्देश दिया गया है। ज्यों—ज्यों चित्त में स्थिरता आती है, परिणामों में भी शान्ति और गहराई बढ़ती है। इन परिणामों पर इस पक्षति से जब पूरा आत्मा—नियन्त्रण हो जाता है तो इन्हें शुद्धता की ओर आरानी रो केन्द्रीभूत किया जा सकता है।

बंबलता में विविध भय समाये हुए होते हैं और उन्हीं भयों का कुप्रभाव होता है कि उस बंबलता को दूस करके स्थिरता को लाना कठिन पड़ता है। गय का शाव ज्यों—ज्यों कहता जाएगा, ल्यों—ल्यों समझिये कि चंचलता भी मिटती जाएगी। चंचलता के मिटने का अर्थ होगा कि बड़ा स्थिरता का रागायेश होत जा सहा है।

रामगनाथ प्रभु की प्रार्थना नैं भय का रत्नरूप बतलाते हुए कही ने कहा है

भय चंचलता जे हो परिणामनी रे
द्वेष अरोचक माव।

**खेद प्रवृत्ति हो करता थाकिरे रे
दोष सबोध लखाव ॥**

परिणामों की चंचलता के इस ल्यापार रो जो आत्मा आपने आप को हटा लेती है, वह रामी प्रकार के भगों रो गुक्त भी हो जाती है।

परिणामों का परिणामन और भय

पूरारे भय तो राहज्ञ गें रागझा गें आ राकरो हैं, लोकेन परिपाम की बंबलता का भय इन्सान की समझ में जल्दी नहीं आता। परिपाम शुद्ध ल्य में रहें, उसी तारतायता में रहें— तब उनकी चंचलता मिट सकती है। केन्त्रु जब तक परिणामों में चंचलता और अस्थिरता बनी रहती है, वह आत्मा ले लिये भयंकर भय उपरिथत लरने जाली होती है। परिणामों की चंचलता रो ही गनुष्य के उत्तरकी इष्ट रिष्टि प्राप्त नहीं होती है। आत्मिक सिद्धि की बात तो दूर रही बंबलता ली रिथरि में सांसारिक क्षेत्र के सफलता मिलना भी दूभर होता है। यिरा की रिथरता न हो तो ल्यापार—धन्धे में कामयाबी नहीं मिलती है और शरीर का स्वास्थ्य तक ठीक नहीं रह सकता है, क्योंकि प्रति क्षण जब भय की दुर्बलता हो रहे हो एकाग्रता एवं 'नेर्मीकरण' के अभाव गें। केवल भी कार्य की सफलता के आशा करना दुराशा मात्र ही होगी।

भयभीत रिथरि में परिणामों का परिणामन इतनी शीघ्रता से होता रहता है कि उनसे किसी भी एक निश्चय को समझ पाना कठिन होता है, बल्कि यों कहें कि एक निश्चय उस चंचलता में बन ही नहीं राकता है। इन्हीं परिणामों की चंचलता रो इन्सान गहरवपूर्ण जीवन को अपने हाथ से व्यर्थ में जाने देता है। इस बंबलता ली भय को धृषि इन्सान की आत्मा ठीक तरह से समझने का प्रयास करे तो वह अपने परिणाम में स्थिरता लाकर सुदृढ़ जीवन का निर्माण कर सकत है। हर क्षेत्र में परिणामों की स्थिरता से ही वह कामयाबी हासिल कर सकता है।

एक तरह सो रुक्षा परिणामों का परिणाम ही यह गानव देह है। अगर सुक्षम परिणाम शुभ नहीं हनतो तो यह शुभ मानव देह कहा

से प्राप्त होती ? जिस आत्मा के अशुभ परिणाम रहते हैं, उसके अशुभ कर्म बनते हैं, जिसके फलस्वरूप अशुण शरीर की प्रस्ति होती है। शुण कर्म उपार्जन से ही मानव देह, उत्तम कूल, पांचों इन्द्रियों की व्यवस्थित रूपरेखा आदि श्रेष्ठ राधनों की उपलब्धि गिलती है। अपने परिणामों की स्थिरता का यह परिणाम जो प्रत्यक्ष में दिख ई देता है, उन्हीं परिणामों को यदि आप वर्तमान में स्थिर एवं व्यवस्थित बना लालें तो शुभ निमित्त जन्य स्थिरता के प्रभाव से परिणामों में संस्कारों का जो गय रागाया हुआ है, वह निलल जाएगा। इस गय की रागाप्ति के साथ ही प्रभु रांभवनाथ की रोगा भी रारल बन जाएगी।

अहिंसा के परिणाम की विशालता

शास्त्रों का विवरण है कि ऐसा अग्रय प्रगु सेवक सिद्धस्वरूप रिद्धों ले आवारा को अपने जीवन में प्राप्त करता है। उस रिद्धावारा को अहिंसा के परिणाम से लिया है। अहिंसा के परिणाम लो सिद्धावास भी कहा है। उसी अहिंसा के परिणाम को आश्रव निवृति भी बताया गया है। आश्रव का अर्थ होता है पाप के आने के द्वारा जो मिथ्यात्म, आत्मत्त्व, प्रमाद, कषाय, अशुण योग अदि के रूप में होते हैं। आश्रव अशुण परिणामों का प्रकट रूप होता है तो शुण परिणामों में जो अहिंसा होती है उसका परिणाम अश्रव के इन द्वारों को रोकने के रूप में पिखाई देता है। अहिंसा रवरूप शुभ परिणाम जब आते हैं तो आश्रव के इन द्वारों पर ब्रतिबन्ध लग जाते हैं। अशुद्ध वृत्तियां रुक जाती हैं तथा अहिंसा के परिणामों के शुद्धता की परालाष्टा तक पहुंचने पर रथारज्यात चारित्र्य की रागुज्ज्वलता प्रकट हो जाती है। वह केवल ज्ञान की ग्राप्ति तक भी पहुंच राकती है।

यह गम्भीरता से लिये जाने योग्य लक्ष्य है कि जिस अहिंसा के परिणाम को गनुष्य राधारणाया छोटा और महत्वहीन रागड़ा है, उसी परिणाम की तारतग्यता यदि उच्चस्थ कोटि तक पहुंच जाए तो उच्चतम केवल ज्ञान की ग्राप्ति भी संगव बन जाती है। इसलिए अहिंसा को रिद्धावारा और केवल ज्ञान का रथान कहा है। ये ही परिणाम जब और आगे परिणाम करते हैं तो शिव रूप बन

जाते हैं। शिव का अर्थ है कल्यणकारी और मंगलमय तथा अहिंसा का चरम रूप है शिव। ऐसी होती है—इस अहिंसा के परिणाम ली विशालता।

गनुष्ठ रोचता है कि अहिंसा का पालन तो शरीर में रहते हुए ही किया जा सकता है, किन्तु अहिंसा का परिणाम जितना आवश्य में चराकर निखरता जाता है सपन ही वह आत्मा के साथ धनेष्ठ बनता जाता है। उसका अंकुरण अनुकरण के रूप में फूटता है। तब यही अनुकरण आत्मा के सायकल्त्व लक्षण की परिचायिका के रूप में गढ़सूरा होती है। वह अहिंसा का परिणाम इरा तरह आत्मा में निरन्तर अभिवृद्ध होता हुआ। रिद्ध अवस्था तक पूर्ण रूप में प्रकट होता है। तब यह परिणाम अपनी पूर्णता को प्राप्त होता है। सिद्ध प्रभु में जो पूर्ण आत्मशुद्धता रूप अहिंसा का परिणाम रहा हुआ है, उसे ही शास्त्रकारों ने 'शिवग' कहा है। लोगररा के पाठ रो जो 'शिव—गयत्' आता है वह रिद्धों का ही तो विशेषण है। अतः अहिंसा का परिणाम इरा शरीर मुकिए के बाद भी वरम स्वरूप में सिद्धों के साथ रहता है।

शिव और अशिव की स्थिति

यह शिव रूप अहिंसा का परिणाम भी प्राप्त होगा। जबकि मनुष्य के परिणामों की चंचलता समाप्त होगी और जब तक यह चंचलता विद्यमान है, वह शिव की ओर गमन नहीं कर सकेगा। अशिव की ओर ही जाएगा। अशिव का अर्थ है—अकल्याण और इस अकल्याण रो अन्न बचना है तो परिणामों को स्थिर रूपाना होगा। जित्त कार्य को हाथ में लें, उसके साथ मन, वयन, काया का योग जुड़े और दृढ़ संकल्प पैदा हो—ऐसी स्थिति स्थिरता के साथ ही बनती है।

तक्षशिला गुरुकुल का एक प्ररांग गुड़ी याद आ रहा है कि उस गुरुकुल में अनेक विद्यार्थियों के साथ मगध के एक गांव का छात्र धर्मेकुमार भी विद्यालय बनायन करता था। छोटी अवस्था में भी उसके मन की 'स्थिरता आश्वर्यजनक' थी। उस समय मुख्याध्यापक का एक तरुण पुत्र काल कर गया तब सभी विद्यार्थी संघेदना प्रलट करने हेतु

उराके निवार रथन पर पहुंचे। धर्मलुगार भी पहुंचा किन्तु उराके चेहरे पर सबकी राह रलानि का अनुभाव न होकर हर्ष का अनुभाव ही था। उसे देखकर अन्य विद्यार्थियों ने उसके अनुभाव पर आश्चर्य लाकत किया तो वह कहने लगा। के तरुण ने कभी गत्ता नहीं और जो गत गया तो वह तरुण नहीं हो सकता।

विद्यार्थियों को इस उत्तर रो अधिक रोष आया और बाप मुख्याध्यापक तक पहुंची। वे गी स्थिरचित्ती थे, उन्होंने धर्मकुमार ले बुलाकर उराके उत्तर के बारे में पूछा तो उराने फिर कहा कि गैने अपने परिवार में कभी विस्ती तरुण को मरते नहीं देखा। उसकी दृढ़ता को देखकर मुख्याध्यापक के लसकी बात की जांच करने ली इच्छा हुई। पुत्र—शोक रो निवृत होकर धूगाने के बहाने वे धर्मलुगार के गांय पहुंचे तथा धर्मकुमार ले पिता से अचंचल गाव से बोले कि धर्मकुगार नहीं रहा। यह रुक्कर भी उराके पिता ने दृढ़ता रो कहा कि यह झूठ है, ऐसा नहीं हो सकता। मेरा पुत्र तरुण है। वह कभी मर नहीं सकता। इस दृढ़ता को देखकर उन्होंने उस दृढ़ता का कारण पूछा तो धर्मकुमार के पिता ने कह कि ये संस्कार उसे उसके पूर्णजों से मिले हैं। शुद्ध व शुभ परिणामों की वजह से ही उनके वंश में कभी तरुण लो गृह्य नहीं हुई है। गुख्याध्यापक ने फिर राज बात बता दी।

तो यह रूपक बताता है कि जहां परिणाम की अचंचलता है, वहां परिस्थितियां भी शुभ और अशुभ बन जाती हैं। यही 'शेव' स्थिति कहल ली है। इस कारण जीवन का रारा उत्तरदायित्व-उराकी गुल शक्ति परिणामों के सहारे ही जड़ी रहती है। अभयदृति जित्नी अद्याक विकसित होती जाएगी, उतनी ही ऋशिट से शिव की ओर आला की गति भी तीव्र बनती जाएगी।

परिणामों की स्थिरता में विकास की दिशा

प्रार्थना की उत्तर्युक्त पंक्तियों में जो गव्यपूर्ण परिणामों पर प्रहार है—उनकी वंचलता पर प्रहार है। उसे हृदयंगम करके तावरण में उत्तराने की आवश्यकता है। भय को रार्था हटाकर जो अटिरा के परिणाम की लंचाई ली जाता है, वह शेव बन जाता है। वैसी

आत्मा भयंकर परिणामों में भी प्रसन्न मुद्रा के साथ अपने जीवन को शुभ परिणामों की सुदृढ़ता से चलाती है।

कगलरोन चरित्र में विनयधर रोठ का प्ररांग चल रहा है, जो परिणामों की स्थिरता को राथने वाला ऐरा ही ग्रुष है जिसके जीवन में अहिंसा का परिणाम परिपक्व स्थिति में समुन्नत हो रहा था। दरबार में उपस्थित करने के बाद जब श्रीकेशुर राजा वारों सेठानियों की ओर देख रहा है, तब उसके परिणाम अशुद्ध और मलिन थे मलिन परिणाम की चंचलता के सथ ही वह उन्हें देखता है। चंचल गावों के इकोरों में धूपाते हुए श्रीकेशुर ने बाहर रोगमीर बनकर आदेश दिया कि अपराध तो रोठ ने किया है। इन रोठानियों वा कोई उपराध नहीं है अतः इन्हें अन्तःपुर में सुख्ता के साथ रखा जाए।

इस आदेश से सेठानियां समझ जाती हैं कि राजा वा आन्तरिक स्वरूप शुभ गावों के साथ जुळा हुआ नहीं है और उससे हमारे परिणामों की स्थिरता पर आधात लगता है। किन्तु उन्होंने निश्चय किया कि वे स्थिर परिणाम के राथ ही आगे बढ़ेंगी त कि उसके द्वारा वे अपने जीवन को सुरक्षित रख सकें। तब उन्होंने सलज्ज नेत्रों से अपने पति की ओर देखा और जैसे पूछना चाहा कि इस संकट की घड़ी में उन्हें क्या उपाय करना चाहिए? विनयधर नी धीरजावन् और ब्रुद्धिशाली था उसने शुभ परिणाम के राथ भीतर ही भीतर चिन्तन किया। रोठ ने विचार किया लि राजा रात्ता एवं रौन्य बल के साथ अन्धा हे रहा है अपा किसी प्रकार के उत्तेजना परिणामों को अधिक भयंकर बना देगी। उन्हें विश्वास था कि उनकी चारों पलियां कैसी भी परिस्थिति में अपने स्थिर परिणाम को छोड़ नहीं नहीं हैं। अतः स्थिति को धीरे—धीरे साहालनी चाहिए और उन्होंने इसी माय का शुद्ध रांकेत रोठानियों को कर दिया।

रोठानियां रागड़ा गईं और अनुचरों के राथ अन्तःपुर की तरफ बढ़ने लगीं। अन्तःपुर में जब वे पहुंचीं तो रानियों ने देखा कि इनके बेहरे पर तो निर्नय सौम्यता, धर्म की निष्ठा और समुन्नत भावना जी आग फैली हुई है। रानियां उनके सामने अपने के बहुत छोटी मान-

लगीं। उभी सेठानियों ने अनुबरों से कहा कि आप राजा से जाकर कहिये कि वे हमारे लिए अलग स्थान नियुक्त करें जहां हम अपनी धर्म क्रियाएं गिराधि रूप से कर सकें। अनुचरों ने ज्योंही राजा को यह रान्देश कहा तो उसने आपने गतिन परिणाम के साथ ही तुरन्त रवतन्त्र स्थान देने की आज्ञा दे दी। उन्हें रवतन्त्र रूप से ही नवीन भवन में रख दिया गया।

अब श्रीकेतु ली चंचलता और परिणामों की स्थिरता का फल भी आगे प्रकट होगा। किन्तु आप परिणामों की धारा में अपनी जीवनीका को राम्भालने के प्रति अवश्य ही रातक बनें। आप भी यदि शुद्ध परिणामों के साथ भगवान् रामवनाथ का गंगलायण करेंगे तो कठिन से कठिन परिस्थितियां भी आसान हो जाएंगी तथा जीवन टिक स ली दिशा की ओर गतेशील बन जाएगा।

॥४४॥

लाल भवन

2.9.72

रुचि और अरुचि के क्षेत्र

“द्वेष-अरोचक भाव.....”

सम्मवनाथ भगवान् की प्रार्थना की ये वक्तियाँ जीवन के मंगलमय प्रसंग को उपस्थित कर रही हैं। विश्व के विस्तृत क्षेत्र में जीवन की गूणिका को शुद्ध बनाने की दिशा में प्रत्येक वित्तेकशील प्राणी को निस्तर चिन्तन करते रहना चाहिए। प्रगु संगत्वाथ ला आदर्श जीवन आराम्बव को राम्ब और दिखाने की प्रेरणा दे रहा है जो क्यों नहीं, हग उपनी आन्वरेक शाकेत को विकरीत करके वैरा ही अपना भी सामर्थ्य प्रकट कर सके?

मानव अपने जीवन के सम्बन्ध में आज जिस तरीके से सोचता है, उसमें आमूलचूल परिवर्तन की आपश्यकत है। दर्तमान विनान प्रवाह पर नियन्त्रण लगाकर उराकी पिशा के बदलनी होगी। आज जेरा पिश॥ में यह प्रवाह बल रहा है, वह आता—प्रगति की देश॥ नहीं है। जीवन को व्यर्थ की लालसाज़ों में गलकाने वाली दिशा है। इसे जब तक सही दिशा की ओर नहीं मोड़ेंगे तब तक वांछित सामर्थ्य भी आपने भीतर प्रकट नहीं ले राकेंगे। जैरो हुगों केरी रथल पर जाना हो और वहाँ की नवीन तस्तुओं को प्राप्त लरना हो तो उराके अनुरूप रासो में अपने पास रही हुई वस्तुओं में हेराकेरी करनी पड़ती है। उसी प्रकार हमारे मन मस्तिष्क रूपी पात्र में आत्मोन्ति ली आकांक्षा के साथ कई अनातश्यक अथवा पतनोन्मुखी कामनाएं भी गरी पड़ती हैं। उन्हें पिकास मार्ग में छाटते-छोड़ते रहने से ही पात्र ली रिथति भी ही रहेगी तथा गति का क्रम भी डीक बना रहेगा।

इस विवेक बुद्धि से जब बलेंगे तो असम्मव को सम्भवकारी शक्ति के उत्पादन में जाकर सफलता मिल सकेगी। मन—मस्तिष्क में से इन उनावश्यक कामनाओं को छोड़ते रहने के साथ—साथ प्रबुद्धकारण नये—नये रादगुणों का सामायेश करते रहना पड़ेगा, जो विकास की दिशा में अधिक तीव्र गति से हरे अग्ररार बना राकेंगे।

धरातल का पहले निर्माण करें

स्वरूप एवं अबाध गति के लिए पहले धरातल का निर्माण करना जरूरी होता है। यदि जमीन कंठीली, पथरीली और लबड़—खाबड़ हो तो वह चलने वाले को लल्दी ही हताश बना राकती है। यही कारण है कि कवि ने इन प्रार्थना की पंक्तियें में प्रभुरोवा का धरातल पहरे बना लेने का निर्देश किया है। अगर पृष्ठभूमि पकड़ी बन जाती है तो 'नैर्बाध गति' की स्थिति भी स्पष्ट हो जाती है। परमात्मा की सेवा के पृष्ठभूमि के रूप में जिन तीन अवस्थाओं ला बर्णन किया ने किया है, वे हैं—अग्रय, अद्वेष और अखेद।

अग्रय—बृत्ति के सम्बन्ध में हमने विचार किया है कि जब तक भय का प्रकम्पन गन और गरितिष्क में चल रहा है तब तक उस प्रकम्पित अवस्था में प्रभु की रोवा राम्भव नहीं है। उस प्रकम्पन जी बीच में हम आत्मिक चिन्तन से बराबर दूर झटते जाएंगे और वैसी अवस्था में हम अपने मूल एवं विशुद्ध आत्मस्वरूप का दर्शन करेंगे अक्षण ही बने रहेंगे।

पानी जब शान्त होता है, तभी उसमें कोई भी अपना स्थिर प्रतिबिम्ब देख सकता है। किन्तु यदि वही पानी प्रकम्पित हो रहा हो तो उसमें बहने वाले प्रतिबिम्ब की कोई आकृति नहीं पिखाई देंगी। यही स्थिति मनुष्य के मन और मस्तिष्क की होती है। यदि ये स्थिर शान्त और शुद्ध हैं— किसी भी प्रकार के गय से प्रकम्पित नहीं होते तो इनके भीतर इकंकने पर निजातगा का गूल रवरूप आपने रागने रपष्ट हो जाता है। रवरूप दर्शन की उस रपष्टता में हरों अपना अमित सामर्थ्य भी पिखाई देगा और वाब वैसी अवस्था में हमारा

पुरुषार्थ उस सामर्थ्य को प्रकट करने के लिए अयक रूप से जुट जाएगा। आगय को इसी दृष्टि से ज्ञानियों ने पृज्ञशूमि के निर्माण में पहला गुण माना है।

द्वेष की ज्वालाएं और प्रगति

प्रभु की सेवा के मार्ग में अग्रसर हो सकें, इसके लिए भय मुक्ति के साथ ज्ञानियों ने द्वेष मुक्ति को श्री अग्निवार्य बताया है। भूमिका की प्रथम वृत्ति के बाद दूसरा क्रम रखा है अह्रेष का। द्वेष गुक्ति का नाम अह्रेष है। गन में उन्नर द्वेष की ज्वालाएं सुलग रही हैं वे निरिवत गानिये कि आगा की प्रगति अवरुद्ध ही बनी रहेगी। यह आग सदरुणों को जलाने वाली आग होती है। जलती हुई ज्वालाओं की लपटों के बीच जितने श्री चुन्दर और कल्याणकारी तत्त्व हैं, उनको देख पाना कठिन होता है। द्वेष की ज्वालाओं से दहकता हुआ गानव—हृदय तो रखय ही जलता और झुलराता रहेगा, पिर उराँग शक्ति ही कहां रहेगी कि वह प्रगति की देशा में गति में कर सके?

द्वेष की इन धाराक ज्वाल ओं का शगान करने के लिए ही अह्रेष वृत्ति को अपनाना आवश्यक है। अह्रेष वृत्ति को समझने के लिए पहले इस द्वेष की स्थिति को समझ लेना चाहिए। मोटे तौर पर रथूल बुद्धि रो गनुष्ठ द्वेष उरा वृत्ति को रागझाता है, जब एक—दूरारे का आपरा गें लोई विवाद हो और उरा विवाद गें गन, वनन और काथा की टक्कर हो, तब वे एक दूसरे के प्रति प्रतिशोध की विवास॥। से जिस प्रकार की मनावृत्ति बनाते हैं उसे द्वेषपूर्ण मनोवृत्ति कहा जाता है।

किन्तु द्वेष का स्वरूप जो बाहर दिखाई देता है उतना ही नहीं है। उर की जड़ें गनोवृत्ति में ज्यों—ज्यों अन्दर रहरी जाती रहती हैं, द्वेष का धनत्व और रथाधिव भी विकट रूप रो बढ़ता जाता है। अन्दर की जड़ जमने के बाद ही बाहर की शाखा उपशाखाएं नजर आने लगती हैं। इसलेए विवेकशील पुरुष विंसी भी बुराई की जड़ में उतार कर उसे पहीं से नष्ट करने का प्रयत्न करते हैं। चाड़ेरा हो अथवा द्वेष—इनके साथ भी विवेक का प्रयोग इसी रूप में होना चाहिर।

द्वेष-अरोचक भाव है

द्वेष की रूप्ता परिमाणा करते हुए कहा गया है कि अन्तर्गत में राग ऐ हुए जो अरोचक भाव होते हैं, ये ही द्वेष के रूप में अन्ध्र-बाहुर पृष्ठों और कैलरों हैं। अब समझें कि अरोचक भव यदा है? आत्मा की तरफ रुचि नहीं होगा, जीवन की शुद्धि और चरम विकास जी गिजारा का पैदा नहीं होन, अर्ज रसरूप को रागझने की चेष्टा नहीं करना आदि राब अरोचक भाव हैं। आत्माभिगुणी वृत्ति रो अरुचि रखना यह पथा आत्मा को परिव बनाने वाली लालसाओं व कामनाओं में रुचि स्थना अरोचक भाव का लक्षण है। इन अरोचक भावों में सभी करना ही द्वेष का मूल रूप है।

बहुतेरे गार्द अपने आप की सफाई देने की दृष्टि से कह देते हैं कि गैं तो इरा झागड़े गैं हूँ नहीं तथा राग—हेष रो दूर हूँ फिर गुज़ार्ह—कर्ग करने की क्या आवश्यकता है? उनका कहना होता है कि जह किसी ओर लिपाता नहीं है तो साधना क्यों कि जाए? ज्ञानियों की दृष्टि में ऐसा कथन कायरता है और जो कायरता है, वह द्वेष जो ही एक रूप है। जीलन की दिशा एवं आत्मा के स्वरूप को समझने में धर्म या साधना नहीं करके जो उदासीनता का शात दिखाया जाता है, वह एक प्रकार की अरुचि है और जो आत्मोन्ति के गार्ग में अरुचि है तो उसकी जड़ों पर द्वेष का वह तृक्ष ही फलीभूत होगा।

यदि आत्मा के स्वरूप दर्शन के प्रति अरुचि है, धर्म के विषय में अरुचि है, धार्मिक व समाजिक दोत्रों में कार्य करने के प्रति अरुचि है तो उही समझना चाहिए कि उसके मन में द्वेष गरा हुआ है। वह अरुचि उसी द्वेष की सूक्ष्मा देने वाली है। यह द्वेष मानवता की जड़ों को ही खोखली बनाता है। इरा कारपा उपेक्षा और उदारीनपा उपी द्वेष जो भी गहराई रो रागझने की जरूरत है क्योंकि ऐसी अरुचि जीवन—वेकार के प्रति आवश्यक उत्साह को उत्पन्न नहीं होने देती है।

जीवन सुचिमय बनाना चाहिए

जीवन को यांदे ज्ञान, दर्शन एवं चारित्र्य से युक्त एवं

पोजोमध्य बनाना है तो उसे प्रारम्भ से ही रुचिमय भी बनाना पड़ेगा। जीवन की उच्चता और गूढ़ता ल ज्ञान होने के साथ ही हिताहित ला लिवेक रखने में रुचि होनी चाहिए। जीवन विलास के प्रत्येक विचार और आचार में जब गनुभ्य की प्रबल रुचि होगी तो वह उसके अनुरूप कार्य में जुटने के लिए तैयार होगा। एवं उत्साहपूर्वक आगे बढ़ता जाएगा।

जीवन में रुचि का निर्माण उतना ही सशक्त बनाता जाएगा जितनी राफलता रो कोई अपने गन में रहे हुए ह्वेष के कलुष को छोता हुआ चला जाएगा। अरुचि को काटने पर रुचि पैदा होगी। दोनों के अपने अपने क्षेत्र अलग अलग हैं।

अरुचि के क्षेत्र अलग हैं रुचि के क्षेत्र अलग हैं। अरुचि के क्षेत्रों से बाहर निकलने पर ही रुचि के क्षेत्रों में प्रवेश किया जा सकता है। यह गन की वृत्तियों लो अनुकूल गोड़ देने पर ही राम्भ छो राकता है और गोड़ देने का काग रवरथ एवं राजन चिन्तन के आधार पर किया जा सकता है। जब रुचि के क्षेत्रों की जानकारी कर ली जाएगी। अरुचि के क्षेत्रों के वैद्युप का भान होगा एवं अरुचि से निकलकर रुचि की ओर जाने की तल्लफ पैदा होगी, तभी जाकर ह्वेष—गाव लो ज़ड़—मूल से काट डालने का संकल्प लिया जा सकेगा।

धर्ग के प्रति अरुचि की विशेष शिक्षण आजकल गुतक एवं छात्र वर्ग के लिए रहती है। उन्हें यह रुचि कैसे पैदा की जाए? इसे समस्या मानकर बला जाता है। इस समस्या की ज़ड़ वस्तुः वर्तमान शिक्षा पद्धति एवं सामाजिक वारावरण में है जो इन वर्गों के लिए उपरुच्च रुचिमय क्षेत्रों की जानकारी ही इन वर्गों को न हो तो एक दूरहरे इस राम्भन्य में उनके चागने जान्यकर छात्रा रहता है और उस अन्यकार ने जह तक स्वरूप परिवय का प्रसंग नहीं आए तो रुचि और अरुचि का प्रश्न ही कहां आता है? रुचिमय क्षेत्रों की सही उपायों से जानकारी दी जाए तो कोई कारण नहीं कि ये वर्ग अरुचि के क्षेत्रों में रगण करते रहें।

अरुचि है तो द्वेष है

जिरा विषय से इन्सान की रुचि तीव्र गात्रा में बढ़ती है उस विषय में उसका द्वेष नहीं गाना जाएगा। और जिरा विषय अथवा वस्तु के प्रति उसकी अरुचि है, उदासीनता अथवा उपेक्षा है तो वहाँ निश्चित ही द्वेष का कुप्रभाव फैला हुआ है। मैं जब कभी धीतराग गाणी के राहारे कुछ अपने जीवन की दृष्टि से रोचता हूँ कि किस प्रकार आज के गानव को जीवन के वारतविक रघुराम की ओर आकर्षित किया जाए तो कई प्रकार के विवार उठते हैं। कई व्यक्ति इमरण में भी अरुचि के भाव के साथ आते होंगे कि वलो महाराज आये हुए हैं तो व्याल्यान में हो आओ, ठीक नहीं लगेगा। यह एल जो उदासी-हृत्ति है और धर्मराम पर जाकर भी अगर वह नहीं दूरती है तो आत्मरघुराम के राम्भन्ध में राही जानकारी भी उन्हें नहीं हो पाती है।

द्वेष और राग विगरीत भाव होते हैं। जिसे हग चाहते हैं, उसकी ओर सहज ही आकर्षित हो जाते हैं तो वहाँ राग समझना वाहिए। परन्तु जिससे सीधा विवाद तो नहीं है, 'फेर भी जिसके प्रति उपेक्षा का भाव है तो उसका अर्थ यह है कि उसे नहीं चाहते एवं नहीं चाहने से उसके ग्रति उदासीन होते हैं तो वह पूरे तौर पर व्यक्त हुआ। हो, लेकिन है द्वेष का भाव ही। इस भाव से राधा को जानने के प्रति भी जो उपेक्षा होती है, वह गनुष्ठ को निष्क्रिय बना देती है। एक बार निष्क्रियता मनुष्य के मन में पर कर लेती है तो फिर सत्कर्म के लिए पुरुषार्थी को जगा पाना भी कठिन हो जाता है।

इस दृष्टिकोण से यदि धार्मिक क्षेत्रों में पहुँचने वाले प्रत्येक शार्दूलहिं तीव्र रुचि के साथ गाणी श्रवण करें एवं उसके तत्त्व लो पकड़ने की येत्ता करें तो उसका अन्तर-अनिप्राय अवश्य ही उनके ज्ञान में आने लगेगा। तथा उनकी संवेद का विकारा होता जाएगा। रुचि के विकास के साथ परख बुद्धि भी पैगी होती जाएगी कि जो कुछ गाणी का क्रम चल रहा है, उसका सार क्या है तथा वह किस प्रकार रो ग्राह्य एवं आनन्दीय है? प्रकृश की ऐसी किरणें उसकी रुचि लो अतीव प्रगाढ़ बनाती जाएंगी।

द्वेष-दृतिबनाम समतामय जीवन

आत्मा गें जाब तक राग और द्वेष की वृत्तियों का प्ररार बना रहता है तब तक उस जीवन गें विभेद की दीवारें भी ख़ड़ी रहती हैं। राग के पात्र अलग होते हैं तो द्वेष के पात्र अलग। दृष्टि में भी यहीं भेद समाया हुआ रहता है। इस विभेद भरे अनुभाव को नष्ट करके राग-दृष्टि बनने का श्रीगणेश रागतागय जीवन रो किया जा राकता है। ‘गिर्ती गे राब भूएसु, वैरं गल्डां न केणई’ का जाब राहीं तौर पर विन् न करें तो समता की प्रकाश रखाएं उज्ज्वल होती बली जाती हैं। वर्योंकि उस उवस्था में अद्वेष वृत्ति के प्रसार होने लगता है।

इंगलैण्ड का एक ब्रसंग है कि माईकेल एंजिलो नामक एक कुशल चित्रकार उद्वेष वृत्ति का उपसक था। इस्था, द्वेष आदि ली विकृति रों बह रादैव दूर ही रहा। चित्रकला की उराकी प्रतिभा इस कारण काफी विख्यात भी होने लगी। इसारों एक दूरारा चित्रकार उसके प्रति द्वेष सख्ने लगा। तथा उसकी कीर्ति को धूमेल करने की घेष्ट करने लगा। बहुत अध्ययन और प्रयास के बाद माईकेल जो नीचा दिखाने के लिए इस ईर्शालू चित्रकार ने एक चित्र बनाया किन्तु वह स्वयं ही उसमें कुछ कमी ऐसी महसूस करने लगा जो रागड़ा गें तो नहीं आए किन्तु उरारो चित्र आपूर्ण रा। दीख रहा था। उस कारण वह चित्रकार बुरी तरह व्यग्र बना हुआ था। तभी गाईकेल एंजेलों उस तरफ से गिकला जैर वह उस चित्रकार की व्यग्रता लो समझ गया। यह जानते हुए थी कि उह चित्रकार उससे द्वेष रखता है, एंजिलो रागतागय भावना रों उस चित्र के पारा गया तथा उराने तूलिका लेकर आंख की बिन्दी बना दी, जिरो बनाना वह चित्रकार मूल नथा था। उसके बनते ही विन् जैसे मुँह से बोलने लग गया। वह चित्रकार पानी पानी हो गया कि जिस चित्रकार को वह नीवा दिखाना चाहता था, वह माईकेल एंजिलो कितना महान् है? माईकेल की उदारता एवं समता ने उस चित्रकार के द्वेषपूर्ण कल्पष को एकदम राफ़ थोड़ा छाला।

मेरे कहने का आशय यह है कि कला के क्षेत्र में भी यदि कलाकार के मन में द्वेष हो तो उसकी कला पूर्ण और सार्थक नहीं बन सकती है। द्वेष के विषेश कीटाणु शुद्ध शुद्धि को धूमिल बना देते हैं तो कार्य-शक्ति को पंगु। द्वेष जब रांचार के व्यवहार में भी कर्नी राफल नहीं बनता है तो जब तक संसाकी ज्वालाएं खालती रहती हैं, ८९ ताक शान्ति एवं शोतालता से प्रभु की सेवा कैसे संभव हो सकती है?

जब तक कोई द्वेष रहित होकर समतामय भावना के साथ जीवन का नवगिर्माण नहीं करता तब तक विकास के द्वारा उसके लिए नहीं खुलते। अद्वेष वृत्ति के साथ जब कृचि के क्षेत्रों में कदम बढ़ाये जाते हैं तो राहरा व कर्गिठता का जो नया प्रकाश फैलता है, उसमें कोई भी आत्मा भगवान् संभवनाथ की तरह असंभव को संभव बना देने का सामर्थ्य धारण कर लेती है।

हीन भावना भी द्वेष का ही रूप

अपने शारू ली विविध ग्रनुत्तियों पर आग दृष्टि लालें तो आप पग—पग पर शायद यह महसूस करेंगे कि देश की हर बात हल्की ग नी जाती है। यहाँ तक कि युवा वर्ग तो देश की सम्यता एवं रांचुपि के प्रति भी उपारीन पेखा जाता है। द्वेष की ज्वलाएं भभकते हैं और जब वह आग राख के नीचे दबी पड़ी हो तो उसे उदासीन वृत्ति कहा जा सकता है। यही उदासीनता जब अक्षमता गं बदल जाती है तो फिर हीन भावना का जन्म होता है जो रख्य को नगण्य एवं तुच्छ गानने लग जाती है। कहाँ तो आत्मा ली अनन्त शक्ति और कहाँ द्वेष के वशीभूत होकर उपने आप को हुच्छ मानने की हीन भावना! इस हीन भावना का जनक द्वेष ही होता है।

देशवासियों का जीवन अज जिस रूप में जर्जरित सा हुआ जा रहा है उसकी पृष्ठशूमि में यही हीन भावना काम कर रही है जो अपनी शक्ति को कभी गृहरूरा नहीं होने देती। उरो कायरता इस तरह घेर लेती है कि नह जौरो कभी भी कोई रार्थक कार्य नहीं कर सकें।। इस हीनमन्यता को भी समाप्त दर्शन की आराधना से समाप्त

किया जा सकता है। समसा समान भावना और समान सम्मान ही नहीं देती, बल्कि समान शक्ति का बोध भी करती है। यही लापण है कि सम्तादर्शन का उपासक अभय, अद्वेष और अखेद वृत्तियों को ग्रहण करता हुआ पुरुषार्थी एवं पराक्रमी भी बन जाता है। राष्ट्रीय एवं धर्मिक जीवन में यदि रागातामय जीवन का विकारा होता है तो कई समस्याओं का तो स्वाभाविक रूप से ही समाधान निकल आयेगा। सम्ता धारण करने से अनेकानेक विकृतियां सहज ही में समाप्त हो जाएंगी और एक हार्दिक रागरचता के फैलने से रागात्र वातावरण व्यक्तिगत रथार्थों से ऊपर उठकर आत्मीय बन जाएगा।

अद्वेष-असंभव को संभव बनादे

आरुचि को गिराकर यदि आप अपने जीवन को रुचिग्राम बनालें अर्थात् द्वेष के कल्पुष ले छोकर आप अद्वेष वृत्ति के उपासक बन जाएं तो जीवन का यह आलोक प्रत्येक कार्य को संभव बना देगा। उरा रुग्णापूर्ण एवं पराक्रमी जीवन के रागक्ष कोई कार्य आसान्न रहेगा ही नहीं। इस राम्भन्य में एक ऐतिहारिक रूपक गी आपको सुनाता हूँ। यह रूपक भी इंगलैण्ड का ही है।

विजियग प्रथग का जगाना था ८६ विजली द्वा धिलियो द्वा आविष्कार नहीं हुआ था। लकड़ी के मकानों में दीप्ति जलाए जाते थे। राजगवग के ऊपर एक बज्जा घंटा लटकता था। प्रतःकाल ४ बजे उराकी ध्वनि सुनकर नागरिल दीपक बुझा देते थे। उरा रागय में एक तरुण रौनिक, जिराका विवाह हुए एक ही वर्ष हुआ था, कोई अपराध कर बैठा जिसके फलस्वरूप उसे फांसी के सजा मिली। फांसी लगाने का दिन और समय ४ बजे निश्चिपा हो गया।

सैनिक की तरुण पत्नी ने जब यह सुना तो वह रत्तिगित रुक गई और उसने किसी भी प्रकार अपने पति को फांसी से बचने का निश्चय किया। प्रारम्भ में अधिकारियों से उराने निवेदन किया किन्तु उरो राफलता नहीं गिली। उराने भी द्वेष बुद्धि नहीं लाते हुए राहरा के साथ संकल्प किया कि कैसे भी हो मैं इस कार्य को अवश्य ही

सिद्ध करूंगी। इसके बाद वह उस धंटे के पास पहुंची रह। उस धंटे को बजाने वाले अन्धे और बहरे व्यक्ति को समझाया कि आज जब ४ बजे तो वह धंटे का रस्सा न रखींगे कि उस दिन ४ बजे उसके पति को फ़री देने का निश्चय हुआ था। नैतिकता गें रुचि रखने वाले अन्धे ने उस तरुणी की बात नहीं गानी। वब वह रवधं ऊपर की गोलियाँ गें याली गई और ज्योंही ४ बजे, अन्धे ने रस्सा खोवना वाहा तब तरुणी उसे धंटे को पकड़ कर लटक गई जिससे वह बज ही नहीं। अन्धे और बहरे को इराका क्या पता चलता कि धंटा बजा या नहीं ?

धंटा नहीं बजाने के बाद गें राजमूवन गें हो—हल्ला हुआ। और पता लग या तो पता चला कि तरुणी के लटके होने से धंटा बज नहीं रहा है। खवयं राजा ने भी जब तरुणी से नीवे उतारने को कहा। वह नहीं उतरी तो राजा ने कारण पूछा। उसने अपना साइसपूर्ण संकल्प बताया। उराकी निर्णयता को देखकर राजा बहुत प्रत्यान्व हुआ और उराने उराके प्रति का जीवन बचा दिया। जब आपकी तीव्र रुचि और दृढ़ रांकल्प एक कार्य को करने गें लग जाए तो राज्ञ गानिये कि असंभव से असंभव कार्य उस निष्ठ के साथ संभव बन जाएग।।

किसी भी कार्य को सम्पन्नित कर लेने के लिये तीव्र रुचि एक गहरापूर्ण अनुभाव होता है, क्योंकि इसी के बल पर आपुं राहरा ला संवार होता है। साहस जब एक बार जग जाए और वह कार्यसिद्धि गें जुट जाए तो रिथति असंभव बनी नहीं रह राकती है।

विनयधर सेठ की रुचि

कथा भाग में आप सुन रहे हैं कि विनयधर सेठ की रुचि फिर्स तरह अभय, अद्वेष आदि वृत्तियों को अनुगमनेन् बनकर रागतागर जीवन की ओर लगी हुई है तो श्रीकेत्र की अरुचि काम भोग ले कीवड़ में पांस कर फिरानी वीमत्स बनी हुई है ? जैसा कि मैंने बताया, जहां तीव्र रुचि है, वहां द्वेष नहीं है और रासाहरा का प्रबल धेर है। अतः रुचिग्र जीवन वाले के रागने परालय कभी आती ही नहीं और सेठ विनयधर का उज्ज्वल वरित्र भी कभी पराजित नहीं होगा।

पठनाक्रम के वर्णन का आज रागय नहीं है, किन्तु यह ध्यान रखिये कि लथाभाग लेवल मनोरंजन के लिये ही नहीं होता है, उससे जीवनोपयोगी तत्त्व ग्रहण किया जाना चाहिये। विनयश्वर सेठ के जीवन से जो शिक्षा प्रभुख रूप से गेलती है, वह यही है कि द्वेष वृत्ति को स्तोषकर अपने लक्ष्य के प्रति तीव्र रुचि जगाई जाए और जीवन को रामतादर्शन की दृष्टि से निखारा जाए। अरुचि के राश न तो रागता आएगी और न अन्तर तम ही भीजेगा। इस कारण रुचि जगानी जरूरी है और उसके लिए रुचि एवं अरुचि के क्षेत्रों को सही प्रकार से राम झाकर रुचे के क्षेत्रों में गति करने का धृढ़ उपकरण बनाना बाहर्ये। इस तरह धरातल तैयार होगा तो जीवन का उच्चतम विकास नी रारलता से राखा जा सकेगा।

□□□

लाल भवन, 3.9.72

आनन्द के प्रवाह में

“खोद प्रवृत्ति हो करता थाकिये रे.....”

प्रभु को मंगलावरण के रूप में सूरि पटल पर लाना आवश्यक है। उपनुसार प्रार्थना की पाँकेतारों के माध्यम से प्रभु का रमरण हो आया है। प्रशु का नाम संभवनाथ है और हमें भी उनकी सेवा के शेष को समझ कर उनके अदर्शों का इस प्रकार अनुकरण करना है कि हम भी अर्थमव को रास्ता कर दिखाने के योग्य शक्तिपाल बन रहे हैं।

प्रभु की रोल आत्मशुद्धि के लिये है। ये जो पर्युषण वर्ष के दिन हैं आत्मशुद्धि के प्रयोजन की दृष्टि से विशेष महत्वपूर्ण माने जाते हैं। संभवनाथ भगवन् की प्रेरणा से आत्मा में एक अपूर्व उल्लास विकसित होता है और इसी उल्लास के साथ यदि अशय और अद्वेष वृत्तियों को अप्नाकर अखोदमय बनाने का प्रयास किया जाए तो प्रभुरोवा की सुदृढ़ पृष्ठभूमि का राहन ही निर्गांग किया जा सकेगा।

संभवनाथ भगवान् के नाम के साथ जो एक संकेता जुड़ा हुआ है, उसमें मानव के अन्तास्ताल को स्वच्छ बनाने का ही निर्देश प्रतीत होता है। यह जो शरीर दृष्टिगत हो रहा है, इस बाह्य शरीर ला बारतारिक रखरख प्रतीत हो रही है। गनुष्य की बाहरी आकृति का यह जो बाहर से दीखने वाला दृश्य है, वह आन्तरिक दृश्य पर ही निर्भर करता है। अन्तर का दृश्य योद्धे स्वरूप और विशुद्ध है जो उसकी आमा बाह्य दृश्य पर भी फूटे बिना नहीं रहती है। उस आन्तरिक चमक ली उपस्थिति में बाह्य आकृति कैसी भी हो, उसका महत्व नहीं रहता

किन्तु वह अन्दर की बमक इन्सान के व्यक्तित्व को निखार देती है। भीतरी सुन्दरता बाह्य शरीर को भी कमीय बना देती है। ऐसी आत्मिक स्वच्छता और सुन्दरता ही प्रलयक पुरुष के लिये लक्ष्य बननी चाहिये।

आत्मिक सौन्दर्य के साधन

अनासात्मा की पृष्ठभूमि के परिमार्जित एवं संशोधित करने के लिये उक्त प्रार्थना में जो तीन साधन अभ्य, अद्वेष और अखेद के रूप में बताये गये हैं, वे पूरी निष्ठा ले साथ आचरणीय हैं। अग्रय की वृत्ति जहाँ अन्तर्बल को जागृत बनाती है तो उसकी सहचरी अद्वेष वृत्ति आत्म-गांज का प्रक्षालन करती है। यदि भय रागाप्त न हो तो द्वेष भी गिरत नहीं है और एक द्वेषी हगेशा लरता रहता है कि न उने कह कोई दुश्मन उसका कैसा और कितना अहित कर देगा? द्वेष की वृत्ति के साथ भय जु़ला रहत है। अभ्य एवं अद्वेष वृत्तियों को व्यवस्थित रूप में जीवन में उतारने के लिये उनके अनुरूप रातत् प्रयारा किये जाने चाहिए, ताकि ये दोनों वृत्तियां जीवन के प्रत्येक कार्य में रथायी रूप से अव्याव की अंग बन जए।

अभ्य और अद्वेष-पोनों वृत्ति अभ्य रा-रात्य गानी गई है। अभ्यास का अर्थ होता है प्रयास का सतत क्रम। यह क्रम तब तक चलता रहना चाहिये जब तक कि इन वृत्तियों का अनुपालग पुष्टता एवं पूर्णता प्राप्त न ले जा दें। बिना अभ्यार के इनको जीवन में उतारना रारज नहीं होता है। रोन भी हथौड़े की आणित चोटें खाकर ही कोई समीय आकूरि में ढलता है। उसी तरह अभ्यास की परिपवत्ता बार बार के आधारों से प्राप्त होने वाली दृढ़ता से ही बन पाती है।

अनादिकाल से यह आत्मा भय और द्वेष के चक्र में भ्रमित हो रही है। अन्य कई प्रकार की योनियों के रिगाय गनुष्य योनि में भी यह रही किन्तु भग और द्वेष रो रातंध गुनित नहीं गिरी। अन्य योनियों में भय और द्वेष के धनत्व से पीड़ित रही, समुर्येत पुण्य संवय

से फेर मानव जीवन मिला है और अब भी यदि भय और द्वेष को पुरे तौर पर मिटा नहीं सके तो किर सच्चे आनन्द का प्रवाह कैसे फूटेगा ? जब तक शय और द्वेष आत्मा के साथ लगे रहते हैं, तब तक आला का खेद भी गिर नहीं सकेगा। अखेद वृत्ति आयेगी, तभी आनन्द के प्रवाह में आपा का कण—कण निर जिगत हो सकेगा।

सद्वृत्तियों का अभ्यास करें

कठिन अभ्यास को ही साधना का नाम दिया जा सकता है। अभ्यास मन और मस्तिष्क की ऐसी मजबूती के साथ किया जाए कि अपने स्तर से स्वतंत्र होने का अवसर नहीं आए। ऐसी दृढ़ता—अभ्यास कठिये या राधना—उत्तराकी रातत् रिष्टि रो ही प्राप्त हो सकती है।

योग—राधना की दृष्टि रो जहाँ पातंजलि के योगदर्शन ला प्रसंग है, वहाँ उस धोन की साधना के लिये भी निरन्तर धीर्घकाल एक उसका अन्यास करने का विधान किया गया है “धीर्घकाल पर्यन्त निरन्तर चलकार सेविता दृढ़ भूमि:” सतत् रूप से जीवन में जब अभ्यास क्रम चालू रहता है तभी शय, द्वेष और खेद की वृत्तियों लो त्याग कर अमय, अहंकार एवं अखेद की राद्वृत्तियों को उपनाने एवं रक्षित करने की क्षमता बनती है। प्रभु गहावीर ने और उनरों भी पूर्व होने वाले सभी तीर्थकरों ने चार तीर्थों की स्थापना की एवं मुख्य रूप से उन्होंने मानव जीवन को सर्वश्रेष्ठ बताते हुए अभ्यास या साधना पर बल दिया। उन्होंने यहाँ तक कह दिया कि चार अंग द्रुलंभ हैं जिनमें पहला क्रग गाणुरात्मा—गानव जीवन को दिया है और इस कारण कि इसी जीवन में सद्वृत्तियों का सफलतापूर्वक अभ्यास सन्मादित किया जा सकता है।

अभ्यास का ऐसा क्रम बरहों महीने चलना चाहिये, किन्तु उसमें भी पर्यूषणपर्व के दिवसों में तो यह अभ्यास कठिन निष्ठा के राथ परिषुष्ट होना चाहिये। रद्दाति शास्त्रीय दृष्टि रो पर्यूषण पर्व ला अन्तिग दिन एक ही है, लेकिन पहले के रात दिन प्रधानतः अभारा के लिये ही है। अन्दर की पूर्व तैयारी इन दिनों में बन जाए तो

संवत्सरी का महापर्व आत्मा के लिये आदर्श सिद्ध हो जाए। ये दिन इस प्रकार की आत्मालेचना के लिये भी हैं कि गत वर्ष के पर्युषण पर्व के उपरान्त इस पर्व तक जीवन की घलियों ने कितनी प्रगति की, दैनिक आचरण कितना सांशोधित होकर निर्गम बन तथा आत्मा ने राद्युतियों का कितना साफल अन्यारा किया? कग रो कग इन आठ दिनों में भी सांसारिक वृत्तियों का उपरान्त कर दिया जाए तब भी अभ्यास के रूप में जीवन टिक्कास के नये ह्लार खुल सकते हैं।

आत्मा का खेद कैसे मिटेगा ?

यह गाया जाता है कि “पर्व पर्युषण आया और दुनिरा में आनन्द छाया” तो इराका अर्थ ज्या है? पर्युषण पर्व गें आनन्द रासी दुनिया गें फैर्हे—यह तो बहुत अच्छी बात है किन्तु यह अच्छी बात भी रामी बनेगी जब यह आनन्द एक एक आत्मा में फैलेगा। ऐसा ही आनन्द जब धनीभूत होता जाएगा तो हकीकत में सारी सुनिया ला आनन्द बन जाएगा।

मूल समस्या इसलिये यह है कि आप में से एक—एक गार्ड और हिंन आनन्द के प्रवाह गें अपनी—अपनी आत्मा को कैरो हुबोएं और उह भी इरा नाठापर्व के अवरार पर! इरा नारह के अखूट तो नन्द का आनन्द उठाने के लिये अपने अन्तर का अवलोकन एवं परिमार्जन करना होगा। जगते या अजगते आप निरन्तर गय और द्वेष ला अभ्यास करते चले आ रहे हैं—अभ्यास क्या कहें, इनगें लिप्त होते हुए चले आ रहे हैं और इरीजिये आत्मा का खेद कभी गिरता नहीं तथा आत्मानन्द का प्रवाह पूर्टता नहीं। पर्युषण के दिनों में अन्तागढ़ सूत्र का वावन इसी उद्देश्य से किया जाता है कि जब आप उसमें वर्गीकृत महापुरुषों का साधना—वृत्त सूनो तो उनको स्मरण करके आप में भी प्रेरणा जागे कि आप अब ही सही पर इन असद प्रवृत्तियों से अपने आपको मुक्त कर लेने का दृढ़ संकल्प ले सकें और अगी से उसके जिये अपना अभ्यास क्रम प्रारम्भ कर सकें।

अन्तागढ़ सूत्र में उन पुरुषों का वर्णन है, जेन्होंने संसार में

रहते हुए दिल्ली आलिंग कैमल को प्राप्त किया। इन्हें पांचों इन्द्रियों के विषयों से सम्बन्धित सारी सुख सामग्री प्राप्त थी किन्तु उन्होंने उनके क्षणिक सुखागास को त्याग कर आत्मा के अखूट आनन्द को प्राप्त करने के लिये राधना ले पथ पर आगे कदग बढ़ाए। इन पुरुषों ने देखा कि शय, द्वेष खेद आदि की असद् प्रवृत्तियों में प्रलग्नित, प्रज्वलित और व्यशित हाती हुई यह आरगा निरन्तर झूलराती जा रही है और वर्षम विकास के अपने लक्ष्य से दूर हटती जा रही है तो इन्होंने पीतराग चाणी के माध्यम से शय, द्वेष खेद आदि को समूल नष्ट कर दिया और प्रभु की रोवा क्य की, कि रवयं हो प्रमु बन गये।

ये जीवन चरित्र पर्यूषण पर्व पर प्रतिवर्ष बांधे जाते हैं और अवण करने वाले श्रवण भी करते हैं किन्तु यह वावन व श्रवण रामगत तभी बन सकत है जब उन पर चिन्तन करके उनके पदचिन्हों पर आपने जीवन को भी चलाने का व्रत लिया जाए। चिन्तन, गनन और कार्योन्वयन से ही जीवन का परिमार्जन संभव है। विनान की भूमिया पर ही यह सम्झा और महसूस किया जा सकता है कि इस आलिंक आनन्द के प्रवाह में जो राध, शिव और रुन्धन के नये—नये रूप निखर रहे हैं, उनका प्रस्फुटन अपने अन्तर में भी हुआ है या नहीं? आप हर वर्ष एक ही चीज के एक ही रूप में आने रो जबते हैं और खेद ला अनुभव करते हैं किन्तु एवं यह खेद अज्ञान की रूपन है। है और इससे शय तथा ह्लेष की ही मात्र बढ़ती है। यह सेचने की बात है कि जिन अराध प्रवृत्तियों में आप राध—दिन धुले रहते हैं, क्या उन्होंने खेद गहयूरा करते हैं? हर रोज शरणीत होते हैं, ह्लेष और प्रतिशोध में जलते हैं, तब उन्होंने आपको खेद क्यों नहीं होता? इनसे जब खेद होगा, तभी आत्मा का खेद मिटेगा और आत्मा अखेद रूप धारण कर सकेगी।

अखेद से आनन्द की उपलब्धि

आनन्द के प्रवाह में ढूबना है तो अखेद अर्थात् परग हर्ष के राध राद्वृत्तियों को कार्य रूप में अपनाने में जुट जाइये। अखेद वृत्ति वाले को आत्मिक तत्व नित नवीन लगते हैं और वह उनसे

नित नई नई प्रेरणा प्रहण करता रहता है सूर्य जो आप देखते हैं बताइये कि नया है या पुराना ? प्रतिदिन प्रगतकाल में जो लोग सूर्य का दर्शन करते हैं, वह सूर्य उनके लिये पुराना नहीं होता ? फिर तीव्र उन्हें नित नवीन रूप में दिखाई देता है और उसको रोज नई प्रेरणा, रफूति और जागृति गिलती है। क्या आप रोज यानी पीते-पीते ऊबते नहीं हैं ? बताइये, वह पानी नया है या पुराना ? जिस तालाब, कुएँ अथवा टंकी का पानी आप रोज पीते हैं तो आपके मन में खेद क्यों नहीं होता कि यही पानी रोज पी रहे हैं, अब इराका क्या पीना ? किन्तु आप जानते हैं कि हवा के बाद पानी ही शरीर रक्षा के लिए राधाधिक अनिवार्य पद थे हैं।

हवा, पनो और भोजन जिस प्रकार शरीर के लिये अनिवार्य पदार्थ हैं और उन्हें रोज प्रयोग में लेते हुए भी उनसे खेद नहीं पाते उरी प्रकार ज्ञान, दर्शन, चारित्र्य आदि गुण आलगिकारा के लिये अति अनिवार्य हैं। अतः आत्म-विरोधी दुर्गुणों पर विजय प्राप्त करते हुए आत्म विकासक सदगुणों की आराधना से विना सदैव हर्षित होता। रहे इसे अखेद वृत्ति कहते हैं। अखेद का अर्थ है छोटे रंज का। नहीं होना; और जहाँ खेद नहीं है, वहाँ आनन्द ही तो होगा। अखेद वृत्ति से ही आनन्द की सम्पलम्बि होती है।

पर्यूषण और आनन्द की अनुभूति

पर्यूषण पर्व के प्ररांग आपने गें और रांगार नें रात्रा आनन्द और उल्लारा उत्तमन करने के लिए है। पर्यूषण पर्व के राम्बर्त गें स्वर्गीय अ वार्षी श्री के अन्तर्नाद की जो कंडिया हैं, उनका उच्चारण मैं कर रहा हूँ और आप भी करें।

यह पर्व पर्यूषण आया,

दुनिया में आनन्द छाया.....जी।

क्रोधादिक द्वेष मिटाओ

आत्म शुद्धि प्रकटाओ.....जी।

आप इन कंडियों के साथ अपनी आत्मा का सम्बन्ध जोड़िये।

बोलने की दृष्टि से आप उद्वारण करने में संकेत कर गये कि बाने का काम तो महाराज का है, हमको नहीं गाना है। मैं आपसे पूछूँ कि आनन्द लेने का काम महाराज का है या आपका भी है? इन आनन्द की किंतुओं को आप भी गायेंगे ते ते ते पकी जिहवा पवित्र होगी। आपका गान पवित्र होगा और ऐसी अवस्था नै क्या आपका गान आनन्द की हिलोंगे नहीं लेने लगेगा? पर्युषण पर्व के अवसर पर तो आपनो ऐसे आनन्द के लिए अतीव लालायित रहना चाहिए।

पर्व के इन पवित्र दिनों में आप जितनी गहराई से तात्त्विक चिन्तन और गनन करें, उतनी ही आनन्द की रास्रा धारा आपके अन्तर्गत को रनेहपूर्वक आप्नावित करती रहेगी। आपके अन्तर्गत का आनन्द दुनिया में विखरेगा और दूसरी ओर दुनिया में छाया हुआ सच्चा आनन्द भी आपके मानस्यूर को हर्षातिरेक से आनन्दित बना देगा। आप यह रोचें लि दुनिया का आनन्द हगारे किरा काग आएगा तो यह बुद्धिगानी नहीं होगी। दुनिया की विशिष्ट विभूतियों के आत्मिक आनन्द में आपको भी आनन्दित होना है और वैसे आनन्द को अपने भीतर प्रवाहित करना है, इसे न भूलें। 'दुनिया' की जगह गायन में 'जयपुर' जोड़ दें— तब तो महसूस करें कि जयपुर की जनता आनन्द का अनुशाशन किन परिस्थितियों में कर सकेगी? यिगत बारह गारा गें जितने भी राग—द्वेष या भय—आतंक के प्ररांग आये हों, उन्हें आज रो भूलते हुए तथा इन अराद व्रतियों रो विपुख बनते हुए यदि आज से प्रत्येक भाई बहिन अपने मन में अभय, अद्वेष एवं अलोद जी वृत्तियों को ग्रहण करने लग जाए तो सोचिए क्या जयपुर में जानन्द ही आनन्द नहीं छा जाएगा?

भय, द्वेष व खोद से मुक्त बनिये

पर्युषण पर्व के आठ दिनों के लिए तो कग रो करा गन में निश्चय करें कि आप न तो स्वयं गयान्ति होंगे तथा न ही अपनी ओर किसी को गयान्ति करने की चेष्टा करेंगे। दूसरे, किसी के प्रति आप अपने गन में द्वेष भाव नहीं रखेंगे तथा न ही द्वेष रो प्रेरित होकर किरी के गिरोध में कोई प्रतिशोध भरा करेंगे। तीरारे,

धार्मिक प्रवृत्तियों के प्रति आप कभी खेद का अनुभव नहीं करेंगे, बल्कि सूर्य की तरह सफूर्ति देने वाली इन प्रवृत्तियों से अज्ञानवश ऊब कर अपने आपको हीन मान बैठे हों, उन्हें आप उत्साहित कर उनके खेद को दूर करने का सात् प्रयास भी करेंगे। धार्मिक प्रवृत्तियों के प्रति नित नई प्रेरणा, नई सफूर्ति और नई बागृति ग्रहण करने के गानरा जा विकास एवं प्रसार किया जाना वाहिर।

शय, द्वेष और खेद से यदि इस प्रकार अपने आपको मुक्त करने के प्रयास इन पर्यूषण पर्व के दिनों में प्रारम्भ कर दिया तो निश्चिन्त रहिये कि आपके चरण आत्मोन्नति के गार्व पर आगे बढ़ चुके हैं। पैरी स्थिति में आपके गन और गरितष्ठ में उत्तराह और साहस का ही संयार नहीं होगा बल्कि एक अपूर्व आनन्द का आल्पा के अणु अणु में संचार हो जाएगा, जो आनन्द न कभी नष्ट होता है और न कभी नीरसा बनता है। यह आनन्द रागरा बना रहता है।

अग्रयास के बावजूद भी शय, द्वेष और खेद की वृत्तियां यदि राताने रो बाज नहीं आती डूँ तो इस गहापर्व में तपश्चर्या रो इन्हें क्षीण बनाइये। कई साल, साहियां भाई और बहिनें उपस्था कर रहे हैं और तप का वास्तविक प्रयोजन ही यह है कि तप के आराधन से जीवन को विदिशा में ले जाने वाली असद् प्रवृत्तियां कृश ही न बनें, बल्कि नष्ट भी हो जाएं। जीवन को गांजने के लिए राग-द्वेष की गन्धवृत्ति को घटाने के लिए और उन लुटिल गांठों को काटने के लिए, जिनके कारण भाई बहिन में विछोह पड़ जाता है। उपस्था का आश्रय लिया जाएगा तो उससे आप और पर्व दोनों की शोभा होगी।

समय का सदुपयोग करने से न चूकें

गहापर्व के रूप में गह जो हाथ में रुआवरार आगा है, उरो हाथ से यों ही न निकल जाने दें। यह समय फिर लौट कर रही आयेगा। आये हुए रागय का सदुपयोग करने रे ज्ञतई न चूकें। ज्यों ज्यों जीवन के द्वाण बीतते जा रहे हैं, चरिस्थितियां भी बदलती जा रही हैं। इन दिनों में आनन्द के प्रवाह को प्रभावशाली बनाने के लिए विशेष कार्यक्रम आयोजित किये जाने वाहिए, जिनमें अधिक से

आधिक लोग इगिल होकर जीवन लौ नई कड़ियों का अनुरांभान कर सकें एवं दूटी कड़ियों को जोड़ सकें।

रान्त लोग कितने ही दृष्टान्तों से शारब्रों की वाणी रुनाते व संझाते हैं, उसे ध्यान-पूर्वक सुनिये और उन उपदेशों के साथ अपनी आत्मा की भावना एवं साधना को जोड़ने की कोशिश कीजिये। यह पर्युषण पर्व का प्ररांग रामी प्रकार से अन्तरावलोकन करने का है। उसके बाद जो लरणीय कार्य आपने नहीं किये हैं, उनकी ओर इन दिनों में प्रवृत्ति करें ताकि अन्तर्जाग्रृति का रजग वातावरण तैयार हो सके।

यह अन्तरावलोकन इन रेखाओं पर हो सकता है कि पिछले बारह गाहों में आपने आपने जीवन के अन्दर किरा प्रकार कलुषित भावनाओं को पैदा किया? इस्के विपरीत श्रावक के कितने व्रत ग्रहण किये और उनका कैसा पालन किया? किस प्रकार के उत्तरदायित्व आपने ग्रहण किये और उनका निर्वाठ किएनी ईगानदारी से आपने किया? जिम्मेदारी लेकर उसमें गलियां निकालने की कोशिश तो आपने नहीं की? परिवार, रागाज या राष्ट्र अथवा रान्पूर्ण प्राणी रामूह के साथ आपने अपनी जिम्मेदारियां निबाही या नहीं? एक सूता के धारे के बिन समाज की माला के मोती जो अनादरपूर्वक इधर-जहार लुढ़के रहे हैं, क्या आपने किरी प्रकार उन्हें शान्ति पहुंचाने का प्रयत्न किया है? रागाज का हर छोटा-बड़ा रादरय गोती के गानिन्द है और जब आप आपनी रादवृत्तियां रो उनकी एक रुचि में गाला बनाना चाहेंगे तो वह रक्ता जीवन विक स के बहुत बड़ी सहायिका हो सकेंगी। इन सब मुद्दों पर यदि आप ध्यान करेंगे और सही दिशा के ओर अपने जीवन को मोड़ने की कोशिश करेंगे तो इस महापर्व के समय ला अवश्य सी श्रेष्ठ उपयोग हो सकेगा।

हर भाई के आनन्द के लिए

आज व्यक्ति और रागाज—दोनों लौ जो दुर्दशा हो रही है उरो गिटाने के लिए आप राबको इरा गहार्व पावन अनरार पर नहरा धिन न करना चाहिए कि समाज के मांगे और मोती से दूर छिटक कर

इधर उधर क्यों लुढ़कते फिर रहे हैं? व्या उपने समाज के अपने सभी गाइयों की तरफ देखा है? आपने तो अपनी खुशहाली हसिल कर ली, लेकिन यदि आपका छोटा शार्झ आर्थिक या अन्य कौसी प्रकार रो खुशहाल नहीं हैं तो क्या आपने इस कंगी को गहरूरा किया है? रामाज गें रहते हुए प्रथेक राज्य व्यवित पर कगजोंर वगों के प्रति कई उत्तरदायित्व आते हैं और उन्हें उन उत्तरदायित्वों का निर्वहन ईमानदारी और इन्सानियत से करना चाहिए।

भारत की धरती पर तो दुश्मन का भी आदर किया गया है, फिर यदि हर छोड़े—बड़े भाई के राज्ये आनन्द के लिए प्रयत्न नहीं किया गया तो वह इस उदार रांगूनि के भी यिल्ड्स होगा। भाईचारा यहाँ का सबसे बड़ा गुण रहा है। राष्ट्र के प्रति भी वैसे ही उत्तरदायित्व हैं और उनके प्रति भी आपको निष्ठा होनी चाहिए, क्योंकि ये सभी प्राथमिक पाठशालाएं हैं जहाँ आपने यदि निष्ठा रो विद्यालयन किया तो आध्यात्मिक क्षेत्र के गहरायिलर में भी आपकी राकजता शानदार रहेगी। सारे विश्व के मनव एवं प्राणी समुदाय के प्रति जब आपकी जो उदार एवं सहयोगी भावना बनेगी, वही भ वना हर भाई के हृदय में आनन्द का प्रवाह प्रवाहित करने में सक्षम बन सकेगी।

आनन्द का व्यापक विस्तार

जह यह चिन्तन किया जाएगा कि इस रूप्ति गें रहने वाले प्रत्येक प्राणी का उत्तरदायित्व एक दूजे पर रहा हुआ है और उसकी आध्यात्मिक धरार ल पर भी सम्यक् पूर्ति की जानी चाहिए तो अनन्द का व्यापक विस्तार होने लगेगा। श्रावक वर्ग के जो ब्रत हैं, उनमें पहला है— प्राणतिपात और उच्चका गूढ़ अर्थ उसे सारे संसार के प्रणियों की प्राण—खका के राथ लोड़ा है। इरी प्रकार प्रथेक प्रता का एक अर्थ हृदय में रांगोन वाढ़े। जब एक—एक प्रता के अनुपालन पर गम्भीर चिन्तन किया जाएगा तो अपने उत्तरदायित्वों का शन होगा और उनके प्रति अपने निर्वाह—प्रयास का भी। चिन्तु समस्या यही है कि क्या आप ऐसे चिन्तन के लिए रगय निकालते हैं और आपने अपली राज्यी आलोचना करते हैं?

आज आपका प्रयास परिवार में, समाज में, साष्ट्र में और समूवे लिश्ट में एक उद्देश्य को जमाहित करने के लिए ऐसे बतातल पर आरुङ्ग होने का होना चाहिए जहां सभी और आनन्द के साथ पर्यूषण पर्ह को गनाया जा सके। रामाता शिद्धान्त ली दृष्टि रो आगर आपने आपने जीवन की कलिकां विकरित कीं तो एक दिल, एक दिग्गाग, एक विवार और एक आवार के साथ प्रभु सेवा की सुदृढ़ पृष्ठ भूमिका ला निर्माण करने में भी आप सफलता प्राप्त कर सकेंगे।

आनन्द के प्रवाह में बहने और बहाने के लिए ही यह मानव—जीवन है, और यदि इस उग्रूप्य जीवन में भी इस प्रवाह ले गहरत्य को नहीं रागड़ा और उरो प्राप्त करने के लिए प्रयत्न नहीं किया तो कौन-फह सकता है कि फिर इस आनन्द की अनुभूति का जघस्तर मिले या नहीं। प्रभु स्वयं आनन्दमय होते हैं और उनको सेवा से भी आनन्द लाग का ही शाव होता है। उनकी रोता की पृष्ठशूग्नि अगर पुष्ट बना दी तो यह आत्मा उन्तरानन्द रो आत्म—विभोर हो जएगी।



लाल भवन

5.9.72

चरम आवर्त के लक्ष्य की ओर

“चरमावर्त हो चरम करण तव रे.....”

मंगलमय जीवन के लिये प्रभु का नाम सार रूप होने से प्रार्थना का सर्वप्रथम उच्चारण किया जाता है और यह प्रथना भगवान् संग्रहनथ की ही तल रही है। प्रार्थना की शब्द रचना लो बोलते हुए उसमें निहित अर्थ ले अनुसंधान की तरफ जब हमारा लक्ष्य बनेगा तो हमारे रागने जीवन-विकास का पथ भी रपष्ट हो जाएगा।

आर्थ—अनुराधान की दृष्टि रो प्रभुरोवा की पृष्ठभूमि के निर्गाणि हेतु जिन अभद्र, अद्वेष एवं अखेद ली वृत्तियों का विश्लेषण किया गया है, उनके जीवन में उत्तर आने पर भव भ्रमण की समाप्ति का प्रसंग बन सकता है। इसका कारण है कि इन सदपूत्तियों के धारण करने से दृष्टि आत्मागिमुखी बन जाती है और आत्मा में विद्यमान दोषों ली और देखने की प्रवृत्ति बनती है। जेरारो उन्हें दूर करने के रांकरूप भी होता है। आत्मा के दोषों को देखेंगे तथा समझेंगे तभी आत्मा के मूल स्वरूप की पहचान हो सकेगी। मूल स्वरूप को प्राप्त करने की इस पहचान के बाद इतनी ललक बढ़ जाती है कि जीवन की लर्म-धारा एकदग रो नया उन्नायक गोड़ ले लेती है। तब वह आत्मा भग, ह्येष और खेद रो गुक्त होकर आहिंसा रूपी प्रगुच्छ राधन को बदल कर समता के साध्य की ओर गति करने लग जाती है। ऐसी स्थिति में यह अवसर पैदा हो सकता है कि अनादि काल ले जन्म मरण के बड़ के बाद जीवन चरम आवर्त यानी अन्तिम चक्रकर का रूप ग्रहण कर ले।

पृष्ठभूमि के बाद आवर्त-मुक्ति

चतुर्गीतिग्रंथ रांसार की चौरारी लाख योनियों में इस आत्मा ने अनेकानेक आवर्त लगाये हैं और अब भी जब इज्ज पृष्ठभूमि की उत्तम तीन अवस्थाओं का निर्माण नहीं किया जाता लड़ा नहीं जा सकता कि अभी कब तक और कितने आवर्त इस आत्मा के और लगाने पड़ेंगे ? किन्तु यदि अग्रय, अद्वेष और उखोद—युक्तियों को जीवन में उतार ले आए—शक्ति जगाई जाएगी एवं आत्मानन्द के प्ररक्षित किया जाएगा तो संभव बन सकता है कि अ वर्त मुक्ति का प्रसंग भी बन जाए भव भ्रमण का क्रम ही दूट जाए। प्रार्थना में इसका संकेत दिया गया है—

चरणावर्त हो चरम करण तव रे
भव परिणति परिपाक ।
दोष टले वलि दृष्टि खुले रे
प्राप्ति प्रवचन वाक् ॥

ज्ञानियों के ज्ञान से यह विदेत हो सकता है कि अमुक आत्मा का अब चरमावर्त का गया है। अनन्तकाल से मिथ्यात्त्व एवं मोहकर्म ने आत्मा की नारत्तिक शक्ति को आच्छादित कर रखा है। शारीरीय परिमाण की दृष्टि से इस गोह कर्म की उत्कृष्ट स्थिति 70 क्रोड़ाक्रोड़ी सानरोपम से अधिक हजारी गई है। उसमें से 69 क्रोड़ क्षेत्री सानरोपम की स्थिति समाप्त हो जए और दशांक क्रोड़ाक्रोड़ी सानरोपन अवशेष रहे तब इस आत्मा को धर्म का शब्द कुछ प्रिय लगने लगता है। आप देखते होंगे कि कई आत्माओं को धर्म पालन तो दूर रहा—धर्म नाम से भी चिह्न होती है। ऐसी आत्माओं के विषय में ज्ञानियों का कथन होता है कि उन पर गोह जगी का भारी पर्वी पहुँचा है।

मोह कर्म की ग्रन्थि

मोह कर्म की गांठ दास्ताव में बड़ी जबरदस्त होती है जो आत्मा का रुख ही धर्म की ओर नहीं मुहने देती है। इस गांठ पर आसक्ति की ऐसी चिकनाई होती है कि जब तक आत्मा महान्-

पराक्रम न करे इस गांठ का खोलना अशक्य सा होता है। संसर के वासनासिक्त पदार्थों के साथ सद् के लिये चिपके रहने की जो यह तीव्र ग्रथि होती है, वही इस आत्मा के विवेक को भी हर लेती है। अवश्य यक्कने पर लाब उह ग्रथि दूरती है तो आत्मा के चरणावर्त के बनने की स्थिति पैदा होती है। इसे ही चरण करण कहा गया है।

वरम करण के समय उस आत्मा को उपशम सम्यक्त प्राप्त होता है। सम्यक्त प्राप्ति में करण की यह स्थिति बनती है कि सबसे पहले रथप्रवृत्तिकरण होता है, उसके बाद अपूर्वकरण तथा तदगन्तर औनिवृत्तिकरण होता है। इनके बीच आत्मा शान्त-प्रशान्त बनती रहती है। यह करणों की परिमिता एक तरह से आध्यात्मिक उल्लासा जी अवस्थाओं की वर्णन रूप है। अनार ने श्रेष्ठ परिणामों की उज्ज्वलता आती है तो आत्मिक शक्ति अंगलाई लेकर प्रबुद्ध दशा के प्राप्त होती है। तब ये अवश्याएँ कारणिक बनती हैं। उस कारणिक अवश्य के राथ जब उपशम राम्यकर्य के अन्दर शान्त-प्रशान्त रूप बनता है तो उस समय यह नहसूख होता है कि कौन कौन सा दोष किस किस रूप में आत्मा के साथ लगा हुआ है और उस दोष का परिमार्जन किस प्रकार किया जा सकता है?

सम्यक् दृष्टि का उद्गम

सदैव सदधर्म पर विश्वास एवं वीतराग वाणी के प्रति अदूर निष्ठा रखने वाले प्राणियों के अन्तर में जब सूदृढ़ता का बातावरण बनता है, तब गोह कर्ण की ग्रंथियां दबती हुई आगना प्रभाव खोने लगती हैं। उस अवश्या में उपशम सम्यक्त का उद्गम होने के कारण सम्यक् दृष्टिपना जला है और यदि वह सुदृढ़ निष्ठा वा उल्लास स्थायी रूप ग्रहण करने लगता है तो उससे ऊपर ली स्थिति मिल सकती है और यदि फिर मिलिगता प्रदेश का जाए तो आत्मा की अवश्य निम्न रत्न पर नीं जा सकती है।

कल्पना करें कि एक न लिन दरब्र को अच्छी तरह राफ़ कर लिया, मगर सुखाते वक्त असावधानी से हाथ से गिर जाए और उसके

मिट्ठी लग जाए तो वह फिर मलिन हो जाता है। उसी प्रकार परिणामों के असाक्षात्तानीपूर्ण उद्घेग के कारण आत्मा की एक बार गिरावी हुई उज्ज्वलता गुणः मलिन हो सकती है। इस मलिनता को स्थायी रूप से नष्ट करने के लिए नियमित अध्यारा और प्रयारा किया जाना चाहरी होता है। इरागें जो राहायक अवलम्बन निल र करता है, वह ही वीतराग याणी, महापुरुषों के आदर्शों का स्मरण तथा सन्ता पुरुषों का सम्पर्क।

आदर्श जीवन-वृत्तों की प्रेरणा

उपशम से बुराइयों का दमन होता है, नाश नहीं। अतः जिस क्षण आत्मा के परिणामों में दुर्बलता आ जाती है, वे बुराइयाँ फिर रो भभक उठती हैं। इसारिये उपशमित कर्म पुंज को क्षय करने की दिशा में उत्ता ला पुरुषार्थी लगना बांधिये एक बार उपशम के बाद अगर आदर्श पुरुषों के जीवन वृत्तों का स्मरण किया जाए तथा निरन्तर मन की एकाग्रता उस तरफ मोड़ी जाए तो वैसा उपशम क्षय की ओर आगे बढ़ रकता है। उपशम रो क्षयोपशम और फिर क्षय का क्रग बताया गया है।

पर्युषण गहापर्व के अवरार पर अचाङ्क सूत्र के दावन का यही अनिवार्य है कि महापुरुषों की जीवन प्रेरणा से आत्मा के परिणामों में कुछ ऐसी उद्युत उत्कृष्टता आए कि आत्मा के लिये चरम आवर्त ला प्रसंग पैदा हो जाए। अन्तगढ़ सूत्र के जिन दिव्य जीवन वृत्तों का आज गैं उल्लेख करना चाहता हूं वे ही अरिष्टनेमि भगवान् के दिला रगृदि के रवाणी तथा कमानीय कान्ति के धारक छः रगान अवस्था वाले भ्राताओं के जीवन वृत्त। प्रवूर ऐश्वर्य के बीच जन्म लेने वाले इन छः भ्राताओं का चरम आवर्त का अवसर जब समीप आ गया तो इन्होंने अरिष्टनेमि भगवान् के चरणों में एक साथ संयम अंगीकार किया तथा तपपूर्ण सक्षमा में निरत हो गये। उस अवस्था में उसके आन्तरिक जीवन का रूप ही बदल गया। हाह्य दृश्यनान शरीर तो वैरा नहीं रहा, बल्कि कृश ठोँथा, विन्दु उनकी आत्माओं की उज्ज्वलता। एवं पवित्रता का स्तर असीम ऊंचाईयों तक ऊपर उठ गया।

देवायि तं णमसन्ति.....

जह कई गनुभ्यों का एक रा शरीर हो, राभी शरीरों की एक री प्रांक्रेया हो, तब वया लारण है | के एक शरीर पूजनीय और देवताओं तक के ह्रास वन्दनीय बन जाता है जबकि वैसे ही दूसरे शरीरों के कोई पूछता तक नहीं। व्यक्तित्व का ऐसा निर्माण आर्थिक उन्नति के बल पर ही तैयार होता है। उराका कारण दशर्तैकालिक रूब्र गें बताया गया है— “देवायि तं णगंरन्ति, घररा धमे सयामणो ।” देवता भी उस पुरुष की वन्दना करते हैं जिसके मन में सदैव धर्म का निवास हो जाता है। और धर्म क्या है ? अपने मूल स्वरूप की ओर अग्रिमुख होकर उसे पूर्णतः प्राप्त करने की दिशा में गति करने का नाम ही तो धर्म है। धर्म की गूढ़ता में जिस आत्मा के परिणाम अधिक रो आहिल भीजो हुए लले जाएंगे तो उराके वर्षा आवर्त का आवरार भी रागीप आता जाएग ॥

चरम आवर्त का मुख्य द्वार

चरम आवर्त बनने की दृष्टि से अन्नाकरण की ज्योति लो प्रज्वालिका करनी है तो उसका मुख्य द्वार सन्ता जीवन है। इसी सन्ता जीवन के नाळ्हम से इन्सान स्थान के जीवन में चरम आवर्त ली उल्लिखन क्रान्ति पैदा कर सकता है।

अरिष्टनेमि के उपर्युक्त छह भ्राता यद्यपि बाहर रो तो पेश की दृष्टि रो ही परिवर्तित दिखाई देते थे किन्तु रायगा ने उनके अन्नाकरण को आमूलदूल परिवर्तित कर दिया था। महाब्रतों के अनुपालन से उन्होंने अनूठे आत्मिक ओज को प्राप्त कर लिया था। आज भी सन्ता जीवन इस संसार के समने है, किन्तु वह उसे सिफ़े इस हाड़—मांस के शरीर के गाध्यग रो ही जानने की चेष्टा करता है तो उरो शला आन्नारिक विकास की अनुभूति कैसे हो सकती है ?

रान्त पीवन को जब उराके वारतविक रवरूप के राश देखा जाएगा तो सब्दे सन्तों के अन्तर तक भी दृष्टि पहुंच सकेगी और होंगी सन्तों की परख भी की जा सकेगी। वीतराग देवों ने सूत्रों के पन्नों पर

स्पष्टतः समझा दिया है और कसीौटेका निर्धारित कर रखो हैं कि सन् जीवन कैसा होगा ? सन्तों को पांच महाब्रत अंगीकार करने होते हैं जिनमें से पहला महाब्रत अहिंसा का है। इसके अनुसार समग्र विश्व में रहने वाले रागत प्राणियों के प्रति यानी रामी वर्गों के गनुध्यों, पशुओं, देवों और नारकीयों के राथ रान्त को अपनी आत्मीय भावना जागृत करनी होती है। जब वह ऐसा करता है, रामी उसके पाप कर्त्ता का बन्ध नहीं होता है।

अहिंसा का समग्र रूप सन्त जीवन में दिखाई देना चाहिये।
कहा है—

"सर्वं भूयस्स सर्वं भूयाई पासओ।

पिटि आसवस्स दन्तास्स पावकम्म न बंधई।"

सना ब्रह्मज्ञा लेता है कि वह अपनी आत्मा की पुलना समग्र प्राणियों के साथ करेगा जिनमें एकेन्द्रिय से लेकर पञ्चेन्द्रिय तक सभी प्रणी शामिल होते हैं। वह सजग रहता है कि जैसे मैं किसी अन्य ला प्रठार परान्द नहीं करता, उसी तरह मैं किसी पर प्रढार नहीं करूँगा।।। किसी भी प्रणी की गन, ववन और काया रो मैं हिंसा।।। नहीं करूँगा, — किसी से करवाऊंगा तथा न ही किसी हिंसा का सर्वाध त्याग करना होता है। यही रावथा त्याग का क्रग अन्य चारों गुणब्रतों—आरतेय, अचौर्य, ब्रह्मचर्य एवं आपरिग्रह के राथ भी जुड़ा हुआ होता है।

सन्त जीवन की ऊंचाइयाँ

पहला गहावपा अर्हिंस। का वो पूजारा गहावपा राख वगा है। तीव्रा क्रग है अवौद्य का। वेरी के रावथा त्याग ला अर्थी उराके सूक्ष्म रूपों के त्याग तक भी पहुँचना चाहिये। संपूर्ण ब्रह्मचर्य जी दृष्टि से सन्त संसार की समस्त स्त्रियों को माता व बहिन के रूप में देखता है। वह पूर्ण रूप रो परिग्रह का भी त्याग करता है। परिग्रह का अर्थ सिर्फ पदार्थी से ही नहीं लिया जाए बल्कि उनके लिये जनने वाली गमता को भी परिग्रह कहा गया है। रान्त परिग्रह के नाम पर

अपना कुछ नहीं रखता तो गगल्ल का भाव भी पूरे तौर पर ल्याग देता है। ऐसा उसका सम्पूर्ण अपरिग्रही स्वरूप होता है।

ये पांच गहाब्रत जीवन पर्यन्त उराके राधुत्त्व ले गूल आंग बने रहते हैं। शरीर की पांवों इन्द्रियों की तरह उसकी आत्मा की ये पांव अतीन्द्रियां बन जाती हैं। इन महाब्रतों की सायकप्रकारण पालना करते हुए राजा—आत्मा जहाँ भी गगन करती है, अपने भीतर परगाय—चत्व के उल्लास की गंगा प्रवाहित करती हुई चलती है। “अत्मवत् रावेमूतेषु” की भावना उराकी प्रकाश—रेखा बन जाती है। अपने रांगों जीवन की रक्षा के लिये वह ५५८५ के यहाँ से भिक्षा लाता है किन्तु उसमें भी दोषों को टालकर उसका लक्ष्य यही रहता है कि गिक्षा ला उपयोग गठात्रतों की सुरक्षा की रीग। पक ही किया जाना है, शरीर पोषण का भाव उसमें करदृश न हो। छः काया के जीवों को रक्षा ली आवश्य मैं ही वह उरा भिक्षा को ग्रहण करता है। निर्दोष भिक्षा गिले औ ठीक, वरना ८८ अनश्वन कर लेगा। किन्तु सदोष भिक्षा कभी नहीं लेगा। यही कारण है कि रांगा पालन को दुधारी तलवार पर चलने के रागान कहिन जाना है।

छः अणगार और देविका रानी

अरिष्टनेमि प्रभु के पास दीक्षिता ऐसे वे ४३ भ्राता सना जह द्वारिका नगरी में प्रवेश करते हैं जो दो पो का सिंघाड़ा बन लेते हैं। पहले दो मुनियों का सिंघाड़ा शिक्षार्थ त्रिपुत्रन अविष्पति वासुदेव महाराज के निवास स्थान में घुसता है तो देविका रानी अति उल्लास के साथ उन्हें प्रारुक् आहार बहराती है। ये चले जाते हैं। एब पूजारा रिंधाड़ा वहीं प्रवेश जरता है वथा उरो भी विविध आश्चर्य के साथ देविका संयम जीवन के पालन की दृष्टि से प्राचुरु आहार बहराती है, किन्तु संयोग से बाद में तीसरे सिंघाड़े के गी वहीं आने का प्रंगण बन जाता है। देविका रानी रान्त जीवन के प्रति परग आस्थाजान् श्री किन्तु उराकी आश्चा अस्ती नहीं थी। भोजन ला उसके लिये कोई प्रश्न नहीं था किन्तु छहों भाईओं की एक-सी आकृति होने के कारण ये उरामांजरा में धिर गई कि ये दो गुनि तीरारी

बार एक ही रशान पर भिक्षा लेने केरो आ गये हैं ? क्या रांगग रक्षा से हटकर ये स्वाद लोलुपता के दोष में छह गये हैं ?

शास्त्रों में देलिका रानी की इस प्रबुद्धता के प्रगाण में प्रश्नोत्तर का उल्लेख है, जिसके जरिये उन्होंने अपने सन्देह निवारण या कि साधु जीवन ले रांशोधन का प्रयास करने का विचार किया। यह उल्लेख अन्तगढ़ सूत्र में ही है। उन्होंने तीसरे सिंघाड़े से प्रश्न किया कि क्या इस विशाल द्वारिका नगरी में अन्य दातारों के घर लुप्ता हो गये हैं कि जाप एक ही घर ने भिक्षा हेतु पुनः—पुनः प्रवेश कर रहे हैं? यह प्रश्न एक शारिका ने सन्तों से किया था और यह उसका जागृप्रश्न था। सन्तों के जीवन पर नियन्त्रण रखने का उत्तरदायित्वा श्रावक श्राविका वर्ग पर भी है, जिन्हें सूत्रों में साधु का "अम्मा पियरो" अर्थात् गापा—पिपा बताया गया है। यदि श्रावक—श्राविका वर्ग अपने मोह, अशान अथवा असाध्यानी से साधु जीवन के सम्बलें नहीं तो सन्त जीवन की विकृति की जिम्मेदारी उन पर भी आती है।

आचार के साथ नरमी न रखें

आचारांग सूत्र में साधु जीवन की नयोदाओं का विशद् वर्णन है। आचार की उन गर्यादाओं से राधु तनिक भी नहीं छिगे—इराली बड़ी जिम्मेदारी श्रावक श्राविका वर्ग पर शास्त्रों ने रखी है। आज मेरे कई भाई कभी कभी जमाने के प्रवाह में बहते हुए हमें राय देने लग जाते हैं कि विज्ञान के साधनों का साधु भी खुला उपयोग करें तो सुविधा आज्ञक रहेगा। वे जमाने के साथ चलने का आग्रह करते हैं। ऐसा आग्रह करते हुए वे दृढ़ नहीं रोचते कि जब बांध की पाल का एक ही कण नीचे गिरता है तो उसारो आशंका बन जाती है कि एक—एक कण गिरते हुए एक दिन समूकी दीवार ढूढ़ जाएगी और बांध फूट जाएगा।

जैगदर्शन ने साधु जीवन को चारों ओर से इस तरह बांधा है कि उराके पतित होने के अवरार न रहें। एक गर्यादा चाहे वह छोटी ही हो, जब टूटती है तो सारी मर्यादाओं के छाये के गिरने में अधिक समय नहीं लगेगा। आज कोई लाउडस्पीकर के उपयोग की सलाह

दे तो कल साधु के रूपा एवं दुर्बल होने पर मोटर या रेलगाड़ी में सवार होने की भी सलाह दे सकता है। फिर सुविधाएं तो बहुत हैं। उनका भी उपयोग कर्यों नहीं किया जाए। जब बांध पूर्ता है तक दुनिया को दीखता है। उसारों पहले गहराई से रामाङ्ग में नहीं आती। फिर तो शीर रक्षा का भाव प्रगुण हो जाएगा और रांथग के आधार पर आत्म रक्षा गैण बन जाएगी। इसीलिये श्रावक श्राविका वर्ग जो अपनी मर्यादाओं से तगिक भी हठने के बजत साधु को कड़ी चेतावनी दे देनी चाहिये। उसके जीवन की यिकृति के रास्थ नरगी नहीं बरतनी चाहिये। यह नरगी या गोंह ही राख्य—जीवन को बिगाढ़ने वाला राबित हो सकता है। इसी कारण देविका रानी ने वह कड़ा प्रश्न दीर्घ सिंधारे के पोनों मुनियों से पूछ दी लिया।

श्रावक जीवन भी कहाँ है ?

गुनियों के उत्तर को बताने से पहले गीं आपरो आपने श्रावक जीवन पर भी एक दृष्टिपाता करने का आग्रह करलंगा। आज की दुनियां में 'बनिया' शब्द को बड़ी हिकारात के साथ देखा जाता है। उसका कारण है कि ज्यापार में आप ज्यापारियों की जो पहचति है वह अमर्यादा और अनौरिकता की ओर बढ़ रही है। जोकोपदाद बन रहा है कि गरीब का खून वूराने वाला बनिया है। वथा वह गुंह लगाकर गरीब को नरा से खून लूस रहा है? यह तो आलंकारिक भाषा है। किन्तु जब कोई अपनी ही स्वर्थपूर्ति को सबसे ऊपर मानने लग जाए और उसके लिये कैसा भी जघन्य कर्म करने में संक्षेच न करे तो वैसे अनर्यादित जीवन के लिये आखिर क्या कहा जाएगा?

श्रावक गयादित होना तो वह राख्य—जीवन की गर्यादाओं को भी बांध कर रख सकेगा। उसे साधु का मार। पिता कहा गया है तो वह वथा स्वयं के आवरण की दृष्टि से कम जिम्मेदारी है? दोनों के जीवन की शुक्ष्मा किसी रूप में परस्पराधारित है। प्रकाश दोनों ओर होना चाहिये। सोन्ते कि एक कांच की हांडी में एक दीपक रखा हुआ है जिसके प्रकाश से ही डांडी प्रकाशित हो रही है। अब कोई उस हांडी की रक्षा का तो स्वाल रखे किन्तु दीपक का तैल नीचे गिरता

जाय और उरारो वह बुझाने की स्थिति में पहुंचने लगे, किर भी उरो दीपक का कोई ख्याल नहीं हो तो ऐसे पुरुष को आप क्या रहेंगे ? साधु जीवन को कांच की हाँड़ी की उपमा दी है तो पंचमहाब्रत रूप दीपक हैं। अब बहु के वेश की रक्षा को जाए या दीपक के प्रकाश की तथा उस रक्षा के लिए श्रावक वर्ग को गी कैसी क्षमता बनानी होगी—इह आप लेगों के लिये विवारणीय है।

देविका रानी आश्चर्य चकित रह गई

तीसरे सिंघाले ले मुनियों ने देविका रानी का समाधान किया कि छहों भ्राता मुनियों की आकृति एक सी होने से उन्हें भ्रम हो गया है, वरना कोई भी गुनि उनके यहां भिक्षा हेतु एक रो दूरारी बार नहीं आया है। यह रुनकर देविका रानी जो अपने बचपन की एक धटना याद हो आई, जब उनकी भौजाई ने एक मुनिराज को शिरस्थूला किया था तब उस मुनिराज ने देविका के लिये कहा था कि वह एक अद्वितीय गाता होगी। इरा घटना के राथ छहों गुनियों की आकृति ला रगरण करते हुए अन्तरंग भावनाओं की तोषता के लारण रानी को अपने पूर्वजन्म का नक्शा दिखाई दिया। वह सोबने लगी कि किस अन्यनामा मापा ने ऐसे स्वरूपवान् लालों को जन्म दिया और उन्हें एक साथ अरिष्टनेमि शगदान के चरणों ने स्तौषं दिया ? वह यह जानने के लिये उत्सुक हो उठी तो जिज्ञासावश अरिष्टनेमि प्रश्न के पास ही पहुंच गई।

उरा रागय देविका रानी के आश्चर्य ला कोई ठिकाना नहीं रहा, जब गूछने पर ग्रभु ने कहा है कि छहों लाल तो उरी के पुत्र हैं। उसके बाद देविका की भावनाओं की परिणति के सम्बन्ध में काफी विस्तार से वर्णन आया है, किन्तु यहां तो इसे मैं इस संदर्भ में सुना रहा हूं कि प्रश्न ने यह भी बताया कि ये छहों मुनि अपने चरम आवर्त में पहुंच गये हैं। इस चक्कर के बाद उनके चक्कर खत्म हैं, अर्थात् जन गें ही वे गुवितगारी हो जाएंगे।

भव-चक्र से छुटकारा कैसे ?

वे गडापुरुष तो गुवितगारी हो गये, पर अब तो प्रश्न यह है

कि हुग भवनक्र से छुटकारा कैसे और कब पा राकेंगे ? लैरा कि गैंडे ऊपर स्पष्ट किया है कि जन्म मरण के आवर्तों को आखिरी बनाना है तो उसका प्रमुख साधन सन्त जीवन ही है। यह सन्त-जीवन ऐसा नहीं हो | के बाहर से रंग-झंग तो साज़ का दीखे तथा अन्पर में विकृतियाँ घर कर जाएं। साधु-जीवन की रक्षा में श्रावकों का बड़ा दायित्व है और हर कदम पर गूल में इराका ध्यान रखना चाहिये कि साधु जीवन के प्रति उनका व्यवहार उनके पंच महाव्रत की सुरक्षा के रूप में उचित हो।

मेरे भाई बहिन मेरे नाम का गुणगान करते हैं, इससे मुझे बहुत संकोच होता है। मैं सोचता हूँ कि यह गुणगान करके मेरे साधु-जीवन की सुरक्षा कर रहे हैं या गेरे साधु जीवन के अन्पर हल्का सा खून का रंग लगाने जी चेष्टा कर रहे हैं। आत्मा जागृत रहे तब तो कुछ नहीं, पर कभी अहंगन्यता का भाव आ जाए तो साधु जीवन में धुन लगता है। मेरे कहने का अभिप्राय यह है कि आपका प्रत्येक अचरण ऐसा होगा जाहिये जिससे साधु अपने मर्यादित जीवन के प्रति निरंतर रातक बना रहे।

प्रत्येक भव्य जात्मा का यही लक्ष्य होना चाहिये कि वह अपनी साधना के बल पर अनादि काल के जन्म-मरण ले चक्र से मुक्त होये। यह गुरुवेरा (भी होगी) जब उत्ता वसा आवर्त में पहुँच जाएगी। प्रभु की रोग की परिपक्व भूगिका का अवरार भी अवश्य आ जाएगा।

लाल भगवन

पपप

6.9.72

कर्त्तव्यनिष्ठा की आवना

"दोष टले वलि दृष्टि खुले रे....."

जीवन की समस्या एंड्रेडॉ मंगलमय प्रसंग के साथ व्यतीप हो—यह आवना प्रत्येक मानव के मस्तिष्क में प्रायः चला जरती है। यस्तविक स्थायी मंगल तो प्रगु का स्मरण ही है। जहाँ आत्म-कल्याण की प्रशरत भूमिका पर आरुह होने का यज्ञ जरना हो, वहाँ तीर्थकरों का नाम—रामरण जरना नितान्त आवश्यक है। उनकी बदौलत ही आज इस विवेत्र विश्व में शान्ति का मर्ग दृष्टिगत हो रहा है। यदि वीतराग देवों ने अपने दिव्य अनुगामों के आशार पर अपने केवल—ज्ञानजग्न्य ज्ञान का बोध—रांरार को नहीं कराया होता और उपदेश रूप उनकी पवित्र वाणी परम्परा से हनारे सामने नहीं होती तो विषमताओं से भरे इस वर्तमान विषमता+ युग में शान्ति का प्रकाश क्या कहो नजर में आता ?

भगवान् संभवगाथ की प्रार्थना जब हम कर रहे हैं तो यही राह्य हगारे गन और गरितिष्क में रहना चाहिये कि उनकी पवित्र वाणी हगारे आत्म—विकरा का पथ—प्रदर्शन करती रहे। यह अवश्य ही विवारणीय स्थिति है कि तीर्थकरों की उद्धोषक वाणी जो सुनते हुनते भी उस राह पर आगे बढ़ने के लिये वास्तव में अधिक चरण नहीं उठते। इस जागरणहीनता के पीछे ऐसा महसूस होता है कि अज के लोगों में अधिकांशतः कर्त्तव्यनिष्ठा का अभाल है। हमें क्या करना चाहिये— जाब विवेक के इस राधारण धरातल पर भी जीवन नहीं चले तो कर्त्तव्य—भावना जना ही कैसे लेरी ? इस रिति जो

हीक से समझने के लिये प्रभु संभवनाथ की प्रार्थना का अर्थ अनुसन्धान ही हम शालीप्रकार कर सलें तो विकृति के अन्धाकार में विकास के प्रकाश की किरणें जगमगा उठेंगी।

दोष-दर्शन एवं परिमार्जन

प्रभु की प्रार्थना का रीधा प्रभाव यही होना चाहिये कि जीवन की ऊन-नारिक खेति के विश्लेषण को दिशा में हमारी वृत्ति सजग हो। पृथग्भूमि के निर्माण के प्रसंग में धार्द भय, द्वेष और खेद दशाओं की क्षीणता आती है तो उसका प्रतिफल यह होगा कि स्वयं के दोषों लो देखने की आदत बनेगी। संसार में दूसरों के दोष देखने की प्रवृत्ति तो बहुत गिलती है किन्तु गडानता लरी को वरण करती है जो दूरारों के गुण और रवयं के दोष देखे।

दोष दर्शन की इस मनोवृत्ति से अन्तर के परिणामों की उल्काष्टरा॥ हक्की जाएगी और उसके साथ ही उन दोषों को दूर करने एवं उनके स्थन पर सद्गुणों को ग्रहण करने की आकांक्षा तीव्र हो जाएगी। यह परिमार्जन तब जीवन विकास का मूल बन जाएगा। निरन्तर अपने दोष देखते रहने की जगृति बन जाए तो यह जागृति भी निश्चिवता रूप रो बन जाएगी कि अपना दोष पिखाई देते ही उसे परिमार्जित करने का प्रयास ब्राह्म कर दिया जाए। परिमार्जन ही पवित्रता का वाहक बनता है। आत्मिक पवित्रता की वृद्धि के परिणामस्वरूप चरण आलतं या चरणकरण का प्ररंग बन जाए तो यह काँई आश्चर्य का विषय नहीं होगा।

दोष-दर्शन एवं परिमार्जन के रूप में वरचुपा दृष्टि ही बदल जाती है। पहले जिन रांगारेक लागत औं की नजर रो वरचुरवरूप को परखा जाता था, तो उसमें गट, द्वेष और खेद की वृत्तियों के कारण स्वार्थ, स्वरक्षा और प्रतिशोध के गावों को पहले पलड़ा जाता था—उसमें उदारचित्तता का अभाव होता था किन्तु परिवर्तन ले बाद दृष्टि—भेद यह हो जाता है कि वह अपने रवार्थों की बजाए, दूरारों को किरी भी प्रकार दृष्टि करने वाले अपने दोषों के पहले देखता है तथा देखता॥

ही नहीं उन्हें सुधार कर अपने व्यवहार को दूसरों के प्रति ज्यादा से ज्यादा उदार एवं सहयोगी बनाता है। उदारता से ल्याग और सहयोग से सदाचरण का प्रस्तार होता है।

दोष टले : दृष्टि खुले

आपने ही अन्तर गें झांककर जिरा आत्मा को अपने ही दोषों को बुन बुनकर जानते और उन्हें परिमार्जित करने का अभ्यास हो जाता है, उसे दो लाभ होते हैं। पहला तो यह कि उन दोषों के फलस्वरूप आने वाली विकृति से तथा गविष्ट में उन दोषों के किरण पैदा हो जाने की आशंका से वह आत्मा बच जाती है। दूसरे, अपने ही रवाशों के धेरे में धूमने के कारण जो रांकुचित दृष्टि बन जाती है, वह दृष्टि इस अभ्यास से खुलकर उदार एवं विरत हो जाती है। अन्दर के दोषों को परिमार्जित कर लेने के बाद खुली और भली दोनों प्रकार से दृष्टि का विकास होता है।

किसी भी स्थल पर दोष को यदि दोष के लग में ही देख लिया जाए तो उस दोष का विस्तार तो वहीं रुक जाएगा, बल्कि दोष फिर ठिकेगा भी नहीं। जौरों किरी गांव न गें चोर प्रवेश कर रहा है और वोरी करने के लिये तापर हो रहा है, उस रागय उरों देखकर यदि मकान मालिक चोर को सम्बोधित करके कहे कि तुम चोर हो, चोरी करने के लिये आये हो किन्तु मैं तो जगा हुआ हूं अब देखो, कर लो चोरी— तो क्या वह चोर फिर चोरी करने का राहरा कर राकेगा ? इस प्रशांग को आपने जीवन के राध घटाएं कि जब दोष रन्धी वोर ससमें प्रवेश कर रहे हों और सद्गुण रूपी धन को बुराने वाले हों। किन्तु उस समय यदि गृहस्वामी की आत्मा जागृत हो तो क्या दोष गहां टिके रह सकेंगे ? यह आत्मा जिस इरीर के घेरे में जिन कार्यों के साथ, जिन दोषों के समूह में अपने अपूर्व प्राक्रम को लेकर बैठी है, वह जब प्रारम्भ ही गें दोषों को पहिचान ले तो क्या उन तरजुओं के रागने आत्मा कायर बनी बैठी रह राकेगी ?

सही वस्तुस्थिति तो यह है कि परिमार्जन के कारण आला

की दृष्टि खुल जाती है। वह पूर्णप्रय सजग बन जाती है। जगे हुए आदमी को लौन लूट सकता है? लुटता तो नींद में सोने गाला है जिसकी आर्थिक बन्द रहती है। आत्मा की यह सावधान अवस्था उसे उन्नति की ऊँची-ऊँची रीढ़ियाँ आतानी रो चढ़वा देती है।

जागृत चेतना से सतत गति

जब ज गृह बेतान। इस प्रकार उत्तेक स्वरूप में व्यापा हो जाए तो आत्मा की गरिशीलता शुरू ही नहीं होती, अपितु प्रगरिशील हो जाती है। उस चेतना के अस्तित्व में काम, लोभ, गय, ह्वेषादि विकारी तत्त्व स्थान और क्षय होते चले जाते हैं। आत्मा की शक्ति को दबाने या नष्ट करने की क्षमता तब दोषों गें नहीं रहती और पहले का संचित कर्म रामूँह भी क्षीण होकर करने लगता है। खुली और भली दृष्टि से यदि इन पर्यूषण के दिनों में धर्माराधन किया जाए तो स्मरण रखें, सोने में सुहागा मिल जाएगा। जागृत चेतना इरारो अति जागृत हो जाएगी और ग्रगति का नेग तीक्ष्णतर बन जाएगा।

अनादि काल रो भव-भ्रगण करती हुई आया। गें अब तक दोष पर्शन एवं परिपार्जन की वृत्ति वारपविक रूप गें -हीं बनी, इरी कारण सही रूप में उसकी विकास गति का श्रीगणेश भी नहीं हो सका है। मुँह से गले ही दोषों का कथन किया हो, इस मस्तिष्क ने गले ही कगी कुछ चिन्तन कर लिया हो, जैकिन अन्तःकरण रो दोषों को देखने और रुक्षारने की जागृति का अवरार आत्मा को नहीं गिला। यह आत्मा पीर्धकरों के सहवास में भी रही होगी, किन्तु पृष्ठभूमि के निर्माण के अभाव में ऐसी वृत्ति अभी तक जागृत नहीं हो सकी। जागृति नहीं तो फिर फिर गति कैसे बन सकती है?

कर्त्तव्यनिष्ठा की भावना

जब किसी की दृष्टि बाहर कम और गीतर अधिक घूमती हो, बल्कि रातत जागृत रहती हो तो उस दृष्टि ल गोठा गल यह गिलेगा कि उसके अन्तर्गत गें कर्त्तव्यनिष्ठा की भावना रातोंपरि बन जाएगी।

अपनी आत्मा का दोष देखना है इसका अभिभाव ही यह है कि उसे अपने सभी प्रकार के कर्तव्यों के प्रति सतर्कता बरतनी है।

हग अपने कर्तव्य को गूलते हैं और यथाराग्य अनने करणीय कार्य को नहीं कर पाते हैं, वही तो दोओं लो आत्मा गें बुलाने और इकड़े करने का खुला उमन्नना होता है। कर्तव्य को भूलने का अर्थ ही दृष्टि का बन्द होना माना जाएगा। कर्तव्यहीनता खवां सबसे बड़ा दोष होता है। कर्तव्यनिष्ठा की शावना को बनाने और बनाये रखने के लिये आत्मा की सतत जागृति एक अग्निवार्य शर्त है। जह—जब आत्मा को अपने कई जनों गें गहान् विभूतियों का रांगांग गिला, उपदेशागृत का पान भी किया किन्तु उसमें तब—तब कर्तव्य बुद्धि के जागृत नहीं होने से वह अपना उद्घार नहीं कर सकती। वैसी अवस्थाओं में यदि वह एक वक्त भी अपनी दृष्टि खोल देती और जाग जाती तो आज ऐसी दुरावशा उराकी नहीं दिखाई देती।

पहले की कर्तव्यहीनता का तो जो गरिपास बनना था, वह बचुका, लेकिन अब भी उपरार है—गानव जाना गिला है तो कर्तव्यनिष्ठा को जागा कर आप अपने ही जीवन गें नहीं—किन्तु परिवार, रागाज, राष्ट्र और सम्पूर्ण विश्व के जीवन में एक अनन्ददायक परिवर्तन ला सकते हैं।

कर्तव्य-बुद्धि का मूल

जो हमको लगता है, वह पहले है और जो हमको पाना है, वह बाद की बात है—इस रूप में कर्तव्य और अहिकार की तुलना की जा सकती है। कर्तव्य-बुद्धि का गूरु अधिकार वेपना के धरापर पर ही आरोपित और पारेपोषेत होता है। यदि दृष्टि खुली हुई है, अनार्दीरोयां सजग हैं तो वह व्यक्ति कभी भी कर्तव्यहीन नहीं हो सकत है। किसके प्रति क्या करना है—इसका उस व्यक्ति को प्रतिपल ध्यान रहेगा। कर्तव्य ज्ञान का रपष्ट तात्पर्य यह है कि जो व्यक्ति जिरा क्षेत्र, रथान अथवा रानाय गें कार्य करता हो, वहां पहले वह इस बात के लिये रातक हो कि उसे लिराके प्रति क्या करना है—उसका कर्तव्य

क्या है ?

कर्तव्यों के विभिन्न सम्बन्धों की दृष्टि से कई प्रकार हो सकते हैं किन्तु बुद्धि गूँज में यदि राजग है तो वह व्यक्ति कर्तव्य-विस्तृत नहीं हो सकेगा। कर्तव्यनिष्ठ व्यक्ति जहाँ भी होगा, वह अपनी दृष्टि को खुली और गली बनाये रखेगा। कदाचित् उसको गृहस्थी में कार्य करना पड़े रठ हो जब वह राजान्बन्धी अपने कर्तव्यों को पूरा करेगा। किन्तु उस समय में भी वह आत्मा के प्रति अपनी स्वजगता के कर्तव्य रो विग्रुख नहीं बनेगा। ऐसे कर्तव्यनिष्ठता का अरार भी प्रभावोत्पादक होता है। जैसे भिष्ट पदार्थ के अणु अणु में भिष्टता समाई रहती है अथवा खिले द्वारे पुष्ट के कण—कण में सुवास भरी और बिखारती रहती है, उसी प्रकार कर्तव्य-बुद्धि का सुप्रापाव अनायारा ही विस्तृत रो विस्तृत क्षेत्रों में व्यापक बनता जाता है।

इसका यह कारण भी है कि एक कर्तव्यनिष्ठ व्यक्ति के रागने कैरी भी विषाणु परिशेषियाँ वहों न उपरेखा हो जाए—रांझटों की विजलियाँ वहों न कहक कर ढूढ़ जाएं, वह अपनी कर्तव्यनिष्ठा को कदापि तिजांजलि नहीं देता है। वह हर राग वह हलत नै निष्ठा के साथ बलता है और उसका परिणाम अलौकिक रूप में प्रकट होता ही है। अन्तगढ़ सूत्र के प्रसंग आप सुन रहे हैं—गजसुकमाल मुनि ली कर्तव्यनिष्ठा किनाने अनुपम और प्रेरणाप्रद यक्ष हैं? गजसुकमाल मुनि की जानकरी के लिये ही तो श्रीकृष्ण वासुदेव ने तेला किया था और जब से तेला करना अरि महत्वपूर्ण माना जाने लगा है।

कर्तव्यनिष्ठा गृहस्थों की

यह तेले की तपरथा श्रीकृष्ण के तेले रो गहवपूर्ण तो बन गई। मगर श्रीकृष्ण ने वह तेला कोई आत्म कल्याण अथवा मनः शुद्धि के लिये तो किया नहीं था। वह तेला तो गृहस्थाश्रम के प्रयोजन से किया गया था, किन्तु उसाँहे कर्तव्यनिष्ठा का भाव ही भरा हुआ था। इस कारण तेले ली तपरगा प्रभाविक बन गई।

गृहरथ भी धर्म का अनुगामी होता है और इसालेये उसके धर्म को गृहरथ-धर्म कहा गया है। इस गृहरथ धर्म में भी कर्तव्यनिष्ठा ला-

खगन रावौपरि ही है। श्रीकृष्ण ब्रिखंड भिपति थे। अतुलनीय राता और सगपति के स्वामी थे तथा विशाल साम्राज्य के संचालन में व्यस्त रहते थे। ऐसी स्थिति ने वया छोटे मोटे कामों का उन्हें ख्याल भी रह राकरा है? किन्तु ऐसा ख्याल भी एक कर्त्तव्यनिष्ठ को बराबर रहता है। विशाल राग्राज्य के राथ उनका घर था और उरा गृहरथी गें किस—किस के प्रति उनका वदा कर्त्तव्य है—इसका भग उन्हें था। ऊंचे रो ऊंचे पद पर बैठकर भी उन्हें अपना छोटे रो छोटा कर्त्तव्य भी बराबर दिखाई देता था।

श्रीकृष्ण माराकाल सदा अपनी +ता देविका का वरा वन्दन किया लरते थे। ब्रिखंडाभिपति बन गये हैं तो गाता को भूल जाएं—उसके समान को भूल जाएं—ऐसा उनके आलरण में नहीं था। उस दिन की बात है कि जब वे माता को नम्स्कार करने के लिये उनके पारा पहुंचे, तो उन्हें यह गढ़सूरा हुआ कि गाता आज उदारा है। गाता के प्रति कर्त्तव्य बुद्धि उनके मन में सजग थी और कर्त्तव्यनिष्ठा के संस्कार पुष्ट थे। देविका उस समय वास्तव में विनिराशी और उनकी चिन्ता गही थी कि ऐरो छः छः दिल्ल पुत्रों को उन्होंने जना दिगा किन्तु उनका लालन—पालन वह नहीं कर सकी—उनके संस्कार निर्माण ली दृष्टि से उनका कोई प्रयास सम्भव नहीं बना।

रत्नोंग आचार्य श्री जी देविका रानी की इरा चिन्ता लो इन कड़ियों में व्यक्ति करते थे—

इम झुरे देविका रानी
या तो पुत्र विना बिलखानी.....आदि

उनकी उरा चिन्ता के रानय श्रीकृष्ण पहुंच गये तो उन्होंने गाता की चिन्ता का कारण पूछ ली किया

वर्तमान दयनीय दशा

आपको मैं देविका रानी व श्रीकृष्ण की कर्त्तव्यनिष्ठा ली कहानी में आगे ले जाऊं—उससे पहले गृहस्थों में होने लायक कर्त्तव्यनिष्ठा की वर्तमान दयनीय दशा का कुछ चित्र प्रस्तुत करना चाहूंगा।

आज के गृहस्थों के पास श्रीकृष्ण जितनी सत्ता और सगपति

तो नहीं है न, बल्कि बहुत है कि मात्रा में किन्हीं के पास होगी, किर भी जरा सी सत्ता या सम्पत्ति पाते ही उनमें जिस मत्रा में अग्रिमान बढ़ जाता है, उसका कोई हिसाब नहीं। और यह अशीमान भी चन्द्र चांदी के दुकङ्गों पर इस कदर बढ़ जाता है कि कर्तव्यनिष्ठा तो उनमें कठई रागाप्त ही हो जाती है। छोटे—पोटों के साथ व्यवहार रखने की बात तो छोड़िये, वे अपनी जन्मदातृ नारा के वरणों में झुकने में भी अपनी हेठी मानने लग जते हैं।

मैं आप लोगों से ही पूछूँ कि आप में से कितनों ने नियम ले रखा है कि प्रातःकाज नियम प्रति जननी के वरणों में नत गरता होकर उनका राहगा आशीर्वाद प्राप्त करन। इरी तरह कॉलेज की डिग्रियां प्राप्त करने वाले और ऊंची सरकारी पोस्टों पर बैठने वाले भी यह समझ बैठते हैं कि वे तो बहुत ऊंचे हो गये हैं एवं अपनी सामाज्य कर्तव्यनिष्ठा के भी अग्रिमानवश छोड़ देते हैं। वे अपने गाता—पिता तक के कुछ नहीं रागझाने लगते हैं।

कहाँ तो रान्तान के अपने गाता—पिता के प्रति विनम्र और आज्ञामरा कर्तव्य ढो॥ है और कहाँ वर्तमान रागाय में कुछ राता—राम्पति अथवा पद प्रतिष्ठा मिलते ही सन्तान अपने माता पिता की भयंकर अवज्ञा करने पर उतारू हो जाती है? उन अग्रिमानी अफसर ली कहानी तो आपने सूनी होनी जिन्होंने आफतारों के बीच हैठे होने से आपने किरान पिता ले आने पर उनका परिचय आंग्रेजी में नौकर के रूप में दे दिया और वह किसान पिता ने अपने अभिमानी हैठे पर वहीं जूपे छरसा कर उसको अवल दुरुस्त की। माता पिता और सन्तान तक के बीच में आज के युग में जिस प्रकार कर्तव्यनिष्ठा का अगात दिखाई दे रहा है, यह स्थिति वास्तव में अतीव शोकनीय है।

माता-पिता और सन्तान के परस्पर कर्तव्य

देविका रानी को जिस मुख्य बात ला सनाप दुआ, वह यह थी कि वह उन छ पुत्रों को जन्म देकर भी उनके साथ अपने मातृत्व के कर्तव्यों का निर्वाह नहीं कर सकी। यह कर्तव्यनिष्ठा की दृष्टि से ही झूर रही थी कि यादे वे छहों पुत्र उराकी गोदी में खेलते और बड़े

होते तो वह भी उनके उच्च रांगकारों के निर्गांग की भागीदार हुई होती। क्या आज माताओं को सन्तान के प्रति अपने इस मूल कर्त्तव्य का भान है कि उन्हें प्रारम्भ से ही अपने बालक बालिकाओं को जीवन निर्गांण की कला रिखानी चाहिये। माता का इच्छा ही कर्त्तव्य नहीं है कि वह शरीर के लोथड़े के रूप में केवल रान्तान को जाना ही दे दे, बल्कि उसके शरीर—गन्न के सिवाय श्रेष्ठ संस्कारों एवं पवित्र गावनाओं की आगेल छाप भी उरके गन एवं गरितज्ज डालने का उराका प्रधान कर्त्तव्य होता है।

माता पिता का ही प्रभुख प्रभाव होता है कि सन्तान वा आन्तरिक रांगकारों दो ओतप्रोत आदर्श जीवन बन पाता है। ऐसी एक ही सन्तान हो, तब भी वह नरम हितकर होती है, लेकिन माता—पिता अपने मजे में छुबे रहें और सन्तान की शिक्षा दीक्षा के प्रति बेमान रहें तो वैसी कई रान्नानें भी उन्हें शान्ति नहीं पहुंचा र करी हैं।

इसी सिकके का दूसरा पहलू भी उत्ताना ही विनानीष है। लड़के कुछ पढ़कर या अवराय गें जाग कर थेथे हो जाते हैं और कुछ सापत्ति क संचय कर लेते हैं तो अपने आप को कुछ का कुछ समझने लग जाते हैं और माता पिता की तनिक भी जरवाह नहीं करते। उनको माता पिता के प्रति अपने सामान्य से कर्त्तव्यों का भी ख्याल नहीं रहता। गेरे अनुभव की ही एक बात सुनाऊं कि एक स्थान पर मैं पहुंचा तो लकड़ी के सहारे बड़ी कठिनाई से चलकर एक घृद्वा वन्दन करने आई, तब उसने बड़े करण रपर में कहा—हार पा ! क्या कहूँ नैं बहुत दुःखी हूँ। मैंने उत्सुकता वश पूछा—क्या हुआ मांजी, आपको ? बुद्ध बोली नेरी सेवा करने वाला कोई नहीं है, महराज ! बाद में खेज करने पर पता लला कि उस वृद्धा के बार नौजवन व कगाऊ पुत्र हैं किन्तु रामी अपनी—अपनी परिणयों के राश अलग—अलग रहते हैं और दृढ़ माता की तरफ कोई देखता भी नहीं। रह संसार की बड़ी विचित्र स्थिति है।

आज का इन्सान बड़ी बड़ी लोगों मारपा है, मगर छोटे छोटे कर्त्तव्यों को भी गूला देता है। बहुतेरे शाई—बहिं लग्ने—चौड़े ज्ञान ली वर्दी कर लेंगे, लोला, लोला व गाराखगण ८७ की पारस्या कर लेंगे

किन्तु परिगार, रागाज, राष्ट्र या विश्व के प्रति अपने रागान्य कर्त्तव्यों का भी ध्यान नहैं रखेंगे यह कितानी विषम स्थिति है? ऐसा सम्भव है कि कई शाई-बहिन तेला करके लालसा रखते होंगे कि जैसे श्रीकृष्ण के तेला करने पर देव आदि था, वैरो हणको भी देव दर्शन दे और हणरा गनोरथ पूरा करें किन्तु ऐसी लालरा के पहले श्रीकृष्ण ली कर्त्तव्यनिष्ठा का शरांश तो अपने अन्दर दैदा कीजिये।

एक माता : हजार शिक्षक

कहावत है कि एक गाता की शिक्षा बच्चे के लिये हजार शिक्षकों के बराबर होती है। गाता कर्त्तव्यनिष्ठ रही तो यह बहुत कग होगा। के उसकी सन्तान कर्त्तव्यनिष्ठ न बने, व्योकि बवमन में डाले गये संस्कारों का पूरे जीवन तक अभिट असर बना हुआ रहता है। वीर क्षत्राणिया गालने में जब अपनी सन्तान को दीरखस की लोरियां सुनाया करती थीं तो उस रूप में संस्कारित उनकी तीर सन्तान भी ऐसी होती थी कि केरारिया बाना धारण करके जब वे युद्ध-क्षेत्र में कूदा करते थे तो रियर कट जाने पर भी उनका धड़ धण्ठों तक तलवार धुगाता रहता था। उसको जुँझारू कहते हैं। वैसी वीरता की भावना जगाने वाली और बालक में शौर्य के अनुरूप संस्कार गर्ने वाली लोरी की कुछ पंक्तियां देखिये—

बालो, पांखा बाहर आयो, माता बैण सुणावे यूं।

म्हारा धोला दूध में कागरता को, कालो दाग न लाइये थूं

उतरी बेर हिलाइजे रे धरती, जितरा मैं थने झोटा धूं।

कहने का अभिप्रय यह है कि बालक में कर्त्तव्यनिष्ठा की शिक्षा माता के पूर्ध से ही प्रारम्भ होनी वाहिये। वरित्रशील व्यक्तित्व के निर्माण की आधारशिला यहीं रखी जाती है। संसार लैर ईर्म दोनों क्षेत्रों में देढ़ीयमान जीवन की सृष्टि करने वाली सर्वप्रथम गूमिका में माता ही होती है।

प्राचीन काल में गाताएं अपनी रान्तान के कहती थीं—“रिद्धोरि। बुद्धोरि। निरंजनोऽरि.....” और वह रान्तान वारतव में

रा॒, कृष्ण महावीर और बुद्ध बन जाती थी। मदालसा महारानी एक आदर्श माता के रूप में विद्यात है जिसने हर्षपूर्वक अपने सातों पुत्रों को दीक्षित बना दिया।

आज की माताओं को हरा रात्रि की ओर ज्ञान देना है तथा स्वयं कर्त्तव्यनिष्ठ बनकर अपनी सन्नान में कर्त्तव्यनिष्ठा को जगाना है। आज तो वे स्वयं इतनी अज्ञानी हैं कि बच्चों में शुरू से डर और कायरता के संस्कार गरती हैं जिससे बड़े होकर वे ग्राह्य, कर्त्तव्यहीन एवं अनैतिक गृहस्थों का रूप लेते हैं। ऐसी सन्तान से शला किसका भला हो राजता है?

कर्त्तव्यनिष्ठा से ही महानता

सूत्र में वर्णन है कि माता की यिन्ना को जानकर देव लो बुलाने के निमित्त तेला करने के लिये जब श्रीकृष्ण पौष्ट्रशाला में पहुंचे तो उन्हें माता के प्रति अपने कर्त्तव्य का ही ज्ञान था पौष्ट्रशाला को उन्होंने अपने ही हाथों रो पाँछा, वयोंकि नौकर उठाना विवेक नहीं रखता। ये रा—पूरा का रांधारा उपने हाथ रो बिछाया और उपारापन में प्रवृत्त हुए। तेले के फलस्वरूप देव उपस्थित हुआ और उससे उन्होंने अपने सहोदय के विषट में जानकारी ली।

आप बड़े गद पर और बड़े ल्यस्त ल्यक्षित हो सकते हैं किन्तु हर छोटे—बड़े के प्रति उपने कर्त्तव्य का निर्बाह करना सीखें तभी वारसाविक गहानता आपको मिल राकरी है, वरना रवयं के बड़ा गान्त लेने से कोई बहु नहीं डो जाता है।

महानता कर्त्तव्यनिष्ठा से मिलती है। जो अपनी आन्तरिक शायेता को विकसित करके अपने जीवन को पूरे रौर पर नियमित बना लेते हैं, उन्हें उपने कर्त्तव्यों का भी पूरा—पूरा ख्याल रहता है तथा ऐसे ही ल्यक्षित अपनी कर्त्तव्यनिष्ठा के बल पर लोकप्रिय बन गहान् बन जाते हैं।

आत्मा के प्रति कर्त्तव्यनिष्ठा

यदि कोई अपनी निज की आत्मा के प्रति कर्त्तव्यनिष्ठ बन-

जाता है तो उसके लिये कहा जा सकता है कि वह वाहे सांसारिक क्षेत्र हो अथवा धार्मिक—क्षेत्र सबके प्रति अपने यथोचित कर्त्तव्यों ला निर्वाह अवश्य करेगा। आत्मा के प्रति कर्त्तव्यनिष्ठा का अर्थ है—आल्ला के पूजन उज्ज्वल रवरूप को राख़ाना। तथा उसे प्राप्त करने के लिये आहर्निश प्रयत्नशील रहना। आत्मा के प्रति जी गई कर्त्तव्यनिष्ठा ही 'आत्मवत् सर्वभूतोषु' की कर्त्तव्यनिष्ठा से जु़ड़ती है।

शास्त्रकारों ने कहा है—“सुर्वैवा जागरमाणे वा.....” अर्थात् सोते, जागते, उलते, बैठते प्रत्येक क्षण मनुष्य को अपने कर्त्तव्यों के प्रति ज गृह रहना चाहिये। खुली और भली दृष्टि के साथ जो चाचा ज गता रहता है, वह निर्गलता एवं उच्चता के अन्तिग बिन्दु तक पहुँचकर ही विश्रान्ति लेता है। इसलिये मैं इसन ही कहना चाहता हूँ कि पद्यूर्षण पर्व के दिनों में दोष दर्शन एवं परिमार्जन का अग्यारा करते हुए कर्त्तव्यनिष्ठ बनने का रांगल्य किया जाएगा तो उसन जरूर ही गंगलगाय बन जाएगा।



लाल भग्न

7.9.72

साधु से परिचय, पर कैसा ?

“परिचय पातिक घातक साधु शूरे.....।”

प्रभु रामवनाथ की प्रार्थना की पंक्तियों रो नित नया आर्थ ग्रहण किया जा रहा है और वह आर्थ कोई चालारण अर्थ नहीं है—जीवन लो श्रेष्ठता संवाइयों तक पहुँचा देने वाला गुड़ अर्थ है। कवि ने इस जीवन में उन्नतिशील भावों को भर दिया है। जब तक इन पंक्तियों के रस का दोषन नहीं हो जाता है, भगवान् संगवनाथ के नाम से जो अमृत मिल रहा है, उसका पान लगने में कृपणता क्यों की जाए ? यही कारण है कि गाँ एक ही प्रार्थना को कई दिनों तक बोलता रहता हूँ।

रामव है, वही भ इयों के गरितष्क गें विचार पैदा हो राकता है कि पुनः पुनः भगवान् संभवनाथ की ही प्रार्थना का उव्यारण क्यों किया जाता है ? विषट की दृष्टि से उन्हों परमात्मा का नाम अवश्य है। लेकिन अर्थ के अनुसन्धान की दृष्टि से आपको अनुशृति हो रही होगी कि नित्य प्रति नये—नये अर्थों के विन्यास से आरिमक बल ले जाने का प्रयारा किया जा रहा है। भिन्न—भिन्न कलेयों के भिन्न—भिन्न अर्थ भिन्न भिन्न विधि से भिन्न भिन्न रूप ने जब ज्ञान पथ में आपे हैं तो उससे आत्मशक्ति के विकास में प्रगावशाली योग मिलता है। विविध उपायों से जब तक हम आत्मा के विशिष्ट स्वरूप को गहराई रो रागझाने का यत्न नहीं करेंगे, तब तक आत्मा के तेजोरय रखरूप की अनिव्यक्ति का गार्ग प्रशरत नहीं हो राकेगा।

वैसे १० आप देखें १० हमरे सामने एल ही विषय है आला अर्थात् कैसे आत्मावों को शुक्ष बना कर इस जीवन को निर्मल

बनाए और वह निर्मलता किस प्रकार अपने उच्चतम बिन्दु तक पहुंच कर आत्म को सदा—सदा के लिये अपने मूल स्वरूप यानी सिद्ध स्वारूप में प्रतिष्ठित कर दे ?

विभिन्न उपाय : उद्देश्य एक

आत्म—विकारा के गूल एक विषय को लेकर ही हग विभिन्न उपायों एवं विभिन्न विधियों रो नित प्रति चिन्तन करने का प्रयारा करते हैं। भगवान् श्री संभवनाथ की प्रार्थना से यही प्रेरणा निकलती है कि यदि इस आत्मा को संशावदेव ले तुल्य परनात्मा के रूप में विकसित करनी है तो इसमें अपूर्व शक्ति का सांवार करना हो। इसमें उपादान रूप तो आत्मा है ही, किन्तु इसके साथ विशिष्ट निमित्तों के संयोग की आवश्यकता होती है। वह विशिष्ट निर्गत यह गाना गया है कि आत्मा संयम की शक्ति से सम्पन्न बनकर गुणशाली हो। वर्तमान में जितना आत्मा का विकास ज्ञान, दर्शन और चारित्र्य की दृष्टि से है, उसमें निरन्तर वृद्धि होकर वह उत्कृष्टतमा रिथरी की ओर गतिशील बन जाए। यही एक उद्देश्य प्रत्येक गव्य आत्मा के सामने है और रहना चाहिये।

इस उद्देश्य की पूर्ति में गुण्य उवलम्बन, निर्गत अथवा सहयोग जिनसे मिल सकता है, वे साधु पुरुष ही हों सकते हैं जिनकी ज्ञान दर्शन चारित्र्य राम्पन्ता रागान्य रूप रो अधिक अनिवृद्ध रहती है। सिर्फ ज्ञान की ही जटिकता से आत्मा का विकास आगे नहीं बढ़ सकता है। ज्ञान की ही दृष्टि से तो देखों का ज्ञान मानव की अपेक्षा कई गुन अधिक होता है। देव जन्म रो ही अवधि ज्ञान लेकर चलते हैं। देवों का मर्यादित ज्ञान भूत, गविष्य और वर्तमान जी रिश्तति में आत्म—प्रबोध के राश अवलोकन करता है। उनकी तुलना में साधारण मनुष्य का वैसा ज्ञान नहीं होता है। देव से भी ज्ञान के निमित्त तो प्रेरणा ली ही जा सकती है किन्तु असाधन को समाव करने का और आत्मा के वरण विकारा का जठां प्रश्न है, वहां ज्ञान के राश कर्माण वारित्र्य का रान्नन्य छुड़े बिना इस प्रश्न का कोई हल नहीं है।

रत्न-ब्रय की आराधना

देव ज्ञान की दृष्टि से गनुष्ठ रो विशिष्ट आवश्य होते हैं लेकिन शुद्ध चारित्र्य की दृष्टि से उस ज्ञान के अनुरूप रथयं के आचरण जो प्रसंग उनके साथ नहीं हैं मोक्ष की साधना के लिये रत्न ब्रय जी आराधना परम आवश्यक है और यह रत्न ब्रय है ज्ञान, दर्शन और चारित्र्य। इन तीनों रत्नों को जहां एक राथ रखा जा राकता है, वह एक ही गानब जीवन है और इरी कारण इरा जीवन को दुर्लभ और उत्तम बनाया गया है।

आत्मव वारित्र्य की दृष्टि से जो आत्माएं अपने विकारा जी चरम सौम रूप शुद्ध स्वरूप अर्थात् मोक्ष को प्राप्त करने की इच्छुक होती हैं, उन्हें अपने समकक्ष से अधिक रत्न ब्रय की विशिष्ट आराधक आत्माओं का राम्बल गिलना चाहिये। ये विशिष्ट आराधक उन्नतिकामी आत्माओं के लिये राम्बल गार्गदर्शक का कार्य करेंगे ताकि उन्हिं के मार्ग पर आगे बढ़ते हुए भटकाव के स्थिरि नहीं बने।

सन्तों की संगति अनिवार्य

इरा भावना को ज्य न रै रखकर अनिवार्य गाना जाना बाहिये कि यह विशिष्ट सम्बल सन्तों की संगति से ही उपलब्ध जो सकता है। सन्तों के सापर्क से ही चरित्र—पालन की दिशा में उग्रगामिता हो राकेगी। प्रार्थना की पंकितयों में यही राकेत है—

परिचय पातिक घातक साध शुं रे
अकुशल अपचय चेत।
ग्रथ अध्यातम श्रवण मनन करि रे
परिशीलन नय हेत ॥
.....संभव ते धुर सेवो सवे रे।

कहा गया है कि राधु के राध परिचय होने से घोरतग पापों का भी नाश हो सकता है। सना पुरुषों का सामीय है 'धारक पारिक' को कथ करने वाला है। आगे कहा है कि सनाजनों के संसर्ग में जाने से अकुशल अपचय का भी नाश होता है। इसी कारण

भास्त्रीय संस्कृति में तो प्रारम्भ से विवेकशील दुरुषों ने सन्तों के महत्व को सदैव ऊँचा बताया है। वस्तविक सन्त-जीवन ऐसा ही जाल्यल्यमान होता है जिनका परिचय ही कुपूर्तियें एवं कुकृत्यों को शिथिल बनाकर उनको रामूचे तौर पर नष्ट कर देने में राफल होता है।

परन्तु यह सनझने की बात है कि साधु से परिवय किस रूप में हे ? सन् के समीप जाकर यह पूछना कि सनका न म वया है, जन्म कहाँ और कब हुआ, दीक्षा कब ली आदि ही क्या परिचय करने का तरीका होगा ? समझने ली ग्रात है कि इस तरह का परिचय मात्र ही राज्या परिचय नहीं होगा। यह तो एक बाहरी जान-पहिचान हुई जो सांसारिक कार्यों के काम की हे राकृति है, किन्तु आग्रिक दृष्टि से उसका कोई खास मूल्य नहीं। आत्मिक चरिय तरीं होता है जह आत्मा आत्मा से ख्यय मिले और एक दूसरे से प्रभावित हो।

साधु-जन से परिचय करें

इस परिचय का मार्मिक तात्पर्य यही होगा कि विकासकानी आत्मा सन्त-आत्मा की निर्मल आत्मा से आन्तरिक संयोग जोड़े। रांयोग रो भी धीरे-धीरे वह आगे बढ़कर रवरूप की एकरूपता प्रदण करे तो उस परिवय की राष्ट्रीय सफलता गानी जाएगी। जो इस प्रकार आन्तरिक रूचि के साथ साधु जीवन के परिचय में आता है, वह परिचय शनैः शनैः ही सही उसके मस्तिष्क में साधु वृत्ति के प्रति आकर्षण को जन्म देता है। यदि ऐसो आकर्षण का ग्रादुर्भाव उरा आत्मा गें जो जाए तभी रागझाना चाहिए कि वह साधु के परिचय गें आया है। परिवय के बद सम्बन्ध और सधारण सम्बन्ध से घना सम्बन्ध न बने तो वैसा परिवय सार्थक कैसे माना जा सकता है ?

वास्तव में साधु जीवन का ऐसा परिचय ही आत्मा में रहे हुए घातक पातकों का घात करता है तथा आगे से उनके प्रवेश होने ला द्वारा भी बन्द कर देता है। आप अन्तर्गत रूप्र के गत रुक्मिणील ला प्ररांग रुन रहे हैं। राजकुमार गजसुकमाल ने भी तो साधु-परिचय ही किया था और वह परिचय इतना सार्थक निकला कि वे जिन महान्

साधु पुरुष के परिवद्य में आये, उनसे भी पहले अपनी आत्मा का कल्पाण करके सिद्ध अवस्था को प्राप्त हो गये। सच्चे साधु-परिचय का ऐसा ही उत्कृष्ट फल हुआ करता है।

गज सुकमालजी का साधु-परिचय

गज सुकमाल र बाबुगार अभी केगल किशोर वय में ही पहुंचे थे। के उरा भव्य आत्मा ने जब एक-बार अपने बड़े +ई त्रिखंडायेपारे श्रीकृष्ण वासुदेव को चतुरंगिणी सेना के साथ प्रस्थान करते हुए देखा तो पूछ लिया कि वे कहाँ पधार रहे हैं और ज्येष्ठ भ्राता ने गगवान् आरिष्टनेंगि के दर्शनार्थ जाने की बात कही तो गजरुकगाल भी दर्शनार्थ चलने के लिए तुरन्त तैयार हो गये। यह उनके रान्त जीवन से परिवद्य पाने की आकांक्षा का दोताक था।

श्रीकृष्ण को यह ज्ञात था कि जब उन्होंने तेला करके देव आ आह्यान किया था और उससे अपने लघु-भ्राता के शारी जीवन की जानकारी ली थी तो उराने बताया था कि वह छोटी उम्र में ही राधु-जीवन का परिचय पाकर रवर्ग भी राधु बन जाएग। फिर भी श्रीकृष्ण को सना जीवन ८५ पूर्ण अ स्था थी और दे समझते थे कि उसका परिवद्य होने से जब घातक पाप पुंज भी नष्ट हो जाता है तो माता देविका को अदृश्य ही महसूस होगा, वर्सा छोटा भ्राता इस रूप में भी अपनी आत्मा का उद्धार कर लेता है तो यह हर्ष का ही विषय होनेग।

उन्होंने उरे परिव विवाह सानकर ही लघु भ्राता को अति स्नेहपूर्वक साथ बलने की अनुनते दे दी। आत्माभिमुखी व्यवेता लो तो साधु परिवद्य सदैव मंगलमय रूप में ही दिखाई देगा, क्योंकि उसको इस सत्य का ज्ञान होता है कि आत्मा के पिकास का मार्ग इच्छी महाद्वार में से होकर आगे बढ़ता है। आज के युग में भी आप सन्तों के पारेवद्य को गहराव तो देते हैं किन्तु यह आपके रोबने का प्रश्न है कि वह महर्त्व कितने गहरे और स्थायी रूप से देते हैं? आपके परिदार का कोई कोमल गौधा अगर संत जीवन की खाद लेकर

विशाल वृक्ष के रूप में बदलने की आपके सामने अभिलाषा प्रकट करता है तो सोचें कि आप उसकी अभिलाषा को ग्रोत्साहित करते हैं अथवा उसे दबा देना चाहते हैं? सन्त परिचय की कसौटी सन्त जीवन के प्रति रनेड़ की गात्रा रो ही तो आंकी जाएगी, वरना वह परिचय दिखाऊ ठी कहलायगा।

प्रथम सन्तदर्शन से ही यात्रारंभ

श्रीकृष्ण ने छोटे शाई को इसी विचार से साथ में लिया कि यदि किशोर गरितष्कर्मी ही रादरांरकारों को निर्गाण किया जाता है तो उनका भविष्य सुगरित और श्रेष्ठ बने—इसमें कोई सद्देह नहीं रहेगा। श्रेष्ठ संस्कारों को जन्म देने के लिए महासाधु प्रगु के दर्शन से बढ़कर और वथा सशक्त साधन हो सकता है?

राजकीय वैगाव के साथ श्रीकृष्ण की शोशा—गात्रा प्रगु के सम्बवशारण की ओर अग्रसर हो रही थी, उस समय मार्ग में श्रीकृष्ण की दृष्टि एक ऐरी तरुणि पर नड़ी जो उन्हें आपने तरुण भ्राता के लिए सर्वथा उत्तम्युक्त जान नड़ी। उस तरुणि को उन्होंने लाल्हाणिक दृष्टि से देखा तो महसूस हुआ कि इसके सहवास में भाई का जीवन बड़ा ही व्यवस्थित रह राकेन। उन्होंने गार्ग में ही उस तरुणि के पिता रोगिल ब्राह्मण से उसकी पुत्री ली अपने छोटे शाई के लिए याचना कर ली। चारित्रिक गुणों को महत्त्व देने के कारण उन्होंने यह नहीं सोचा कि याचना का काग तो लकड़ी ले पिता को करना चाहिए।

लङ्कके लङ्ककियों के सम्बन्ध के सेलसिले में आज के लोगों की मनोवृति देखें तो खेदजनक स्थिति बनती है। युणों के गज से नापने का ख्याल बहुत कन गाता—पिता को रहता होगा। अधिकांशतः तो सम्बन्ध के मामलों को पैसे के गज से ही नापते हैं। धन को सिर पर बिलाने वाले के लिए क्या यह कहा जा सकता है कि उसे जानेक सा भी साधु परिवय है? धन लिप्सा का बहुत बड़ा बवाल आज समाज में बल रह है और पैसे के परिवय बाली आत्माएं व्यक्त न सही, अल्पकृत राज से ही साधु परिचय के ठुकराती ही तो है।

वह सम्बन्ध अपने छोटे भाई के लिए पवका करके श्रीकृष्ण आगे रढ़े। श्रीकृष्ण ने विधिपूर्वक उस स्थान में प्रवेश किया, जहाँ भगवान् गिराज रहे थे तथा गजसुकमाल ने भी अपने ज्योष्ट भ्राता का अनुकरण किया। रागतशरण में अनेकानेक व्यक्ति भगवान् के दर्शन कर रहे थे, उनकी बाणी का श्रवण कर रहे थे, किन्तु गजसुकमालजी का दर्शन और श्रवण कुछ अनूठा ही था। प्रथम दर्शन एवं श्रवण के साथ ही जैसे उन्होंने अपने आल विकास की महायात्रा का आरंग कर दिया।

रंग में रंगना इसे कहते हैं

इलुकर्णी आत्माओं का ऐरा रवभाव होता है कि ये तुरन्त धर्म के रंग में रंग जाती हैं। व्याख्यन के प्रवाह में से एक धारा श्रीधी गजसुकमाल के अन्तःकरण में प्रवेश कर गई जिसका आधुनिक कवियों ने इन कलियों में वर्णन किया है

“बहु पुण्य केरा.....”

उस धारा ने उनके परिणामों ली धारा को ही नया मोह दे दिया। व्याख्यान रागाप्ति के बद जब नरिषद् उठने लगी तो श्रीकृष्ण प्रतीक्षा करने लगे कि भीड़ निकल जाए तब तक रान्तों ला समागम भी होता रहे। इसी समय राजकुमार गजसुकमाल अरिष्ठनोंमें भगवन् के समक्ष पहुंच कर कहने लगे भगवन्! आज मैंने विश्व के स्वरूप को समझा और मैं आत्मा की स्थिति को भी पहिचान पाया। इस आत्मा के साथ किन-किन वृत्तियों का लोल हो रहा है और उनके पीछे आत्मा किरा प्रकार दिखगिरा ही हुई है—ठा। ए। के इस पतान को गौर प्रष्ठ पेख रहा हूं। इसालिए गैने निश्वय कर लेया है कि इस म्नुष्य जीवन को इन वृत्तियों के पीछे नस्त नहीं कर्ज, बल्कि आपके चरण परिच्य में अक्ल इन घातक वृत्तियों को ही मिटा दू। अतः आप गुझो आपनी चरण शरण में लेकर दीक्षित बना लीजिए।

संसार के समृद्ध ऐश्वर्य के बीच बैठे हुए एक राजकुमार लो पहली बार राष्ट्र जीवन का दर्शन हुआ और पहली ही बार गहान् त्याग

के लिए वे रात्पर हो गये। ऐसी शौर्यमय रात्परता को ही संग ने संगना कहते हैं। उन राजकुनार ने संसार को स्वजन की तरह त्याग देने ला सहज ही में संकल्प बना लिया। मनुष्य के विचारों में परिवर्तन आता है किन्तु राधु जीवन के रांगमंडे वह परिवर्तन कितना अवित बन जाता है—इसले प्रत्यक्ष उदाहरण गजसुकमाल हैं।

अरिष्टनेमि भगवान् तो वीतासाग थे भावी का सब कुछ उनके ज्ञान में था। उन्होंने यही कहा—‘जहां सुहं देवाणुपिया, मा एडिबंधं करेह.....’ अर्थात्—हे देवानुप्रिय ! जैसा सुख उपजे, वह करो, किन्तु जो कुछ करना है, उसमें विजय गत करो। राजकुनार यह रुनकर बड़ों ली दीक्षा हेतु आज्ञा प्राप्त करने तुरन्त राजनियन पहुंचे गये। टिनीत भाव से मारा के चरणों में नमस्कार करके बोले हे मारा! आज मैंने साधु जीवन से परिचय किया। अरिष्टनेमि भगवान् के दर्शन किए। गां ने प्ररान्न होते हुए उत्तर दिया—जल ! तुम्हारे नेत्र पवित्र हो गये। गजसुकगाल ने फिर कहा—ओ जननि ! गैंने उनलों वाणी भी अवण की। देविका रानी ने हर्षविग में छिर उत्तर दिया। बेटा ! तुम्हारे कान भी पवित्र हो गये और पवित्रता ने तुम्हारे हृदय में भी प्रवेश किया। गजसुकमाल ने सोचा कि अब तो माता को स्पष्ट ही कहना पड़ेगा, तो बोले—मातेश्वरी ! तां तो हृदय ने निश्चय कर लिया है कि गैं भगवान् के चरणों में दीक्षा ग्रहण कर लूं।

यह रुनलर देविका रानी एकदग रत्नक रह गई। उराने रोना कि सात सार पुत्रों का लालन पालन मैं नहीं कर सकी, अब यह आठवां पुत्र है जिसे ही मैं गोपी में खिला सकी हूं वह भी यो छोड़कर जागा चाहता है। प्रश्न ने दिलग न लगने का निर्देश जो दे दिया है, अतः अब यह रुकेगा नहीं, सन्त समानम के रंग में वह पूरी तरह भीज नग्या है और दीक्षा लेकर ही गानेगा।

नश्वर के साथ कैसा मोह ?

गानव जीवन गें सुन्दर शरीर, तरुण आगु और गहान् ऐश्वर्य का संयोग एक साथ मिले और उसमें गजसुकमाल की परह कोई उ-

सबको ल्यागाने के लिए इतन शीघ्र पत्पर हो जाए यह साधारण बाप नहीं है। यह जानते हुए भी कि संसार के ये सब भोग नश्वर हैं, पिर भी उनके गोह—बन्धन से छुटकारा पा लेना अति कठिन होता है। नश्वर का मोह ही तो आत्मा को कर्म—बन्धनों से बाहरे हुए रखता है पथा उसे अपने गनाव्य की ओर गुलने भी नहीं पाया है। गाँ के र गङ्गाने पर भी गजरुकनाल ने यही कह—गां ! नश्वर के राश कैरा गोह ? यदि यह अमूल्य समय यों ही गंवा दिया तो नया हुआ सनय वापिस कभी नहीं आयगा। वासुदेव महाराज भी वहीं आ गये। उन्होंने भी जह राजकुमार की दृढ़ अन्तरंग भावना देखी तो चकित रह गये, पिर भी एक पासा फैका—कड़ा कि यदि तुम दीक्षा नहीं लो तो तीन खंड ला राजे हुमें राँप दिया जाएगा।

जिसने आत्मा के अमर राज्य को समझ लिया हो और उसे पाने का संकल्प कर लिया हो उसके लिए तीन खंड छोड़, छः खंड का राज्य भी हुए डो जाता है। गजरुकनाल केरी भी कोगता पर रांगार गें ठहरने को तैयार नहीं हुए। आज का इन्द्रान तो यह रोचता है कि जितना यह सापत्तिशाली है, उतना ही स्वतन्त्र है और सना जीवन की कठिन मर्यादाएं तो बन्धन रूप हैं। क्या यह परिवय सन्त जीवन का स्त्रा परिचय है ? यह बाहर ही बाहर सरोवर ली पाल पर बलने वाले का कथन है। सरोवर में जिसने छुबकी लगाई नहीं, शीतलता के ऊनन्द को जिराने अनुभव किया नहीं—जराके पाल पर खड़े रहकर रासोवर की गीगांशा करने ले कितना प्रागाणिक गाना जा सकता है ?

राही रिथि तो यह है कि यह र म्याति और रांगार की गाथा बन्धन है तथा इनसे रवतन्त्र होने का गार्ग ही राष्ट्र—परिचय है। सोविये, के आप धर से कार लेकर बलते हैं पब अ पके मन में कथा होता है कि आप कार के रवागी हैं। लेकिन ज्ञान की बात यह है कि आप कार के स्वामी नहीं, गुलाम हैं। लार खराब हो जाए तो आप रुक नगये। कार कोई चुरा ले जाए तो आप घबरा गये। तब लार के अनुसार आपका स्वभाव चलता है—ऐसी हालत में आप कर के गुलाम ही तो हुए। ये बारों अभी आपको अटपटी लगती हैं, किन्तु जेरा 'देन अ पका'

साधु जीवन से सब्बा परिवय हो जाएगा। आप सांसारिक पदार्थों के दास न रहकर अपनी आत्म के स्वामी हो जाएंगे, तब सारी स्थिति स्वयमेव स्पष्ट बन जाएगी।

एक आधुनिक प्रेरक प्रसंग

स्वर्गीय आवार्य श्री श्रीलालजी महराज स. अना समागम से चेतना जागृति का एक आधुनिक प्रेरक प्रसंग सुनाया करते थे यह प्रसंग बीकानेर का था। यह हुआ कि वहाँ चार दीक्षाएं होने के थीं, रो चार नाई हजामात करने के लिए आये व चारों हजामात करने बैठ गये। इसी राय पर 'एक पांचव' नाई भी आ गया और उसने देखा कि उसे अवसर नहीं मिलेगा, वह अनमना हो गया। नाई को उपास देखकर वहाँ खड़े हुए एक सेठ के लड़के को जैसे यकायक प्रबोध हुआ और वह उसके सामने बैठ गया कि वह उसकी हजामत बना दे। राब देखते रह गए और उसने भी चारों अन्य दीक्षाधिंशों के राथ दीक्षा ग्रहण कर ली। जिस मृत्यु आत्मा के अनाकरण में १७ बार साधु जीवन का परिवय बैठ जाता है, वह फिर स्वयं साधु जीवन को ग्रहण किए बिंगा नहीं रहता। महत्त्व सन्त जीवन के समर्पक का होता है।

साधु-परिवय से स्वरूप परिचय

गजसुकमल जी की ढूढ़ता देखकर उन्हें दीक्षा की आज्ञा देनी ही पड़ी। गगान् के चरणों में दीक्षित होने के तुरन्त बाद ही गजसुकमल मुनि ने भगवान् रो निवेदन किया—भगवन्! ऐरा॥ गार्ग बाइए कि गौ शीघ्र ही इस राधु परिवय रो रार्व पापकों का धाता करके आत्मस्वरूप का सम्पूर्ण परिवय प्राप्त कर लूँ। प्रभु तो सर्वज्ञानी और सर्वदर्शी थे। वे जानते थे कि गजसुकमल चरम आवर्त में हैं, अतः उन्होंने नव दीक्षित होते हुए भी उन्हें बारहवीं पठिंगा का गार्ग बताया जो हर किरी को नहीं बताया जाता। आगतौर पर जिराकी दीक्षा कग से कम 20 वर्ष की हो एवं जिसकी वय कग से कम 29 वर्ष की हो तो वैसे मुनि को ही भीक्षुपाठिमा की साधना की आज्ञा दी जाती है। आज के वातावरण में तो इस पठिमा की आज्ञा ही नहीं है।

भगवान् से मिक्खु पड़िमा की आज्ञा प्राप्त करके गजसुकमाल मुनि शमशान में जाकर व्यग्रमन्न हो गये। उबर से सोमिल ब्रह्मण ने आते हुए देखा कि उसका होने वाला जामाता तो मुगिवेश में ध्यानरथ बैठा है। यह देखकर वह भयंकर रूप रो क्षुद्र हो गया। और तुरन्त प्रतिशोध लेने पर उतारू हो गया। उसने गीली गिड़ी लेकर गजसुकमाल मुनि के सिर पर पाल बांधी रथा पास की यिता में से उधकते हुए अंगारे लेकर उनके सिर पर भर दिये।

यह कल्पना से भी बाहर होगा कि उस तरुण वय में उसी दिन तो गजसुकगालजी ने रात्त दर्शन किये—वाणी सुनी, उरी दिन दीक्षित हो गये और उरी दिन मिक्खु पड़िग। मैं इस विकट परिवेष का सामना करना पड़ा एवं उस भयंकर वेदना के समय मरण पर्यन्त उन्होंने जिस धैर्य, शान्ति एवं सहनशीलता वा परिचेष दिया वह अद्वितीय था। ऐसा उत्कृष्ट दृश्यान्त कग गिलता है कि उरी दिन वे गुरुकित्गांगी भी बन गरे। एक ही दिन की अवधि मैं रात्त परिचर रो स्वरूप परिवथ और स्वरूप परिवय से स्वरूप प्राप्ति की मंजिल तक पहुँचकर आत्मा से परमात्मा बन गये। परिणामों की विशुद्ध उत्कृष्टता के समक्ष समय कुछ नहीं होता—पल शर मैं इस छोर से उन्नति के उस छोर तक आत्मा की सफल गति स्फग्न हो जाती है।

पातक-घातक अवस्था की प्राप्ति

उन धारकों आंगारों की उराह वेदना लो जिस शान्ति रो गजसुकगाल गुनि ने राहन लिया—वह उनका पूर्णतया रात्तग्रय जीवन में परिवर्तन था। सना जीवन का परिवय पुरना ही प्रगाढ़ बनकर सनामय हो गया। सनामय इसलिए कि उत्पात सनय में उनके सना जीवन ने घेर पापों का सापूर्णतः क्षय कर दिया। वे विचार करने लगे कि मेरा जीवन तो अपूर्व शान्तिमय ही बना रहना चाहिये, क्योंकि जो जल रहा है वह तो शरीर है और उसे तो एक दिन वैरों भी नष्ट होना है, किन्तु मैं तो आत्म। हूँ जो राधैव भग रागर रिथपि मैं रहने वाली हूँ।

ठिक्कीष्ट आत्मिक साधना के बल पर उस समय उनकी आत्मा

ने वर्षम विकास साथ लिया। केवल ज्ञान एवं कैल्पन पर्शन की उपलब्धि के साथ ही पातक घातक अवस्था प्राप्त करके उन्होंने सिद्ध अवस्था प्राप्त कर ली। सन्त परिचय कैसा हो और वह फिस प्रकार से अगिवृद्ध बन जाए—इराका प्रेरणाद यक उदाहरण तुनि गजसुकगाल का गोक्ष प्रराण है।

आप भी करेंगे सन्त परिचय ?

पर्युषण पर्व वल रहा है। आप संमवनाथ प्रभु की प्रार्थना का उच्चारण कर रहे हैं और गजसुकमाल मुगि का दिल्ल्य चरित्र भी सुन रहे हैं तो क्या आप भी करेंगे सन्त—परिचय ? आप इतना सुनकर राम ज्ञा गये होंगे कि रान्त जीवन का परिचय पातकों की धात करने वाल होता है। इस रात के आदर्श सदाहरण के रूप में गुनि गजसुकमाल की मुख्या के प्रसंग ने भी आपली भावना को उभारा होगा। फिर तो सम्पूर्ण परिचय नहीं हो तो न तहीं, पर कुछ कुछ परिचय करने का तो आप लोगों का निश्चय अवश्य बना होगा। जितन बन राके—अपनी—अपनी गर्याद रो वह भी श्रेयरकर है, किन्तु कुछ न कुछ निश्चय तो आप बनाओ यह पर्युषण पर्व का भी राकाजा है।

पर्युषण पर्व के आधा भाग जो व्यतीत हो गया और फिर भी आपकी सक्रियता दृष्टि में नहीं जाए तो यही मानना पड़ेगा कि आपका सन्त परिचय केवल ऊपर ऊपर से ही हुआ है उन्तःकरण में उराकी धारा प्रवर्हित नहीं हो राकी है। अगर यह राब कुछ सुनकर रामतागर जीवन की कुछ भी लौ लगी हो तो आब भी शेष आधे भाग में आपके सञ्ज्ञल प्रयास सामने आ जाने वाहिये तथा संवत्सरी के दिन कुछ उल्लेखनीय कार्य बनना। ०।३५।

सन्त परिचय शुरू तो कर दें

मुगि गजसुकमल के मस्तक पर अंगारे रखने वाले लो उन्होंने शत्रु समझा या मित्र ? उन्होंने तो मित्र सी समझा कि जिसने उनकी आत्मा के चरण विकारा को राज दे दिया। रांगतरारो आ रही

है क्या उस दिन तो आप भी अपने कलुष को अभिमान और दंभ को त्यागकर सर्व मैत्री का रूप प्रदर्शित कर सकेंगे ? यदि इस तरह राम—द्वेष को घटाया, तब भी यह मान लिया जाएगा कि आपने कम रो कम राधु जीवन रो परिचय प्रारम्भ तो कर दिया है। पूर्ण रूप रो नहीं तो देश—विरति रे ही रान्त जीवन के संराम रो उनके अनुरूप अपने जीवन के लालिये।

अगे तो यह मंगलाचरण के रूप नें ही है। सरोवर की पाल पर ऊपर—ऊपर ही धूमने जैसा है। सरोवर में छुबकी लगाने का राहरा करेंगे तभी राधु जीवन रो सच्चा परिचय हो सकेगा और तभी रागत पातकों की धात भी हो सकेगी।

□□□

लाल भवन

8.9.72

सहयोगी से भोगी जीवन क्यों ?

“ग्रन्थ अध्यात्म श्रवण मनन करिरे”

भगवान् संमवनाथ ली प्रथना के माध्यम से हम सर्वज्ञ सर्वदर्शी वीतराग देव के उपदेशों के निष्कर्ष ले रहे हैं जिनमें मानव का समग्र कल्याण निहित है। जिन उपदेशों में मानव ही नहीं, समूह प्राणी समाज द्वारा शान्ति-लाभ करने का अमोघ उपाय छिपा हुआ है, ऐसे उपदेशों पर रामी विवेकशील एवं विकाराकांगी व्यक्तियों का पावन कर्तव्य है। के वे जीवन के एकान्न क्षणों में विनान करें तथा मूँ कगली-अवस्था की आचोलना करते हुए क्रियाशील वर्तमान की सहयता से प्रगतिशील गविष्य का निर्माण करें।

किसी भी कार्य की पृष्ठभूमि में कारण का अनुसंधान अवश्य रहता है। जिस कारण में शुद्धता हो, उसी कारण से बनने वाले कार्य गें भी बोवेत्रा का वातावरण बना रहेगा। जीवन एक कर्म-क्षेत्र होता है, जहाँ सहयोग को भावना से स्व पर की आत्माओं को पवित्र बनाने वाले कार्य किये जाने चाहिये। एक दृष्टि से जीवन अपरिवर्तनशील होता है तो दूसरी दृष्टि से परिवर्तनशील भी होता है। तत्त्वार्थ सूत्र में रात् तत्त्व की यह परिभाषा की गई है—

“उत्पादव्यय धौव्ययुक्तं सत् ।”

जो रात् तत्त्व है—जप्ति और विनाश की दृष्टि से परिवर्तनशील होता है तो द्वृव दृष्टि से अपरिवर्तनशील।

जीवन जिस धूव तत्त्व पर आधारित है और जिसका मूल स्वरूप अपरिवर्तनशील होता है, वह है आत्म—तत्त्व किन्तु यही

आत्मा कर्म पुंज ली संलग्नता से विवेद शरीरों में उत्पन्न होती है और उन शरीरों की दृष्टि से गष्ट होती है तथा विशिष्ट जीवनों ला निर्माण करती है, वह उसका परिवर्तनशील रूप है। इस परिवर्तनशीलता में भी आत्मा के गुल रवरूप की अपरिवर्तनशीलता बराबर बनी रहती है। एक रवरूप भूषण पर गैल जाग राकता है। गैल रो पीले की बजाए यह कगला दिखाई दे सकता है। किन्तु मैल में रहे या साफ होने पर दिखाई दे उसका स्वर्णत्व ध्रुव रूप से एक सा बना रहता है। मैल जगने या उरो धो लेने की दृष्टि रो रवर्गशूण के रवरूप में परिवर्तन भी अवश्य परिलक्षित होता है।

शाश्वतता और परिवर्तनशीलता

शाश्वतता और परिवर्तनशीलता के इस क्रम में परतु—रवरूप के विषय से शास्त्रीय भाषा में दो रूपक बताये गये हैं, जिन्हें द्रव्य और पर्याय के नाम से पुकारा जाता है। पर्यायों के परिवर्तित होते रहने पर भी उराने शाश्वत द्रव्य का निवारा रहता है—यही रात् तत्त्व का लक्षण है। जिस द्रव्य के अस्तित्व के साथ जीवन का परिवर्तन होगा और जो अस्थान की दिशा में होगा, वह द्रव्य को पवित्र दशा के साथ ही धटिया होता हुआ दिखाई देगा। शास्त्रीय विवेदनों के अनुसार जीवन भी एक सत् तत्त्व माना गया है जिसमें उत्पत्ति और विनाश के साथ द्रव्य ला अतल अस्तित्व भी रहा हुआ है।

जहां जीवन के प्रराण में कार्य—राम्पन्नता का अवरार आता है। वहां उराके कारण को अवश्य ढूँढ़ना है बिना कारण के कार्य ली सम्भूर्ति नहीं होती। यदि कारण अशुद्ध है साधन पवित्र नहीं है तो कार्य भी अशुद्ध और अपवित्र ही बनेगा। कार्य की सफलता और उत्त्वलता के लिये कारण का शुद्ध और पवित्र होना अनिवार्य है।

साधन-शुद्धि का प्रश्न

आज जब विश्व, राष्ट्र और समाज की परिस्थितियें पर दृष्टिभाव करते हैं तो राधन—शुद्धि के विचार की शिथिलता में

वर्तमान का शोवनीय रूपक हन रहा है। क्योंकि वहाँ मुराकाली-गौरव के प्रति अनुशासन घट रहा है तो सुन्दर भविष्य के निर्माण के प्रति भी पर्याप्त जत्साह नहीं है। यह एक विडम्बनापूर्ण स्थिरता है। हमारे भारत देश में यह स्थिरता और भी अधिक खेदजनक है। वर्तमान जीवन में भविष्य का राथ्य धूमिल है जो राधन-शुद्धि की रातकी भी रोड़ हुई है।

गांधीजी ने इस युग में भारतीय स्वतन्त्रता प्राप्ति के वरिप्रेष्य में सधन शुद्धि पर बहुत बल दिया किन्तु परिवर्तन किताना जल्दी और किसी उल्टी देश को बढ़ रहा है—भारत। रपष्ट प्रगाण यह है कि गांधीजी के निधन को इतना कग रागय हुआ है, फिर भी उनला साधन—शुद्धि का विचार सत्ता और राजनीति के किसी भी क्षेत्र में आज जीवित नहीं दिखाई दे रहा है। इसका कुफल भी सामने है कि कार्य की स्फूर्ति भी विपरीत दिशाओं में जाती रहती है।

राधन-शुद्धि एक गहत्यापूर्ण विचार है। जो लोग इस विचार की उपेक्षा करके जुस्ताई को ग्राप्त कर लेना चाहते हैं, उनके लिये कहा जाना चाहिये कि वे ग्रमपूर्ण विचारणा में ही रहते हैं। साधन कुछ भी हो, हमें तो कार्य बना लेने से मतालब है ऐसा कथन भी ऐसे ही लोग किया करते हैं। क्याजोर नीव पर युनाई करने के बाद बना हुआ गकान गजबूत कैरो बन राकेगा?

वर्तमान विडम्बना के कारण की खोज

वर्तमान में फैली इस विडम्बना को समाप्त करनी है तो उसके कारणों की खोज करनी होगी परिवर्तन आप गले ही करें, लेकिन राधन शुद्धि एवं द्रव्य के अनुशासन के राथ्य करें तो वह कभी अहिताकर नहीं होगा। जब आन्तरिक अनुशासनपूर्वक परिवर्तन का द्यान नहीं सख जाता है और किसी को अन्याध्युम्बनकल करके अथवा गोग—लालसा के पीछे अविवेकपूर्ण परिवर्तन कर लिये जाते हैं तो आज के समान विडम्बना पैदा हो जाती है। चैतन्य स्तरलप के अंकुश के विपरीत आगर इन्वान के जीवन में परिवर्तन आया तो वह परिवर्तन उसे शान्ति के क्षणों में प्रवेश नहीं करने देगा।

आज से कुछ शताब्दियों पूर्व मनुष्य ने अपने जीवन के सुमिर और शुद्ध +०८ स्थापित किये थे, उन्हें आज बिना विवेक के बदला जा रहा है। भूतकाल का ज्ञान हर्गे आगम, शास्त्र, इतिहास आदि से होता है। वर्तमान प्रत्यक्ष है और गतिश्च को वर्तमान के चेतन-अथवा अवेतन गारेष्ट ने समाधा हुआ गाना जा राकहा है। उपर्युक्त वरत्रुतः अपने जीवन को शान्ति के राथ बिताना चाहते हैं—रागाज और रास्त में शान्ति का साम्राज्य बनाना चाहते हैं तो सभी क्षेत्रों की शान्ति का बीज व्यक्ति में रहा हुआ है। व्यक्ति अपने को जिस रूप में बदलता है, उसका आरार उसके आरापारा और राम जा पर पढ़ता है और व्यक्तियों का सामूहिक परिवर्तन ही सामाजिक परिवर्तनों की आधा ॥८॥ ऐला रखा है। परिवर्तन का गूल व्यक्ति रो उठकर अधिक रो आदि के विस्फूल। क्षेत्र में फैला रहा है।

अनुशासन-चेतन का या जड़ का ?

मानव अपने समाज के बीच में दो रूप से रह सकता है और ये दो रूप उसके व्यक्तिगत जीवन से ही प्रस्फुटित होते हैं। एक रूप तो यह कि वह अपने आन्तरिक अनुशासन में चले—आरिमक सदगुणों को प्रगृह्णता देकर ल्याष्टि ले जीवन को रागष्टि गे तिरेहित कर दे। इसका समाज पर यह असर होगा कि वह अपने स्वर्थों को गौण बनाकर बलेगा तथा सहयोग और त्याग को प्राथमिकता देगा। जह जीवन में चेतन का अनुशासन होता है, तभी सच्ची आनन्द धारा नी फूलती है। ऐसे मनुष्यों का समाज वर्ग का रूप ग्रहण कर लेता है, जहाँ प्रत्येक व्यक्ति दूसरों के सुख के लिये ही दिनित होता है और प्रयारा रत बनता है।

मनुष्य और उसके समाज का पहले से विपरीत दूसरा रूप ८ बनता है जब जीवन में जड़ का अनुशासन प्रमुख बन जाता है। मनुष्य के लिये नगुण्यता बड़ी नहीं रहती, ऐसा बड़ा बन जाता है। दूसरों ला हित नहीं—आपना रवार्थी इष्ट हो जाता है। राहयोग और त्याग रो विगुण बनकर वह भोग की लालर। गे भटकने लग जात है। रागाज पर खाब ऐरा। आरार दिखा ई देने लगत है और उसरों जो धीमता दृश्यों

की सृष्टि होती है, उरी के गूँज में आज की विडम्बना का कारण समाया हुआ है।

इन्द्रिय सुख के जिन भेग्य पदार्थों को गाने के गीछे जिरा बुरी कदर आज आप भाग रहे हैं और उस धून में न आप्लो अपने साथी के दर्द का छलाल है और न सनाज और राष्ट्र के पतन का—तो क्या वे भोग्य पदार्थ आपके शाराक् हुए ? क्या आप आज जड़ के अनुशासन में नहीं चल रहे हैं ? जहाँ जड़ का अनुशासन है, वहाँ चेता का अनुशारान बिना उपयुक्त परिवर्तन के कैरो आ राकता है ? उट्टर में दीपशिखा के लगाने पर ही प्रकाश फैल सकता है, किन्तु वैसी दीपशिखा को प्रज्ञलित करने के लिये सद्भाग और सद्विवेक की आवश्यकता होती है।

विवेकहीनता का प्रभाव

भारत में अधिकांशतः आज भारतीय संस्कृति को शुल्कर लोग विवेकहीनता के रूप में परिचिती रांकृति में से जा रहे हैं। यह अन्धी नकल का है परिणाम है। राधारण रूप रो वाचावरण ऐरा। परिखाई देता है, जैसे विवेकहीनता कुएं में गांग की तरह चारों ओर फैल गई है तथा फैलती ही जा रही है। भारतीय संस्कृति और उसमें भी जो निर्ग्रन्थ श्रागण रांकृति जीवन के उदात्त रवरण को प्रकाशित करने वाली है, उराके प्रवहगान होते हुए भी भारतीय गरितज्ज भोग—प्रभान्पाश्वात्य संस्कृति को उपर झुकता जा रहा है। यह अतीव शोबनीय वस्तुस्थिति है।

जिस इन्सान का विचार स्वयं के सत्त्व को ग्रहण नहीं करे किन्तु अन्धानुकरण की प्रवृत्ति नें पड़ जाए, उसका विवेक तो इतना क्षीण हो जाता है कि उस इन्सान की निणांगक शक्ति भी रानाप्त हो जाती है। जब रामाज में इस प्रकार के इन्सानों जा बढ़ुगत हो जाए, तब वह समाज भी एक प्रलाप से पंगु बन जाता है।

अनुकरण की अन्धता

बुद्ध और विवेकहीन अनुकरण को अन्धानुकरण कहते हैं। आज भारतीयों का कुछ ऐरा ही रूपक बना हुआ है। रहन राहन में

नकल, खान-पान में नकल, विषय सेवन में नकल, वाहन उपयोग में नकल, गृह-रिमाण में नकल, रीति-रिवाजों में नकल। समझ में नहीं आता कि किस क्षेत्र में नकल नहीं चल रही है क्षेत्र कौन सा क्षेत्र असाधी बच रहा है। ऐसी बिना उकल की नकल न तो देश की साम्यता और सांस्कृति के अनुकूल है और न ही भारतीय भालवायु के अनुकूल। आश्वर्य है कि फिर भी नकल बेहिसाब चल रही है।

बेअकल की नकल की जड़ में नियन्त्रण का अभाव है आत्म नियन्त्रण का अभाव। दिना रहारे का पतंग आकाश में उड़ता जाए और कब नकल की ढाँच कट जाए और कहाँ की कहाँ पतंग जाकर गिर जाए। इसका कुछ भी अचा पता नहीं। भारतीयों की अन्धता के विपरीत विदेशों में ऐसा वातावरण बन रहा है कि विदेशी लोग विवेकपूर्वक भारतीय पद्धति को कई क्षेत्रों में अपना रहे हैं। कैसा द्वर्योग है—भारतीयों और विदेशियों के विवेक में?

इरा अन्धानुकरण के कारण भी हैं। ये गुख्यतः हैं—एक—डेढ़ शताब्दी की साधीय परायीनता, आर्थिक क्षेत्र के विषमता, शिक्षा जा अभाव। विदेशी शासन ने राष्ट्रीय शक्ति का छास करके देशवासियों को दुर्बल बना दिया और उन्हें अपनी संस्कृति को अपनाने के लिये यित्ता भी किया। इस विवशता के पीछे प्रलोगन भी था किन्तु आश्चर्य हो इस वस्त्र का है कि उस विदेशी शारान को पेश छोड़े हुए आधी शताब्दी हो गई। फिर भी न तो लोग नकल की परम्पराओं को छोड़ सके और न ही भारतीय परापराओं को अपनाने लगे। अपने साहित्य और गाषा के प्रति अनुराग नहीं पैदा हुआ, तब ऐसा दिग्ग्रमित भारतीय जन केरो रुचिपूर्क आध्यात्मिक तत्त्वों एवं रात्त चरागं के गहर्त्व को रागाड़ो एवं जीवन में उतारे?

अतीत का सहयोगी जीवन

भारतीय इतिहास के उज्ज्वल पृष्ठ बताते हैं कि प्रचीन काल में भारतीय जीवन अतीत सहयोगी था। सबके दीन बिना गोदधाव से राहयोग की जीवनपद्धति होने के कारण रारे रामाज गें एक पररपर की रथस्थ अनुराग की भावना भरी रहती थी। अनुराग त्याग और

व लेदान के शुभ भावों को जग ने वाला होता है, क्योंकि जहाँ स्व और अपेक्षा परहित की ओर सजग वृत्ति बनी हुई हो, वहाँ आपने ही लिये लेने और इकट्ठा करने की आदत नहीं होती। वह तो अपना भी दूसरों के लिये छोड़ देने की त्याग वृत्ति बन जाती है। सहयोग से त्याग जी और गति आत्मा को उन्नति के गर्व की ओर उगे बढ़ाती है।

अनुग्रह सूत्र में ही अतीत के सहयोगी जीवन का एक सुन्दर चित्रण आया है। 'त्रिखंडाधिपति श्रीकृष्ण जब चतुर्गणी सेना के साथ शोणा-यात्रा बनाकर भगवान् श्री अरिष्टिगेमि के दर्शनार्थ जा रहे थे, तब रारते गें उन्हें एक दृश्य दिखाई दिया कि ईर्टों का एक ढेर पला है और एक वृद्ध एक-एक करके ईर्टों को धीरे-धीरे धर गें ले जा रहा है। श्रीकृष्ण ने वृद्ध के प्रति सहयोग का विवार किया और वे हाथी से नीचे उतर पड़े। वे ढेर के पास पहुंचे और ईट लेकर पर में रखने लगे। उनका ईट को उठाना क्या हुआ कि शोणायात्रा के रारे लोगों ने राहयोग का हाथ बढ़ाया और दंखते-दंखते ईर्टों का ढेर उठ गया। सहयोग का परिणाम ऐसा ही सुखद होता है।

सहयोग का एक अकबर-बीरबली किस्सा

अकबर ने एक बार बीरबल के रामने श्रीकृष्ण की गति का उड़ाते हुए कहा कि उनका अपने अनुचरों पर नियंत्रण बिल्कुल नहीं था, तभी तो ग्राह से फंसे गज ने पुकार तो वे स्वयं ही गागे गये। क्या वे किरी बलिष्ठ अनुचर को वहाँ नहीं भेज रकते थे? बीरबल ने कहा कि इराका मैं वक्त पर जावा दूंगा।

पाँच बीरबल ने एक बाल बली। किरी को भी कोई रूपना प्रिये बिना वुपके रो शहजादे को उराने आपने धर बुलवा लेया। तथा सोड से उसकी राजकीय पोशाक खुलवा कर वैसे ही एक मोम के पुतले को पहना दी। फिर उस पुतले को बादशाह के लाज़ पूमने के बाग में हौंजा गें डलवा दिया। वह ऐरा लग रह था, जैरे हूबहू शहजादा ही उरांगे गिरा पड़ा हो।

जह बीरबल गहलों में पहुंचा तो वहाँ नारी कोहराम गवा हुआ

था। किसी को भी पता नहीं था कि शहजादा कहाँ वला गया है? अकबर बादशाह खुद बेसब्री से इस्तर-उम्मर चक्कर लगा रहा था। ऊपर से बीरबल ने सारी स्थिति की जानकारी लेकर नौकरों लो शहजादे की तलाश के लिये अलग-अलग जगहों पर भेजा। तथा खुद ने बादशाह को गन बढ़ाने के नियमित रो उद्धान गें चलने का आग्रह किया। उद्धान में भी बीरबल जान बूझकर पहले बादशाह को उसी हौज की तरफ ले गया और खुद इस तरह चलने लगा जैसे हौज का उसको कोई ख्याल ही न हो।

आकर्षण तु आकर्ष की नियम हौज पर पड़ी और उसके राथ ही गोग के पुतले पर। पोशाक रो आकबर को निश्चय हो गया कि यह शहजादा ही है। उसने बीरबल तक को लुछ नहीं कहा और तुरन्त बादशाह हौज में कूद पड़ा। खैर, शहजादा तो नहीं मिला, मगर जब बादशाह बड़े आकर्षोरा के राथ बाहर निकला तो वहाँ बीरबल ने घर रो शहजादे को ब्रूलवा दिया था, रो उसे बादशाह के आगे खड़ा करके वह बोला। जहाँपनाह, आज मैं श्रीकृष्ण वाली आपको बात का जवाब देना चाहता हूँ किन्तु पहले पूछूँ कि आपने नौकरों को नहीं कहा, मुझे भी नहीं कहा और खुद ही हौज में कूद पड़े तो क्या आपका भी अपने अनुचरों ने नियन्त्रण नहीं है?

आकबर एकदम रारे गाले को रागड़ा गया और शहजादे लो गोद गें लेकर गुरकराते हुए कहने लगा—बेटे के लिये बाप का ऐरा ही दिल होता है कि उस काम को वह खुद ही जल्दी से जल्दी कर लेना चाहता है। तब बीरबल ने समझाया हुजूर, पुराने जमाने नें इस देश में एक-दूसरे का और राजा तथा प्रजा का आपसी सहयोग इतना नहरा था कि राजा न सिर्फ म्नुष्यों को, बल्कि सभी प्राणियों को अपनी ही रान्तान के तुल्य रागहता था। इस कारण जब गज ने गुढ़ार ली तो श्रीकृष्ण खुद ही नंगे पैरों उसे बचाने दौड़ गये।

किससे का मतलब यह है कि प्राचीन काल के भारतीय जीवन में पग पग पर सहयोग की भावना घुली हुई थी। विवाह शादी हो तो उसका बोझा एक ही नर नहीं होता था। सभी श्रम और अर्थ-दोनों से

सहयोग देते थे। मरण में शोक सनात्रों के सबका पैसा विश्वास और सहयोग मिलता था कि दुख जल्दी ही कम हो जाता था। लौर्ड भी उत्सुक या कार्य हो— उसके लिये सभी का सहयोग सदा उपलब्ध रहता था।

इस जीवन बहुपि का सबसे बड़ा प्रभाव यह होता था कि देश के जीवन में शान्ति और सन्तोष का वाचावरण छाया रहता था। और इस वाचावरण का सीधा प्रगाह मनुष्यों के मन व मस्तिष्क पर आधारित प्रगति के रूप में गढ़ता था। इससे लोगों में चेतना जाग्रत रहती और आचरण—शुद्धता बनी रहती। वैरी अवस्था में धर्म के प्रति रुचि, रात रातर्माण के प्रति आकर्षण और आत्मोत्थान के प्रति उत्तराह अमिता मात्रा में दिखाई देता था। सहयोग की लाली सारे राष्ट्र के चेहरे पर एक तरल आभा फैलाए रहती थी।

सहयोग से भोग की ओर

इतिहास बताता है कि विदेशियों के आक्रमण एवं शासन के साथ भारतीय जीवन में लिकृतिकारक परिवर्तन होने लगे। विदेशी राता के छल-छद्दग रो राड्योग की दीयारें दूरने लगीं। भाई-भाई तक आपरा में लड़ने लगे। रथाग और बलिदन की भावनाएं ओझल होने लगीं। स्वार्थ सबसे ऊपर चढ़ गया। उन्नत भारतीय समाज ला यह टिकृतिकरण अंग्रेजों के शासन काल में तीव्रतम बन गया क्योंकि उन्होंने राष्ट्री ओर रो भारतीय रांकृति को काटना शुरू कर दिया और उराकी जगह भोग एवं रवाण्हगूलक पाश्चात्य रांकृति का उन्होंने प्रसार किया। फैशन का प्रवार किया गया और शुद्ध वरिष्ठ पर निरन्तर प्रहार करने वाले सिनेमा जैसे कई साधन खड़े कर दिये गये।

सबसे बड़ी हानि यही हुई कि भारतीय जन का व्यक्तिगत और राष्ट्रीय चरित्र गिरता ही चला गया। सहयोग ले आधार पर बज्जों रो रांचित उराकी नैतिकता दूक-दूक हो गई है। जब भोग प्रशान्त बन जाए तो आदगी इन्द्रिय सुख के लियों के पीछे ही तो बेतहाशा दौड़ लगाने लगता है और जो ज्यादा अर्जन करता है, वह अधिक से

अधिक भोग लिपा होता बला जाता है। अन्धानुकरण से सिर्फ हुसाइयों का अनुकरण होत है, अच्छाइयों का नहीं—क्योंकि उसके लिये तो विवेक की जरूरत पड़ती है।

भारतीय रागाज की दुर्गति का वर्तमान चित्र देखें तो दिखाई देगा कि सहयोग किसी सार पर नहीं है और अपने ही भोग अपनी ही सुख सुविधा के लिये हर कोई एक दूसरे का गला काटने वो तैयार हो जाता है। शोग—शावना के प्रसार के प्रतिशेष और अपराह्नों का विस्तार होता है। आज शाई—शाई के साथ किस प्रकार ला व्यवहार कर रहे हैं, हर क्षेत्र और वर्ण में कितनी नैतिकता व ईगानदारी है। रामाज, राष्ट्र तथा रागभ गानव जाति व प्राप्ति वर्ग के प्रति कितनी सद्भावना है इन सबकी आलोचना करते करते जैसे थकान सी आने लगी है। वर्तमान जीवन में प्रयास करने पर भी नैतिकता ला धरातल तथा रागाजिक चूल्यवस्था की दृष्टि इरालिये राफल नहीं बन प रही है कि कूल्यवस्था एवं भोगी जीवन के पक्षपाती ऐरो कूकार्य कर नुजरे हैं, सम्पत्ति का इस तरह दुरुपयोग करते हैं तथा नये नये कुशीति रिवाजों को जन्म देते रहते हैं कि सत्त्वायास करने वालों की मेहनत पर पानी किर जाता है।

भोगमूलक जीवन समाप्त करें

विषय शोग की छिछलो गावनाओं में किस ब्रकार इस अमूल्य गानव जीवन की घड़ियां बरबाद की जा रही हैं—इस पर आप खयां को गंभीर चिन्तन करना है। नरतुतः परिवर्तन की अनिवार्य आवश्यकता है, किन्तु वह परिवर्तन अन्धानुकरण वाला नहीं होना। नहिए सद् विवेक और सदाशयता वाला होना वाहिए। विवेक के साथ जब परिवर्तन होगा तो शोग से पुनः सहयोग की ओर बढ़ाने वाला परिवर्तन होगा। सहयोग की गावना जब किर से प्रबल बनेगी तो कई आन्तिक रादगुण रखतः ही व्यजितगत एवं रा गुहिक जीवन में प्रवेश लगेंगे और उरांगे नया ओज भरने लगेंगे।

समसा जीवन के निर्माण की दृष्टि से श्री बालवंदस्तो ने जो 21

सूत्री कार्डम पस्तुरा किया है। वह सबके लिये विवारणीय है। सद्गुणी पुरुषों के अन्दर चाहे वे किसी देश, जाति, धर्म या वर्ग के हों जो राष्ट्रीय शावना हो, एकत्व शावना हो, समाजिक जीवन का स्तोष और गाधुर्य हो तो उनका अपने देश—काल—भाव की दृष्टि रो राधिवेक अनुकरण अवश्य करें और उरारो अपने जीवन में आध्यात्मिक दृष्टि रो परिवर्तन लाने की सोचें तथा समता सिद्धान्त की लंबाइयों तक अपनी आत्मा की प्रगति को उठाने का यत्न करें।

परिवर्तन विवेकपूर्ण हो

आप जीवन में आमूलयूल परिवर्तन करना चाहें तो वह भी विवेकपूर्ण तथा आध्यात्मिक अंकुश के साथ होना चाहिये। अन्तगढ़ रुच के जीवन प्ररांग इरा वित्र परिवर्तन को प्रोत्याहन देने वाले हैं। आज के जीवन ने अनियंत्रित अवश्य में होने के कारण शविता वा जिस कदर अपव्यय हो रहा है, उसके नियंत्रण की आवश्यकता है ताकि उसके बल पर सार्थक परिवर्तन लाया जा सके। वैगेक, सहयोग और त्याग की दिशा में अग्र व्यक्ति के जीवन में स्वास्थ परिवर्तन लाया जाएगा तो यही परिवर्तन ल्यक्ति—व्यक्ति के राग्नल रो रागाजिक अथवा राष्ट्रीय परिवर्तन के रूप में राफल बन राकेगा। क्योंकि प्रबुद्ध व्यक्तियों के राघू के द्यारा रो नये रामाजा की रखना होगी और नया क्रान्तिकारी समाज राष्ट्र के नव—निर्माण को सजीव रूप दे सकेगा। तब श्रेष्ठ राष्ट्र ही विश्व—शान्ति को चेर रखायी रूप दे राखेंगे।

बाब परिवर्तन की ऐसी प्रक्रिया बले जो उद्धरणाती हो रो वैशा ही परिवर्तन आत्मा के मूल स्वरूप पर चढ़े कर्म रूप मैल को धोकर स्वरूप को निर्मल और उज्ज्वल बना देगा।

सहयोग की सहदयता

आप धार्मिक अनुष्ठान के रूप में दया की आराधना करते हैं। उसका अग्रिमाय यही है कि जीवन में दया की तरलता फैले। सहयोग की सहदयता का विकास हो। इस दृष्टि से क्या आप अपने अगावरस्त छोटे भाइयों के दुखी जीवन की ओर देखते हैं? श्रीकृष्ण ने बूझे ली ईर्ष लठाई और उराकी राब ईर्ष उठ गई। क्या आप भी किरी गरीब

को दर्द हल्का करने के लिये हाथ बढ़ाते ? सहयोग के सहदयता का तो यही अर्थ होता है कि आप दलित और पतित वर्ग के हमदर्द बन जाएं।

आज इस दिशा में चिन्तन किया जाए कि पहले का राहगांगी जीवन भोगी क्यों बनता जा रहा है पश्चा इस गति को नोड्कर पुनः उसे सहयोग और त्यार के मध्यरथा में कैसे ढाला जा सकता है ? इस चिन्तन की सफल क्रियान्विति से ही जीवन में स्मर्तासमय परिवर्तन लाया जा सकेगा।



लाल शरण

9.9.72

अपरिग्रह की आवाज

“मुध सुगम करि सेवन आदरे रे.....”

प्रभु सम्बवदेव की प्रार्थना के जरिये जो सेवा के रूप में समझने की कोशिश की जा रही है, वह सेवा सरल नहीं है। प्रभु सेवा अति दुरुह है, किन्तु वह उसके लिये सरल भी बन जाती है जो सांसारिक पदार्थ से आसक्ति हटा लेता है और सहज आत्मीयता के अनुभाव में पल्लीन हो जाता है। ऐसी अवस्था में पुष्टगलों पर गणत्व नहीं रहता। किन्तु रांगार में उनके लिये जिस प्रकार रो अन्याय होता है और मनुष्यता कुचली जाती है, उसके विरुद्ध भी वह अपनी आत्मशक्ति लगाकर सब के साथ समान न्याय की प्रतिष्ठा करना चाहता है। गन्तव्य ही क्या, रारा प्राणी रागाज परगात्मा की दृष्टि रो रागान न्याय ला अभिलाषी होता है। उत्तः उन्हें दर्शन एवं लगड़ार दोनों दृष्टि से अमाना का प्रसार हो यह सभी प्रभु सेवा का ही एक अनिन्द अंग माना जाना चाहिये।

सरल और जटिल बनाने का यही कारण प्राप्तुसेवा के साथ छुड़ा हुआ है कि जब जीवन ला चहज एवं सर्वसुखकारी स्वरूप अन्तर्गत में प्रकाशगान् हो उठता है तब तो चारूता की रिश्तति रहती है, परन्तु यदि यह आत्मा पर-पदार्थ को रूप रागाज गणत्व और विकार में लूटी रहे तथा अपने सब्दे स्वरूप को समझने की रुचि ही पैदा न हो तो उसके लिये प्रभु सेवा निश्चय ही जटिल होती है, क्योंकि उसे सरल बनाने के लिये पैसी आत्मा को नहले सद्भाग एवं कर्मठ साधना की प्रक्रिया से गुजरना होगा। तादात्म्य सम्बन्ध का प्रश्न है कि आत्मा

इस सम्बन्ध को अपने स्वरूप से जोड़ती है अथवा संसार के योग्य पदार्थों से—जबकि वास्तविक रूप में आत्मा का तादात्य साक्षण्य गौतिक तत्त्वों के साथ नहीं बैठना चाहिये।

भौतिक पदार्थों की उपयोगिता

जहाँ तक आत्मा के गूल रवरूप का प्रश्न है, उन्ततोगत्वा भौतिकता से पूर्णतः नाता लौहना ही बड़ा है किन्तु आत्मा ने जो मानव शरीर धारण किया है वथा संसार में जन्म लिया है इसमें बिना गौतिक पदार्थों के सहयोग के एक यग बढ़ाना भी कठिन होगा और तो और, स्वयं शरीर भी पौदगलिक ही होता है।

इरा दृष्टि रो रांरार के भौतिक पदार्थों का सभी गानव—देहधारियों के लिये जीवन निर्वाह की दृष्टि रो रागान गहत्व होता है। पदार्थों को दो प्रकारों में बांटा जा सकता है। एक तो वे आधारगत पदार्थ, जैसे भोजन, वस्त्र, मकान आदि जिनके बिना मनुष्य का जीना तक कठिन हो। इन्हें अनिवार्य आवश्यकता पदार्थ कहा जा सकता है। दूसरे पदार्थ वे, जो लिंगेष सुख—सुविधा देने वाले होते हैं और जिन्हें एक प्रकार के विलासिता के राधन के रूप में भी देखा जा सकता है। पहले राबकी रामान रूप रो अनिवार्य आवश्यकताओं की तो पूर्ति हो है यह जरूरी है और इसके बाद सामान्य रूप से सबकी सुख सुविधा के पदार्थ हों और उनकी उपलब्धि समान रूप से हो तो वे विलासिता का रूप भी ग्रहण नहीं करेंगे।

जब तक आत्मा शरीरकी रहती है, उसकी गौतिक पदार्थों के उपयोग की जरूरत रहती ही है। और इरा कारण इनकी उपयोगिता रो इन्कार नहीं केया जा सकता है।

बुराई की जड़ ममत्त्व में है

'जल में कमलवर्' जो कहा जाता है, उसका यह अर्थ होता है कि पानी में रहते हुए भी कमल जिस रस्ते पानी से दूर रहता है। उसी तरह गौतिक पदार्थों का उपयोग करते हुए भी, परिग्रह को अपने

पास रखते हुए भी जो उसके प्रति ममत्व की तानिक सी मात्रा अपनी गावना में नहीं रखता—उसके जैसे जीवन के लिये ही जल में कमलवत् कहा जाता है। असल में बुराई की ज़़़़़़ ख़य़ गौतिक पदार्थों गें नहीं, बल्कि उनके प्रति रखे जाने वाले गगत्व और उस गगत्व रो पैदा होने वाले विकारों गें ही रहती है।

जैन दर्शन में परिग्रह की जो परिभाषा की गई है, वह इसी दृष्टिकोण पर आधारित है। कहा है—

“मुच्छा परिग्रहो !” परिग्रह रोना—वंदी या अन्य राम्भि को नहीं बताय गय है, बल्कि ‘‘मुच्छों’’ को कठ गय है। मुच्छों अर्थात् बेसुध अवस्था और यह बेसुध अवस्था ममत्व की स्थिति में पैदा होती है। इसलिये ममत्व को ही परिग्रह बताया है। एक धनवान हो राकत है, फिर भी राम्भ है कि वह परिग्रही न हो क्योंकि बिना गगत्व के यदि कगलवत् उराका जीवन है तो वह नन के परिणामों रो अपरिग्रही होगा। इसी प्रकार एक दीन पुरुष भी परिग्रही हो सकता है यदि उसके परिणामों में ममत्व की गहरी मात्रा भरी हुई हो।

ममत्व के दृष्टिकोण से ही भरत महाराज के तेल के कटोरे का दृष्टान्त कहा गया है। भरत महाराज छँ खाण्ड के अधिपति थे। उनके पास क्राद्धि-सिद्धि की ग्रचूरता का क्या कहना ? तो उनके तिषय गें दो नागरिलों गें विवाद पैदा हो गया और वह विवाद भरत महाराज तक वहुंया। एक का कहन था कि नरा नहाराज अत्यन् परिग्रही हैं तो दूसरे का कहना था कि वे कमलवर् होने के कारण ममत्व में कंचे हुए नहीं हैं। अपने ही प्रति विवाद का कैसे निर्णय करें—यह उनके सामने धर्मसंलट उपस्थित हो गया।

उरा नागरिक लो रागझाने के लिये, भरत गहाराज ने एक व्यावहारिक तरकीब निकाली जो उन्हें परिग्रही बता रहा था। नगर में घौसाहे घौसाहे पर सुन्दर नाटलों और नृत्यों का जायोजन किया गया रथा सब खोर आकर्षक सजावट कराई गई। फिर उस नागरिक के हाथों में तेल से लबालब शरा एक कटोरा देकर सैनिकों को उसके सामने आदेश दिया कि इस नागरिक ह्वास नगर भ्रमण करते समय

यदि ऐ भी बूंद तोल की इस कटोरे से गिर जाए तो उसी समय नंगी तलवार से इसका सिर उड़ा देना। फिर नागरिक को कहा कि वह नगर भ्रमण कर आये और उसका वृत्तान्त उन्हें सुनावे।

नागरिक जब बापिरा लौटा और उरारो नगर का गुत्तान्त पूछा गया तो उसने कहा— “मैंने तो कुछ नहीं देखा। मेरी दृष्टि तोल के कटोरे से एक पल के लिये भी इधर अधर नहीं मुँड़ी।” भरत नहाराज ने कहा— “इतने सुन्दर गृह्य और नाटक भी तुमने नहीं देखे ? नागरिक ने सिर हिला दिया, तब शरत महाराज ने समझाया कि इसी प्रकार राता और राम्पति की अतुल प्रचूरता के बे रवाणी अवश्य हैं किन्तु अपनी दृष्टि रादा वे अपनी आत्मा पर लगाये रहते हैं, जिससे उन्हें उनके सारे परिग्रह पर भी कोई समर्पण नहीं है। तोल के कटोरे को आत्मा मान लो। गृह्य नाटक को परिग्रह तथा तलवार को मृत्यु। फिर अपने ही अनुशव रो गेरी रिथति रगज लो। यह आग्रह शरत गहाराज ने उरा नागरिक रो किया। नागरिक को भी रिथति राहज ही में समझ में आ गई कि वास्तव में समर्पण ही परिग्रह है।

ममत्व से विषमता की उत्पत्ति

यह गेरा है और इराका उपयोग गौं ही कर्लं।—ऐसा गगत्व जब भौतिक पदार्थों के प्रति इन्सान का बन जाता है, तब वह उन पदार्थों का संचय करना चाहत है और इदि वे पदार्थ आसानी से प्राप्त नहीं होते हों तो आपनी शक्ति का द्रुरूपयोग लरके एवं अकरणीय कार्य करके भी उनके प्राप्त करने ली कोशिश करता रहता है। यह गगत्व जितना धना बनता है, संबद्ध एवं संग्रह की वृद्धि भी बढ़ती जाती है, जिसका स्वामाधिक परिणाम यह होता है कि जो सभी प्रकार की शारीरिक एवं नागरिक शक्तियों से संयुक्त होते हैं तो अधिक संग्रह करने में समर्थ हो जाते हैं तथा अन्य पिछले जाते हैं। इस अधिक संग्रह से बहुत रो लोगों के पास अभावग्रन्थता की रिथति बन जाती है।

विषमता का ग्राम्य इरी रिथति रो होता है। आज विश्व ली रिथति पर दृष्टि डालें तो दिखाई देगा कि आत्मएं विषमता का अनुभव

कर रही हैं। विभिन्न दृष्टिकोणों, विभिन्न व्यवस्थाओं एवं विभिन्न उपायों से अर्थोपार्जन एवं संग्रह के उदाहरण सबके समक्ष उपस्थिति हैं। इस अमानवीय अर्जन एवं संग्रह की दौड़ में दौड़ने वाली आत्माएं अपने राहजा रवरूप को भूल कर उशाहजा भाव—परिणाम रवरूप उपलब्ध रागांग्री को ग्रहण करने में तनाख हो रही हैं तो इस प्रकार की तन्मयता अथवा उन्मत्ता ने ही मानव मानव के बीच बहुत बड़ी विषमता की खाई तैयार कर दी है।

समता का धरातल आवश्यक

आज का गानव इस गगत्य बुद्धि के राश विचित्र रूप में दृष्टिगत हो रहा है ऐसी विचित्रता ले बीच में विषमता की दीवारों को छाकर समान मानवता की स्थिति लाने के लिये समता का धरातल अवश्यक है। किन्तु प्रश्न है कि समता का धरातल बनेगा कह और कैसे ? नूल रूप से समता का धरातल तभी बनेगा जबकि कोई अपने सहज एवं कमलघत अवस्था के अनुग्राव पर आत्मा को आरुढ़ करके उन रांगूठीय भौतिक पदार्थों के राश में गम एवं पूर्ण जागरूक राम्बन्य न रखकर उन्हें राहजा उपलब्धि के राधन के रूप में ग्रहण करे तथा सामाजिक न्याय की दृष्टि से आवश्यक रूप से उनका उत्सर्ग करने में कर्तव्य संकोच न करें।

अग्नि श्री ढह्डाजी ने अपरिग्रह के विषय में चर्चा के कुछ सूत्र उपरिचित किये हैं जो विवारणीय हैं, किन्तु यह वर्षों बहुत पुराने राग्य रो वलर्ती आ रही है, बाल्कि यों कहना वाहिदे [के नाम् ऐरिटारो] काल में अथवा प्राचीन काल में भी इस देश की सामाजिक व्यवस्था में समता का बहुत बड़ा स्थान था और वह समता अपरिग्रहवाद पर ही आधारित थी। अराल में तो वर्तगान राग्य में ही परिग्रह ला गगत्य चारों ओर अरीगित एवं अगर्यादित आवस्था में बढ़ रहा है और ऐसी दश में अपरिग्रहवाद पर विवार जैना अधिक उपयोगी हो सकता है।

आवश्यकता इस बात की है कि अपरिग्रहवाद पर होने वाली चर्चाओं का यथोष्ट परिणाम जनसमूह के समक्ष आगा चाहिये तकि गावनात्मक दृष्टि से इस विचार के पक्ष में वातावरण बनाया जा सके

और उसके आधार पर आज फैली हुई विषमता को मिटाकर समता के सुदूर धरातल का निर्माण किया जा सके।

अपरिग्रह का स्वरूप

अपरिग्रह के रखरख को रागझने के पूर्व परिग्रह की परिणामा को यदि गरितष्ठ गें ले लिया जाए तो फिर अपरिग्रह का रखरख भी सुबोध हो जाएगा। शास्त्रों एवं दात्वज्ञों ने परिग्रह की परिभाषा विस्तार से की है किन्तु पहले शब्दों से बनने वाली व्युत्पत्ति पर विवार कर लें। परिग्रह शब्द परि और इह के संयोग से बना है। यहि उपर्युक्त है जिसका अर्थ होता है—समन्तात् अर्थात् चारों ओर से। दूसरों से तथा ग्रह का आर्थ—ग्रहण करना, लेना। परिग्रह की जिस शारत्रीय परिभाषा का ऊपर उल्लेख किया है उसी के अनुरूप ही वह व्युत्पत्ति रामनवी परिभाषा भी बनती है। व्युत्पत्ति पर आधारित परिभाषा है

“मूर्छाभावेन यद् ग्राह्यते तदपरिग्रहम्।”

अर्थात् जो चारों ओर से दूसरों से मूर्छा यानी ममत्त्व गाव से ग्रहण किया जए, वह परिग्रह है। चारों ओर से का मतलब चारों दिशाओं या रामी रथानों से लिया जा सकता है। इन्द्रान के गन और गरितष्ठ गें लाब पर—पदार्थ की लालसा तीव्र गात्रा गें प्रकट होती है। उस वक्ता इन्द्रान किसी स्थल विशेष को जोड़ना पसन्द नहीं करता है। जहां से भी उसकी लालसा की तृप्ति होगी, वहां तक भी वह अपने हाथ—पैरों को फैलाने में संकोच नहीं करेगा।

इस परिणामा के साथ यदि आज के नानव के रूपक को लिया जाए तो अधिकांश गानव यत्र—तत्र—रायत्र—चहुं ओर लालरा के गहरे नाथे को भरने के लिये राब प्रकार रो हाथ—पैरों को पत्तक रहे हैं। इस छटपटाहट ने मानव न पछोसी को देख पा रहा है, न उसला दृष्टिकोण समाज के विभिन्न वर्गों की ओर है। और न ही उसले दृष्टि में राष्ट्रीय स्थिति का महत्त्व है। ऐसी परिस्थिति में आत्मिक दृष्टि से वह अपने स्वयं के महत्त्व से भी विस्मृत बना हुआ है। पर—पदार्थों के प्रते पनपती जा रठी रीब्र लालरा ने आत्मा के राहज भाव के क्षीण

बना दिया है। यह पर पदार्थों की लालरा निरन्तर आत्मशक्ति ले दुर्बल बगाती हुई चली जा रही है।

आत्मा की शक्ति का सहज बल आज इस परिग्रह की मात्रा रो आच्छादित है। परिग्रह-लालरा की वृत्तियों रो आत्मा का राहण भाव दबकर आज लराह रहा है किन्तु आपाधापी के इस जमाने में आज उस आवाज को सुनने के लेये कौन तैयार है? इस लालरा की जड़ को अन्नारथा गें रो करना तथा भौतिकता का पादरम्य राम्बन्ध आत्मा के राथ नहीं गानना—यही अपरिग्रह वृत्ति का लक्षण है।

कराहती हुई आत्मा की आवाज

अपरिग्रहवादी ही कराहती हुई आत्मा की आवाज को सुनता है तथा उसको लालराओं के दगन रो ग्रुक्त करता है। जिरा व्यक्ति के गन—गरितष्क गें उस दबी हुई आत्मा की आवाज का रखर आया है, वह अवश्य ही इस दिशा में विनान प्राप्तम् करता है कि स्वयं जी आत्मा को कैसे जगाए तथा सम्पूर्ण विश्व के मनुष्ठों तथा प्राणीसमाज के प्रति समान आत्मानुशूति कैसे उत्पन्न करे? जो स्वयं की आत्मा की कराह को भी अनसूनी करके इस परिग्रह की दौड़ में बोगन होकर भागता जाता है, वह तो राह गें गिलने वाली कराहती अन्य आत्माओं को भी ठोकर गारकर अपनी अपनी व्ययता का ही प्रदर्शन करता है।

पर्युषण पर्व के दिनों में जिस अनागढ़ सूत्र का वावन वल रहा है, उसमें उन्हों आत्माओं के जीवनदृष्टा आये हैं जिन्होंने परिग्रह मुर्छा से अपने आपको ऊपर उताया तथा अपने आत्मबल को यिकसित करके उत्कृष्ट स्थिति की प्राप्ति की। किन्तु प्रतिवर्ष इन जीवन—वृत्तों को सुनल्ल भी आपली ल लराओं की जो दशा देखने गें आती है उससे लगता है कि रारा वर्णन ऊपर—ऊपर रो ही सुना जाता है, जो ऊपर ऊपर से ही बह कर वापिस बाहर चला जाता है। जिस हौज में पहले ही गन्दा पानी लबालब शरा हुआ हो, उसमें कितना ही स्वच्छ जल डाला जाएगा तो वह ऊपर—ऊपर ही रो बाहर निकल जाएगा। क्या गानव—गन की दशा ऐरे ही हौज तो आज नहीं हो रही है?

अन्तस्तल को टटोलिये और धोइये

आज के मानव का गन भी परिग्रह लालरा। रो राम स्थित ऐसी गन्दगी से लबालब रा हुआ है कि उसमें अपरिग्रह के विचारों ली कितनी ही वर्षा हो जाए, किन्तु वह स्वच्छता वहाँ टिकती नहीं है। यदि अपरिग्रहवाद का स्वरूप जल मन के सभी कोनों में छिड़कना है तो पहले उपने अन्तर्रतल को टटोलिये नीचे रो गन्दगी को कुरेदिये और फिर सारे गंदले बानी को बाहर फैंक पर अपरिग्रहवाद की वर्षा को प्रहण लीजिये। परिग्रह ली लालरा को गिराना यों तो कोई रारल कार्य नहीं है। क्योंकि जिसने संसार में परिग्रह को ही सारण्तु समझ कर अपनी सदाशयता की सारी मर्यादाएं तोड़ रखी हैं, भला वह सरलतापूर्वक कैसे आर्थिपार्जन और संग्रह से अपनी लालसाओं को पीछे गोड़ राकता है? उराके लिये यह प्रक्रिया बहुत कठिन है, परन्तु एक बार जब आत्मा ने जागृति का बीज उग जाए, तब फिर उसका परिवर्तन कठिन नहीं रहता।

अपरिग्रह की आवाज मानव—नग में तभी गहराई से गूंज सकती है जब परिग्रह की लालसा को आत्मा के लिये अपवित्रता राख कर उसे राम्पूर्ण रूप से धो लालने का रांकन्य कर लिया जाए तथा अन्तर के सारे परिणामों को सहज बना लिया जाए। इस कारण प्रत्येक मानव को इस दिशा में जागृत होना चाहिये कि वह आत्मिक शक्ति को द्वारा परिग्रह के पिंड के नीचे रो बाहर निकाले तथा उसे पुष्ट बनाए। यह परिग्रह की जो मूर्छा है—समझिये कि कचरा है, मैला है। स्वरूप दर्पण पर निराना मैला कीट जम जाता है, उसनी ही उसकी आना छिप जाती है। मैल लो हटाते जाने पर धीरे धीरे वह आना पूर्वतः फिर प्रकट नी हो जाती है।

आत्मा और दर्पण की आभा

दर्पण की उरड ही आत्मा के शुद्ध रवरूप के ऊपर इन पर पदार्थों की लालसा का कीट मैला जम रहा है जो उसकी आगा को छिपाए हुए है। आत्मा की इस आच्छादित शक्ति को अगर विकरीत करना है एवं उसकी आभा को प्रकाशित बनाना है तो परिग्रह

की मूर्छा के मिटा देना होना। पथ साथ ही न्याय बुझि से यह भी देखना होगा कि इस मूर्छा की ज़ोंतक को न सिर्फ अपने उन्तर से बल्कि समग्र मानव समाज की व्यवस्था की नीचली तह तक से समाप्त कर दिया जाए।

समाज, दर्शन एवं अर्थश स्त्रियों ने उन उपायों पर भी विनाश किया है जिनके द्वारा समाज की व्यवस्था एवं मानव मन से परिग्रह—मूर्छा को कीण लगाया जा सके। इसके लिये इन्होंने स्थामित्य की व्यवस्था को समाप्त करने का सुझाव दिया है। रवागित्य रो ही न गात् पैदा होता है। अगर एक गैल का कोई एक व्यक्ति रखागी नहीं डो तो वह भी अन्य राबले राथ रागान धूति रो कार्य करेगा और प्रतिष्ठल प्राप्त करेगा, अन्यथा जो स्थामी होता है वह उस मैल के जरिये अपनो ही लिये अधिक से अधिक अजंग लरना चाहता है तो उस दृष्टि रो उचित—अनुचित कार्य भी होते हैं तथा विषयता की खाई भी अधिक चौड़ी बनती है।

इस पिच एवं बने हैं और उराकी विविध आलोचना भी होती है किन्तु यह राय रपष्ट है कि वाहे रवागित्व की रिंथिकी को समाप्त करके हो या दूसरे किसी प्रकार से, किन्तु ऐसी सामूहिक और व्यक्तिगत व्यवस्था करनी ही होगी जिसके दबाव से ही सही मनुष्य इस गूर्छा—भाव रे दूर हट राके। रवयं की भी इस देशा में निष्ठा जगानी पड़ेगी।

गूर्छा रूपी गैल को हटाते जाने पर ही आत्मा की आना प्रकटेगी तो उराकी आन्तरिक शक्ति भी प्रकट होने लगेगी। एक बार विकास की गति जम जाएगी तो फिर उक दिन मैल तक भी चरण बढ़ सकेंगे, जहाँ आत्मा की सम्पूर्ण आशा देवीप्राप्ति बन जाए तथा जहाँ आत्मा की रामूर्ण शक्ति प्रगत्यगत के रथरूप के रागकक्ष बनकर आगित रूप में प्रकटित हो जाए।

अपरिग्रही की अन्तर्वृत्ति

अन्तर्गः सूत्र में ही रोत सुदर्शन का वर्णन आया है जिन्होंने

अपरिग्रह का एक साकार रूप उपरिख्यत किया एवं एक अपरिग्रही समाज—रचना का दिल्ली स्वरूप रखा। अपरिग्रह की यह प्रेरणा भी उन्हें शगवान् महात्मीर से ही प्राप्त हुई थी। उन महात्मीर से जिन्होंने चतुर्भिंध रांध के रूप में अपरिग्रही रामाज की रचना का रूपन्नपात किया। इस रांध में जो परिप्रह की रामरत लालसाओं को ही रामापत् नहीं करते, बल्कि परिग्रह का कोई प्रतीक भी अपने पास नहीं रखते। ये हैं साधु और साधी। संप का आधा हिस्सा जो श्रावक और श्राविला का गाना गया है, उनके लेये भी प्राकथन है कि वे पूर्ण रूप रो परिग्रह को न छोड़ें, किन्तु गर्यादित रूप में ही भौतिक पदार्थों को अपने पारा रखें और लालसाओं को निरन्तर कम भरते रहें। कथा समाज रचना का यह प्रेरक रूप आज सबके लिये प्रेरणा का भोपा नहीं बन सकता।

अपरिग्रही की अन्तर्दृति ही इस रूप में परिवर्तित हो जाती है कि उराकी हाँदिलता एवं आत्मीयता रारे विश्व में फैल जाती है और किरी भी दुखों के लिये रवतः की फूटकर राहायक बनने के लिये उत्सुक बनी रहती है। पर पदार्थों को लालसा में ही स्वगुण विस्तृप्त बन जाते हैं। अब अपरिग्रही बन जाने की मनोवशा में उन स्व. गुणों को ग्रहण करने की स्वाधाविक अशिलाषा उत्पन्न हो जाती है।

सुदर्शन सेठ ने जिन स्व. गुणों के आधार पर क्रूरतम वर्जुन गाली का हृदय ही परिवर्तित कर दिया, उराकी कथा आप राब जानते हैं। अर्जुन गाली का खतरा उपरिख्यत होने रो बहर न निकलने की राजकीय धोषणा के बावजूद सुदर्शन सेठ इसलिये निर्भयतापूर्वक भगवान् के पर्शन करने के लिये निकल पड़े कि उन्हें और तो अलग—स्वयं के शरीर रूपी परिग्रह पर भी तगिक ममत्वा नहीं था। आत्म तत्त्व की सहजता को ग्रहण करने के पश्चात् शरीर तक का गोह भी छुट जाता है। ऐरी होती है एक अपरिग्रही की अन्तर्दृति।

अपरिग्रह से आत्मशक्ति का विकास

अपरिग्रह को जीवन में उतार लेने पर जब आत्मशक्ति ला विकास होता है तो उसके प्रभाव से अन्वाहे भी शारीरिक, वायिक-

आदि अन्य शक्तियां भी पुष्ट हो जाती हैं। विशेषता यही होती है कि उस समय सब शक्तियां पर आत्मशक्ति का ही अनुशासन होता है। सेतु सुदर्शन आज की तरह किसी वाहन पर दर्शनार्थ नहीं निकले, वे उस लम्बी दूरी पर भी पैदल ही निकल पड़े। शारीरिक शक्ति रो भी वे राम्पन थे। आज कई लोग गाईक पर बोलने का सुझाव देते हैं। किन्तु जब यह साधन नहीं था तब व्या विशाल जनसमुदाय में प्रवर्चन नहीं होते थे? अभी का उदाहरण है जो स्व. आचर्य श्री फरमाते थे कि दरा हजार की राशि में श्री श्रीगती ररोजिनी नगर्जु की गधुर और तेज आवाज राबको रुनाई देती थी।

'एक राधे राब राधे' के अनुरार एक आत्मशक्ति का यदि इक्षु स होने लगे तो अन्य सांसारिक शक्तियां एवं उपलब्धियां अपने आप अपके श्रीचरणों में गिरने लगेंगी और वह समय ऐसा श्रेष्ठ होना कि फिर भी आपको उनके ग्रति कोई व्यागोह नहीं होगा। एल निरणेष्ठ दृष्टि रो आप उन्हें भी देख लेंगे, तक भी रारा ज्यान आत्मतत्त्व पर ही कोन्द्रित रहेगा।

सहज शक्ति या कृत्रिम साधन ?

आज मानव अपनी आत्मा की सहज शक्ति को भुलाकर जो कृत्रिम साधनों के पीछे पागल बगा हुआ है, स्थगी ओर की उसकी दुर्बलता। इरी कारण रो है। रांरार के रारे साधन वह सचित कर ले, फिर भी उसके अन्तर की शक्तिहीनता प्रकट हुए बिना नहीं रहेगी और दूरारी ओर आर्थिक बलशाली अलबेला अकेला ही परग निर्णय होकर सारे जगत को ललकारता है। वह किसी से भी सत्य कहने में संकोच नहीं करता और कहीं श्री अन्याय को सहन नहीं करके गानवता की प्राण-प्रतिष्ठा करन चाहता है।

आपके सामने महात्माओं, श्रावकों एवं अन्य व्यक्तियों के अनेक उदाहरण हैं जिन्होंने अपनी आत्मशक्ति को प्रलाशित करके रांरार को आदर्श राह बताई। आप भी उस दिशा में अग्ररार हो राकते हैं किन्तु उसके लिये अपरिष्ठ ही बनना आवश्यकता है। संसार के भवचक्र में छुगाने वाली एवं अनन्त द्रुखों में भटकाने वाली यही परिष्ठ

की गगता है—गूच्छी है। यह गगत्य गृग्तुष्णा की तरह होता है जो दुखों ले रेसिस्टान में भगाता ही ले जाता है, किन्तु उसके बाद नी परिग्रह के साथन मिले या नहीं—यह अलग बात है।

एक लंगोटी मात्र धारण करके अपरिग्रह की आवाजा के साथ इस युग में गांधी जैसे माहात्मा ने अतिक शक्ति का प्रकाश फैलाया। कुन्त्रिमा राधनों की लालरा को छोड़कर उन्होंने राहण शविर् ०) अपनाया तो सारे देश पर उनका वर्चस्व भी फैला। अपरिग्रह की इस शक्ति को आप रागझिये तथा परिग्रह लालरा की आपनी दुर्बुद्धि और अप्रतीष्या को हटाकर अपनी स्वस्थ गति को अपरिग्रह की आवाज के पीछे—पीछे गोङ दीजिये।

लाल भग्नन

पप्प

10.9.72

व्यक्ति, समाज और सम्बन्ध

“अभिनन्दन जिन दरशन तरसिये.....”

यह भगवान् श्री अभिनन्दन की प्रार्थना है। भगवद्गीता की अग्निलाष्टा रखने वाला एक जिज्ञासु इस रूप में अपनी आन्तरिक शावना को ल्पक्त कर रहा है। प्रभु के दर्शन की जिज्ञासा जिसके अन्तर में प्रबल रूप से जागृत हो जाती है, वह उसा गार्म पर अपने आप को शीघ्रातिशीघ्र गतिशील भी बना लेता है। यह परमात्मा जो जानने और उस स्वरूप को पाने का जो मार्ग है, उसके बारे में विशिन्न मत, विशिन्न धारणाएं और विशिन्न विचार जानने लो मिलते हैं। जिज्ञासु इन रात्र गत—गान्यताओं को जानता है, किन्तु उसके सम्बन्ध में जब तक वह अपनी स्वयं की कस्तूरी नहीं बना लेता है तब उसके अपना निर्णय नहीं बनाता है।

यस्तुतः वह जिज्ञासु पहले स्वयं अपने आप का दर्शन करना चाहता है। एक व्यक्ति हिमालय पर्वत पर चढ़ने का संकल्प करे तो पहले यह देखना जाऊंची ही गाना जाएगा लिं उसके पारा उचित क्षमता और राधन अपने रांकल्प को पूरा करने के लिये हैं या नहीं। प्रभु के दर्शन करने हैं तो उसके पहले यह देखा जाए कि दर्शन ली अग्निलाष्टा रखने वाला वह जिज्ञासु किस स्तर पर खड़ा है। उसकी वैचारिक, मानसिक और रचनात्मक शक्ति कैसी है तथा जिस समूह के साथ उसका लगाव है, क्या वह उसके उद्देश्य की पूर्ति में सहायक है आदि, तो यह सभी वीन होगा।।

यथार्थ और आदर्श-दोनों हों

जिङ्गारु के सामने आदर्शी तो परगात। का रवरूप होता है जिराकी उपलब्धि हेतु वह प्रयारारत बना चाहता है। उस आदर्शी ली प्राप्ति हेतु उसे अपना यथार्थ देख लेना चाहिये। यदि आदर्श और यथार्थ का सम्यक् बोध नहीं किया जाए तो कितनी दूरी पार करनी होगी—इराका अनुशासन भी नहीं लगता तथा उरा गर्ग पर चलने व गंजिल तल पहुंच रकने की आपनी क्षणता राम्भसी भारणा भी रपष्ट नहीं बनती। आदर्श को यथार्थ के साथ समन्वित करके देखने से ही आपनी क्रियाशीलता जगाई जा सकती है।

यथार्थ और आदर्श का समन्वित रूप हमें वीतराग वाणी में मिलता है। वीतराग वह जिसने कलुष के रूप में अन्तिम बिन्दु (राग) को भी धो डाला है। द्वेष हटाना फिर भी आरान है, किन्तु राग—भाव का त्याग अति कठिन होता है, अतः जिन्होंने आपने राग को बतीत कर दिया है, उनकी वाणी निर्विकार और पथ प्रदर्शक होगी। वह वाणी राग द्वेष आदि विकारों रूपी कलुष से रहित तथा आत्मा ली पर्वेत्र एवं निर्मल शक्ति से प्रकट होने वाली वाणी होती है।

वीतराग वाणी के सदाशय को यथास्थान समझना तथा प्रत्येक वरतु अथवा तत्त्व का तदनुरार गूल्यांकन करना ही यथार्थ और आदर्श—दोनों का राहज रागन्वित रूप प्रकाशित कर रालता है। वह मूल्यांकन सापेक्ष दृष्टि से हो सकता है। दृष्टि का महत्व इस रूप में है कि जो वस्तु स्वरूप जैसा है, वह अपने सत्य स्वरूप में दिखाई दे और उसके सभी रूप ग्रकाश में आ जाए।

व्यक्ति और समाज का मूल्यांकन

इस दृष्टि से यह आवश्यक है कि समाज का मूल्यांकन रामाय के धरातल पर हो तथा व्यक्ति का गूल्यांकन व्यक्ति के धर तल पर हो। व्यक्ति और रामाय इन दोनों का पारपरेत राम्भ अपने आप में छला है मूल्य रखता है मूल रूप में देखें तो व्यक्ति को छोड़ देने पर समाज के नाम का कोई अस्तित्व ही नहीं हो

सकता। उपरी वास्तव में व्यक्तिरा समाज की जड़ है। समाज एक प्रकार रो व्यक्तियों के समूह का ही नाम है। व्यक्ति रो रागाज बनता है। अब ये कोई बीज की सुरक्षा करे तो फराल भी तैयार हो राकती है। किन्तु बीज को दूकरा कर या शूल कर फराल कैरो प्राप्त की जा सकेगी?

जहाँ गूल तत्त्व व्यक्ति है और उसके महत्त्व को यदि विशिष्ट तरीके रो लिया जाए तो उभाइक तत्त्व की स्थिति भी विशिष्ट और आदर्श बन राकती है। रागाज के गूल्यांकन में व्यक्ति का गूल्यांकन निहित है। इसलिये देखना है कि व्यक्ति के जीवन की स्थिति और व्यक्ति-व्यक्ति के साथ रनेह की स्थिति किस प्रकार आ राकेगी?

एक व्यक्ति रथ्यं जाब पठने हृदय में रनेह का पौधा अंकुरित करें। तभी तो वह उस रनेह को दूररों पर प्रकट कर राकेगा। और उन्हें भी रनेह की रेनधता रे परिचित बना राकेगा। रनेह का ऐसा तरज भाव जाब गिरतृत बनता है तो अनुभव के राथ रनेह लौ उपादेयता पर चिन्तन चलता है और फिर रागाज में रनेहिल वातावरण बनता है। इस वातावरण गूल रूप में व्यक्ति को ही अपने रथ्यं के अन्दर रहते हुए भी राधी दृष्टिकोणों को अपने जीवन ने स्थान देते हुए जिरा दृष्टिकोण का जहाँ जैसा मूल्यांकन हो, उस दृष्टिकोण के ऊसी सीमा तक रखना चाहिये।

समूहों का समूह-समाज

जहाँ हम पूरे समाज की बात करें और उसमें व्यक्ति के रूप पर सोचें तो यह पिखाई देगा कि एक ही व्यक्ति एक साथ पूरे समाज से सम्बद्ध नहीं रह सकता है क्योंकि परिवर्य का उसका वह दायरा इतना व्यापक हो सके जो उसके लिये संगत नहीं है। इसकी सुविधा होती है, अपनी-अपनी रुचि या कार्य-क्षेत्र की दृष्टि रो कई प्रकार के रागूह उथता वर्ग बन जाते हैं और एक-एक वर्ग के भी कई रतर। इस तरह व्यक्ति अपने आप को समाज से सम्बन्धित बनाता है। समाज भी इस तरह यिन्हना समूहों के समूह का नाम हो जाता है।

इन रागूहों का निर्गाण विभिन्न क्षेत्रों, गुणों, रवियों, कर्गों, रांकूरों, क्रेयाकलापों आदि के आधार पर होता है। जैरो-विद्यार्थी

वर्ग, व्यापारी वर्ग आदि। दोनों वर्गों में कर्तव्यों की भिन्नता है और बातावरण की शिनाता भी। इस प्रकार वर्गी और समूहों के अपने आधारगत सिद्धान्त और दृष्टिकोण भी बन जाते हैं। ये सिद्धान्त और दृष्टिकोण आपस ने विभिन्न होते हैं और अपने अपने मार्ग से आगे बढ़ना चाहते हैं। ये वर्ग अथवा समूह विभिन्न विवारधाराओं, मान्यताओं, धर्मों, प्रशिक्षणों आदि का प्रतिनिधित्व करते हैं। एक ही व्यक्ति अपनी रुचि के अनुसार एक साथ कई वर्गों अथवा समूहों का सदस्य हो सकता है तथा अलग अलग हैसियत से उनमें कार्य कर सकता है। इस प्रकार व्यक्तियों के जरिये कई समूह भी परस्पर सम्बद्ध होते हैं तो किसी न किसी प्रकार राष्ट्रों का रागान्य राम्बन्दी भी रागाज के साथ बनता है।

समन्वय का प्रश्न

प्रश्न उठता है कि व्यक्ति और ज्यक्ति का, ल्यक्ति और समूह का, व्यक्ति और सनज का एवं समूह और समाज का परस्पर समन्वय कैसे स्थापित किया जाए? प्रत्येक व्यक्ति या समूह अपना मत, विचार या सिद्धान्त रखते हुए भी समाज के साथ कैसे समन्वय करे? विद्यार्थियों या व्यापारियों के वर्ग हैं तो राजनीतिक क्षेत्र के अनुसार विभिन्न विचार धाराएं और राजनीतिक दल हैं। सभी दल लोगों ले अपनी—अपनी ओर आकर्षित करना चाहते हैं। इन अलग—अलग समूहों के विलय होने का साल नहीं, सवाल है परस्पर सम्बन्धों का। परस्पर सुसम्बन्धों को ही समन्वय कहा जा सकता है।

इस समन्वय के लिये सबसे बड़ा लड़ायक सिद्धान्त है हमारा स्याद्वाद का सिद्धान्त। सापेक्ष दृष्टि से जब व्यक्ति या समूह एक दूसरे को सनज्ञते रहते तो समाज के व्यवस्थित रूप में लवधान उपरिख्यत नहीं होगा। कई कम सनज्ञ लोगों का रख्याल हो सकता है कि स्याद्वाद का सिद्धान्त तो मेंद डालने वाला सिद्धान्त है, जो इसे भी सही मानता है और उसे भी सही मानता है। किन्तु वास्तविकता यह है कि सभी के दृष्टिकोण को सहानुभूतिपूर्वक सुनकर उनके सत्यांशों को ग्रहण करते हुए एक स्वस्थ एवं सामंजस्यपूर्ण दृष्टिकोण के निर्माण की प्रेरणा। इस श्रेष्ठ रिद्धान्त रोगिलती है।

मैं स्याह्वाद का दृष्टिकोण आपके सामने रख रहा हूं। सम्पूर्ण मानव—संख्या को शामिल करें तो वह मानव—समाज है ही। अब पशुओं का भी सन्नूह है परन्तु स्यात् इब्द का मानव समाज के लिये प्रयोग करें तो वह वाक्य होगा—‘स्यात् अस्येव मानव रागाजः’ तो यह स्यात् शब्द प्रकार करता है कि मानव रागाज़ पशु रागाज़ नहीं है। अपने द्रव्य, दोत्र, काल, भाव की दृष्टि से तो मानव समाज असंशय रूप है। किन्तु पशु समाज की द्रव्य, दोत्र, काल, भाव की दृष्टि से मानव रागाज नहीं है। अगर एल दृष्टि रो अरित है तो दूरारी दृष्टि रो नारित भी होगी। वर्तु—रवरूप लों पहचानने ले लिये वह दृष्टिमेद नहीं है। अपेक्षा सभी दृष्टियों से उसे समन्वय के साथ पहचानने की सम्भवता विद्यि है।

अनेकधर्मी वस्तु की पहचान

सिक्के की दो बाजू होते हैं और एक ही बाजू को देखकर उसे पूरा रिक्का कोई बता दे तो उसकी बात राहीं नहीं होगी। रिक्के ला पूरा ज्ञान तो उसकी दोनों बाजूओं को देखने पर ही होगा। इरो प्रकार अनेकधर्मी के पिण्ड वस्तु होती है। उन अनेकधर्मी को विभिन्न प्रकारों से समझाने और वस्तु के पूर्ण स्वरूप का परिवर्य पाने के लिये स्याह्वाद ही एक समर्थ स्विकृत है और अब तो विज्ञान—जगत् ने भी इसको पूरी मान्यता दे दी है। सापेक्ष दृष्टि से आत्मा भी एक तत्त्व है। गडात्मा वह आत्मा का विशिष्ट तत्त्व है तो आत्मा के राधारूप और विशिष्ट रवरूप को रागाने के लिए विशिष्ट परिमाणाओं के राथ स्याह्वाद का प्रयोग किया जाता है। अगर वस्तु के एक ही धर्म जा उसका समर्त स्वरूप मान लिया जाए तो अंधों द्वारा हाथी के एक—एक अंग को ही नुरा हाथी गानने जौरी बात हो जाएगी।

वस्तु की तरह ही व्यक्ति या समूह का भी एक ही रूप नहीं होता। यादे एक ही रूप को रागप्र रूप मान लें, तब एक एकांगी दृष्टिकोण होगा। जैसे ५७ व्यक्ति को पिता ही कह दें तो वह गला हो सकता है। इस दृष्टि से कि वह अपने पिता की अपेक्षा से पुत्र भी

है, मामा की अपेक्षा से भानजा भी है आदि। तो उस व्यक्तिको उसके सभी सम्बन्धों के परिप्रेक्ष्य में समझना होगा तथा जिस सनय जिस सम्बोधन की आवश्यकता हो उस समय उसे उस सम्बोधन से पहचानना होगा। तभी उसके हिभिन्न सम्बन्धों में विवाद नहीं होगा।

इसी तरह व्यक्ति, रामूँह और रामाज के प्रतिक्रिया सम्बन्धों में भी सापेक्ष दृष्टि रखने और जिस समय जिस वक्ता पर बल देना हो, उस पर बल देने से सब में सार्थक समन्वय बिठाया जा सकता है। ऐसी रिश्तति गें राबर्गें रागान्नाय गी हो जाएगा तथा प्रलेल के गूल धरतल की रक्षा भी हो जाएगी।

समाज और समता

यदि समन्वय की दृष्टि के साथ वस्तुस्वरूप की पहचान ली जाए और लक्षित का रागाज ले राथ तालगेल बिठाया जाए तो रामूँह के गूल्यांकन अधिक गहरापूर्ण बन जाएगा। एक और तो व्यक्ति की स्वयं की निष्ठा हो तो दूसरी ओर समाज का वारावरण भी उसके अनुकूल बनाया जाए तो इस दुहरे प्रभाव से व्यक्ति का सुधार और उसके जरिये समाज का सुधार आसान हो जाएगा। समाज में समता स्थापित करने ले ही प्रश्न को लीजिये। एक व्यक्ति एक छोर रो रागाता दर्शन के निष्ठापूर्वक उपने जीवन में उत्तारता है तो उसके सुफल को देखकर दूसरा व्यक्ति उस ओर आकर्षित होगा। तो इस प्रति उसका आचरण व्याप्त बनता जाएगा। इसके साथ ही यदि दूसरे छोर से सामाजिक और सामूहिक प्रयत्नों से समता की भावना को कार्य रूप दिया जाता है तो रागाता की स्थापना का कार्य अधिक रारल बन जाएगा।

वाहे राज्य की शक्ति हो अथवा संस्था की शक्ति कानून अथवा नियन की रखने वालों की जाती है, जब काफी लोगों का वैसे कानून या नियम के पक्ष में मत बन जाता है। व्यक्ति-व्यक्ति ली निष्ठा मिलकर ही तो राज्य की शक्ति बनती है फिर वो वह शक्ति व्यक्ति की नियंत्रक भी बन जाती है। इसी जिये कहा जाता है कि व्यक्ति की शक्ति रो रागाजिक शक्ति बड़ी होकर व्यक्ति को नियंत्रण

में स्थिती है। सभी एवं नैतिकता के प्रसार में इस प्रकार दोनों शक्तियों की सहायता ली जा सकती है।

सामाजिक शक्ति का महत्व

व्यक्ति की राहगति रो उत्पन्न होकर भी रागूह की शक्ति बड़ी बन जाती है। व्यक्ति रखेच्छा रो ही रागाजिक नियंत्रण को बनाता है, किन्तु फिर नियन्त्रण नुसार बलात् भी उसे उसके अधीन रहना पड़ता है। सब मिल करके एक धरातल पर एक नियनावली की रवना कर लेते हैं जिससे सारा समाज व्यक्ति-पिण्ड से ललग रहते हुए भी सामाजिक रूप से एकजुट हो जाता है।

उदाहरण के लिये देखिये कि रागने की धूप को रेलने के लिये पर्दा बंधा हुआ है। यह पर्दा क्या अपना रखतंत्र अरितत्त्व रखता है अथवा इसका अस्तित्व इसके धारों पर टिका हुआ है? एक एक धारा। भिलकर ही वे पर्दा बना है, किन्तु क्या एक एक धारा अलग कर दिया जाए, तब वह धूप को रोक सकेगा? पर्दे का अस्तित्व धारों पर है। किर भी धारों से अलग एक विशिष्ट शक्ति या रूप पर्दे के कपड़े का बन जाता है। धारे अगर व्यवस्थित रूप से नहीं जुँड़े हुए हों, तब भी उपयोगी पर्दा नहीं बन सकें।।

इससे निष्कर्ष निकलता है कि सामाजिक शाविता का अपना विशिष्ट महत्व बन जाता है, बशर्ते कि उसमें व्यक्तियों और समूहों का व्यवस्थित अनुशासन हो। यह सामाजिक शक्ति व्यक्ति को बुरी ओर जाने से रोकती है तथा अच्छाई की तरफ प्रेरित करती है। व्यक्ति जिपाना, विवेकशील और जागृत होगा, उसकी रागाजिक शक्ति भी उतनी ही सुगठित बने रहेगी।।

एक ही ढोरी के दो छोर

व्यक्ति और समाज अलग अलग नहीं, एक ही ढोरी के दो छोर हैं जपनी शक्ति की दृष्टि से। व्यक्ति की शक्ति एक ओर से चलती है तो सामाजिकता को पुष्ट बनाती है और सामाजिक शक्ति

भी पूसरे छोर से बलकर व्यक्तिके सद्गुणों को प्रकाशित करती है। व्यक्ति और समाज के बीच ऐसी ही स्वस्थ परिपाटी होनी चाहिये।

अग्निनदन भगवान् की प्रार्थना का यही दृष्टिकोण है कि हम उनके दर्शन करें। कौरों होंगे उनके दर्शन? इराके लिये हम अपने निज का दर्शन करें। अपने पड़ोसी के दर्शन करें। समाज के दर्शन करें। राष्ट्र और विश्व के दर्शन करें और विश्व के हार्दिक दर्शन के बाद अग्निनदन प्रगुल्मे दर्शन करें। इस दिशा में सभी व्यक्तियों और समूहों में विचार—समता का भ्रातृता बनाना आवश्यक होगा। व्यक्ति अपने जीवन के रास्थ अल राकता है किन्तु रामाय के गुरुजोंका जो नहीं मुला राकता है। रामाय के राहयोग रो ही वह अधिक विकार सम्यादित कर लज्जता है। यह भी नहीं हो कि समाज की महत्ता के पीछे व्यक्ति का मूल्यांकन घटा दिया जाए और व्यक्ति को समाज की कठोरता के रागने विवश बना दिया जाए। देनों और का रान्तुलन भी प्रगताशयक है।

रामाय की जड़ें व्यक्ति में उरी प्रकार हैं। जिरा प्रकार प्रौढ़वरथा की जड़ें बवपन में होती हैं। बवपन में जिन-जिन संस्कारों को संचित कर लिया जाता है, उनका प्रभाव प्रौढ़वरथा तक बना रहता है। व्यक्ति का जैसा निर्णय होगा उसी का प्रणाव रामायिक रचना पर भी निश्चित रूप रो पड़ेगा। यदि बचपन में ही रुरांकार कुंठित बन जाएं तो उसकी प्रौढ़वरथा को रुक्खरना लाफी कहिन कार्य बन जाएगा। उसी तरह व्यक्ति को बिगड़ते रहने पेकर समाज को श्रेष्ठ बनाने की कल्पना भी खरी नहीं उपरेगी। व्यक्ति और समाज के संस्कारों को समन्वित बनाना पड़ेगा।

व्यक्ति की सजगता पहले जरूरी

आप अयचन्ता कुमार का चरित्र सुन रहे हैं। इतनी बाल अवरथा में जिन्होंने वैरागी बनकर दीक्षा ले ली, उनकी कितनी राजगता रही होनी? कहा जा राकता है कि छोटी वय नैं आत्मा, परनात्मा, धर्म और कर्म के गम्भीर नड़व को उन्होंने कैसे समझा।

होगा ? यदि व्यक्तिकी संजगता हो तो यह असम्भव नहीं है। दूसरे उनके नता—पिता वीं इन्हें स्वजग थे, जिन्होंने अपनी सन्तान पर सुसंस्कार लाले। सद्गुण जब व्यक्ति अपनाते हैं तो इन्हीं गुणों के साथ रामाज की रुद्धि रखना होती है।

कभी कभी विशिष्ट व्यक्ति भी संस्था या समाज का रूप ले लेते हैं। ऐसा उनकी दिव्य साधना के बल पर है छोता है। भगवान् महातीर थे तो एक ल्यॉट थी, किन्तु चतुर्विंश संघ के निर्माता एवं अति प्रशावशाली विश्वाति होने के कारण स्वयं ही समाज रूप थे। उनकी अनुपम तेजोग्राह्यता रो ही तो छोटी वय छोने पर भी अपनी अपूर्व राजगता के कारण अव्यवन्ता कुणार उनके अलौकिक व्यक्तित्व से आकर्षित होकर दीक्षित बनने के लिये तत्पर हो गये। इसे हफीकत में संस्कार निर्गाण का है प्रगाह गानना चाहिये। रांकार भी एक प्रकार ली रागाजिक परम्परा है, जो यदि व्यक्ति राजन द्वारा तो राथें एवं सजीव रूप में ढलती हुई आगे की पीढ़ियों को श्रेष्ठ जीवन की ओर भोड़ती रहती है।

संस्कारों की सामाजिकता

प्राचीन काल में इसी दृष्टि से संस्कार निर्माण पर बहुत अधिक बल दिया जाता था। वह इसी कारण कि वह कार्य एक पीढ़ी का ही न होकर रागाजिक परम्परा के रूप में कई पीढ़ियों का हो जाता था। प्राचीन शिक्षा—पद्धति इसी उद्देश्य रो निर्गित की गई थी। उरा रागय शिक्षा का उद्देश्य यह बताया गया था—“सा विद्या य विमुक्तये।” अर्थात् ‘वेदा या शिक्षा वह’ है जो जीवन को मुकेत की ओर ले जाए। मुकेत क्य ? यिकारों और वासनाओं से मुक्ति—जीवन लो गिराने वाले तत्त्वों से मुक्ति। ऐसा उस समय शिक्षा का उद्देश्य था। आज की शिक्षा—पद्धति इसारों विपरीत उपने ऊचे रतरों तक भी छात्र के गन में रागाजिकता के रांकारों को रुद्धि नहीं बना पाती है। आज का शिक्षित युवक समाज के प्रति अपने उत्तरदायित्वों को भी भलीभांति नहीं समझता है।

वर्दीनान शिक्षा में इन्हीं सामाजिकता के संस्कारों के अभाव में एक और व्यक्ति उच्छृंखलता की ओर बढ़ रहा है तो दूसरी ओर उद्दंड लाकृतियों के कारण सामाजिक शक्ति का तेज घटने लगा है। ऐसी शिक्षा और ऐसे रांकरारों गें छलकर जो बच्चे शिक्षा लेकर जीवन गें प्रवेश करेंगे, वे भी रामाज को कोरोंगे कि रामाज ने उन्हें जीवन निर्गाण की सर्वी कला नहीं सिखाई। सामाजिकता के संस्कारों के अभाव में ही हिंसक शक्तियाँ जोर पकड़ती हैं और सामाजिक अनुशासन मन्द हो जाता है।

समन्वय से साधना की ओर

इरानिये व्यक्ति, रामूह और रामाज का यदि पररपर रामन्वय बैठ जए तो एक नया ही डिलाइक वातावरण बन जाता है। समन्वित यातावरणों में सद्भावना मजबूत बनती है और सद्वृत्तियाँ सक्रिय। ऐसी अवस्था में आत्म साधना की ओर व्यक्तियों की रुचि जागृत होना रघाशालिक हो जाता है। उरा रामय ऐसा ही रामन्वित रूप रामाज का रहा होगा तभी ते आयवन्ता कूगार जैरा बालक भी राटड़ा ही साधना की ओर मुँह गय। बहरो प नी में उन्होंने पात्र रूपी नाव क्या तिराई कि अपनी रुचि की आत्मा रूपी नाव को संसार के भववका से तिराकर ले गये।

जब व्यक्ति अपनी सदाशयता से समृङ् और समाज ला अनुशासन रखीकार करता है तो उराके राथ आवश्यकता का रूब्र भी जुड़ा रहता है। यह आवश्यकता उर के जीवन निर्वाह के पदार्थों के सम्बन्ध में भी होती है तो ज्ञान और कर्म की साधना ले सम्बन्ध में भी। अकेला व्यक्ति सामाजिक सहयोग से ही जन्म लेता है तो अपनी गौतिक आवश्यकताओं की पूर्ति के साथ आध्यात्मिकता ला पान भी उसके लिये सामाजिक देन ही होता है। इस तरह परस्पर के हितों से व्यक्ति और रामाज का रामन्वय जुड़ा रहता है। जिसके लिये प्रयारा यह होना चाहिये कि वह रानुलित और रामन्वित रूप गें बना रहे।

ऐसे समन्वित रूप के अस्तित्व में व्यक्ति अपनी उच्चताम

उन्नति की पिशा में तेजी से बढ़ सकता है, क्योंकि सारी सामाजिक व्यवस्था उसकी गति में योग देने वाली होगी। धारातल है तो समाज है, और धरतल जितना समतल और सुखद होगा, ल्याकित उस पर उतनी ही तेजी और विश्वास रो चल राकेगा, बल्लू दौड़ राकेगा।। रा।७ के श्रेष्ठ वातावरण गें व्यक्ति अपनी आत्म-राधना की उत्कृष्ट स्थिति भी सरलतापूर्वक प्राप्त कर सकता है।

ल्याकित, सनूह और समाज एवं उनके बीच समन्वय का सापेक्ष दृष्टिकोण के साथ मूल्यांकन किया जाएगा तो वैसी स्थिति ल्याकित के रामी क्षेत्रों में उत्पत्ता। विकास को पूर्णतया अनुप्राणित करेगी। इसके राथ ही व्यक्ति को अपने आत्मरथरूप को निर्गंत बनाने एवं प्रभु अभिनन्दन को दर्शन करने के लिये अपनी ही निर्मित समाज व्यवस्था को सुचारू एवं उस योग्य बनाने से भी विरत नहीं रहना चाहिये।

■■■

लाल भवन

11.9.72

संवत्सरी की हार्दिकता

“मत मतभेदे रे जई पूछिये.....”

ये पंक्तियाँ भगवान् श्री अभिनन्दनदेव की प्रार्थना की हैं। इस आत्मा को प्रश्नु के दर्शन की प्यास है। यह प्यास जितनी तीव्र होगी, अन्तःलरण को शुद्ध बनाने का यता भी उतना ही सघन रूप से आत्मा करेगी। क्योंकि जब तक अन्तःकरण दर्पणायत् न बन जाए, प्रभु जा प्रियविष्व उरांगे कैरो दिख ई दे राकता है? इरी प्यारा जा घटला प्रकटीकरण प्रार्थना के रूप में उद्भूत होता है। वर्णी के माध्यम से प्रभु के स्वरूप के हृदयंगम करने की शावना प्रार्थना की वृत्ति जगाती है।

अलौकिक दर्शन करना सब चाहते हैं, लेकिन चेतना—शुद्धि के दिना वह चांगल नहीं है और चेतना—शुद्धि के लिए राधना का जो क्रग बनना वाहिए शायद उसे अपनाने एवं सफल बन ने के लिए आपकी रुचि परिपवव हो नहीं पा रही है किन्तु आज का जो संवत्सरी महापर्व का पवेत्र अवसर है, इस पर चेतना—शुद्धि वा संकल्प अवश्यक दृढ़त्र बना लै ताकि प्रशुदर्शन की पिपास शान्त हो सके। बिना कर्म के फल गिलता नहीं और प्रभुदर्शन जौरो श्रेष्ठतमा फल ली प्राप्ति के लिए निश्चय ही आपशुद्धि का कर्म नी अति कठिन होता है, जिसके लिए ज्ञान, दर्शन और वारित्रय के रत्न त्रय को निष्पापूर्वक आराधना आवश्यक है।

आत्मशुद्धि और प्रशुदर्शन के मुख्य अवरोध रूप कर्मों का पुंज है, जिसके क्षण हुए बिना लक्ष्य लो प्राप्ति नहीं हो राकेगी। कर्गों ला छवकक्ष ज्योही हटेग, आत्म प्रकाश की किरणों में प्रभु का अलौकिक

दर्शन अवश्य है सुलभ हो जाएगा। वैसी स्थिति में आत्मा को अपूर्व तृप्ति का आगास भी होगा।

जीवन का चहुंमुखी विकास

आनन्दकरण की शुद्धि तब बन राकेगी, जब आगके जीवन के प्रतिक्षण का चिन्तन और आनन्दकरण शुद्ध बनेगा। जीवन में खाते पीते, उठते बैठते, सोवते विवारते और काम करते समय सदैव यह सतार्कता बनानी होगी कि हर समय कुविवारों या कुकृत्यों की तानेक सी भी मलिनता आत्मा को मलिन न बनाए। जब रेसा अग्यास पुष्ट होने लगेगा तब जीवन में पिशुद्धता का एक स्थिर साधारण बनता जाएगा। इस पुष्ट अभ्यार के बाद ही आनन्दकरण की शुद्धि आरापारा और दूर तक के रारे वाचावरण में बगाने लगेगी।

परम निर्मलता की द्वारा में जब आत्मा को अपूर्व रूपि मिलेगी तो जीवन का चहुंमुखी विकास प्रभावपूर्ण बन जाएगा, बल्कि वह पिलास सारे समाज में एक नई सदूर्हि और प्रेरणा पूँछने लगेगा। साक्षात्कारणतः जहां चतुर्मुखी विकास का सुअवसर आता है तो उस समय कई प्रकार की उलझानें भी उपारेथिए हो जाती हैं और उन उलझानों का चुलझाने के लिए अनेक प्रयत्न किये जाते हैं लेकिन प्रयत्न करने हुए भी इन्सान को सफलता के दर्शन नहीं होते हैं तो वह हतोत्साहित होने लगता है। उस समय ज्ञानियों के वचनों से ही पुणः प्रेरणा जागती है और उत्तराह उत्पन्न होता है। इराजिए रादैव ज्ञनियों के वचनों को प्रकाश—रेखा की तरह ॥निये और अधिकारपूर्ण उपने हृदयों में उजाला कीजिये।

दर्शन विधि से ही होंगे

प्रभु के दर्शन अथवा अनन्दकरण की शुद्धि के लिये ज्ञानियों द्वारा निर्देशित विधि का ही अनुकरण करना पड़ेगा। नजिल पर रास्ते से ही पहुंचा जा सकेगा और इस रास्ते का नाम ही विधि है विधि का अर्थ है—श्रिति—नीति। व्यवस्थित श्रिति—नीति जीवन में नहीं होगी।

तो अविधि की स्थिति में लक्ष्य यतो दूर रहा। उसका मार्ग भी हाथ नहीं आयगा। विशिष्टार्थक साधना के पथ पर बढ़ने से प्रशु के दर्शन सुलग हो जाएँगे।

विधि की दृष्टि रो ही रांचरासी गहापर्व का आपूर्य गहात्म्य है। वर्ष में एक बार आने वाला इह महापर्व आत्मा को जगाने वाला होता है, इसीलिए सबको प्रतीक्षा रहती है कि कब यह महापर्व आए और कह आत्मा को अपनी उच्चतम सत्ता को प्राप्त करने की अथव लगन लगे? यद्यनि इस महापर्व की आरधना के लए पर्यूषण का पूरा सप्ताह मिला है जिसमें खिचार गाथन, तपासधन एवं यारित्य—साधना के द्वारा आत्मा ने काकी पृष्ठ भूमिका तैयार कर ली होगी और आज आठवें दिन तो उस तैयारी के आधार पर उल्लेखनीय रूप से साधना को सफल बनाने का सबके लिए सुअवसर हैं जैसा वैतराग देव ने विधि विधान का उल्लेख किया है के अलग—अलग रत्नों पर आचार का रखण क्या हो—उच्ची विधि के अनुसार आत्मा चले और आगे बढ़ती रहे तो एक दिन प्रनु के निजात्म रूप में ही साक्षात् दर्शन अवश्य हो सकें।

संवत्सरी का शुभ मुहूर्त

यदि हृदय गें प्रभुदर्शन की रात्री निष्ठा है तो अन्नाकृष्ण जी शुद्धि हेतु प्रारम्भ की जाने वली महायात्रा का संवत्सरी से बढ़कर दूसरा शुण मुहूर्त नहीं हो सकता है। संसार में आप अपने किसी भी कार्य के गंगल के लिए ज्योतिषी रो ग्रहूर्त दिखायाते हैं और उरा ग्रहूर्त पर विश्वास करके उरा कार्यरम्भ के लिए तरान बते हैं। जब एक छद्मव्य के मुहूर्त पर आप विश्वास कर लेते हैं तो तीर्थकर देव द्वारा बताये संवत्सरी के मुहूर्त पर आपका किराना प्रणाल विश्वास होना चाहिए ?

चातुर्मास लगने के पश्चात् पचासवें दिन संवत्सरी मनाने वा ग्रहूर्त रवाण भगवान् गहावीर ने निकाला है। रागतायांग रूप गे इस उल्लेख है कि एक गाह और इक्कीरा रात्रि (चातुर्गारा प्रारम्भ के) बीतने पर संवत्सरी मनाई जाए। शास्त्र के कथनानुसार तीर्थ कर देव ने

संवत्सरी पर्व को स्वयं अपने ज्ञान में देखा। तब सन्होने गणधरों के सामने रखा और गणधरों ने स्वयं संवत्सरी मना कर इस परम्परा ला सूत्रपात किया। यह परम्परा आचार्यों के जरिये चलती हुई चतुर्विधि रांध द्वारा आज तक निबाही जा रही है।

संवत्सरी महापर्व का आराधन यदि कोई अपनी समूर्ण क्षमता एवं निष्ठा के साथ करे तो उसके लिए आत्मोन्नति का कठिन मार्ग भी निर्बाध हो जाता है। विषय—कषायों का कर्म रूप में जितना पूर्ण संचय है अथवा जो नित नवीन संचय किया जाता है वह तब अपवित्रता ला प्रतिफल है। अतः राशी वीचित अपवित्रता को रामाप्त करने के निश्चय के साथ जब आत्मा पवित्रता की ओर गति करती है, तब अन्तर ली ज्योति प्रकाशित होती है।

आयोजन प्राणवान् द्वे

पर्युषण पर्व के प्रसंग में भाई बहिन उपस्थित होते रहते हैं तथा व्यस्तता के बावजूद कुछ घड़िया साधु—सर्वों के समीप लातीत करने के लिए हो आते हैं। ऐसे धार्मिक संस्कार बड़े बुजुर्ग और गाताएं छोटे बच्चों तक गें डालने का प्रयास करती हैं। छोटे—छोटे बच्चे—बच्ची भी उपवास पञ्चखने हैं। कल ही एक बहुत छेठी बच्ची पतस्थिनी बहिन के साथ आई और उपवास पञ्चखने की जिद्द करने लगी। मैंने पूछा कि क्या वह उपवास कर पाएगी तो उसकी माता ने उत्तराह सो कहा—जारूर कर लेगी। गें रागझा के अनुरार ही पञ्चखना कराता हूं कि उरा तप ला आराधन गन, वन्नन और काया—तीनों ली खिरता के साथ ही कोई केस रूप में कर सक्ते।

रांवत्सरी का आयोजन एक जीवित परम्परा के रूप में प्राणवन दृष्टि से किया जाना चाहिए और किसी भी बाह्य क्रिया ला प्राण उसकी आन्तरिक शावना में निहित होता है। शावना के साथ कर्म होता है तो वह अन्तर को निर्गत बनता है और रुढ़ता के राश तथा हिना अन्तर की जागृति के किया जाने लाला कर्म राशक बने—इराली कल्पना नहीं की जानी चाहिए। आखिर जिस शरीर में से प्राण निकल

जाए, उस ल श को कौन बुद्धिमान् किरानी देस तक अपने पास स्थाना वाहेगा ?

आयोजना प्राणवान् हो—इसका श्रेष्ठ अवसर भी संवत्सरी इराजिये हैं कि इराका निर्धारण शान्ति के 50वें दिन किया गया है। जह सृष्टि में प्रलयकारी परिवर्तन आता है तब सात सात दिन ली सात प्रकार लि काल—वृष्टियां हुआ करती हैं और फिर 50वें दिन शान्ति बरताती है। शान्ति के इस प्ररंग को उत्तोत्थान के नियोजित लिया जाए—यह विशेष उत्साह का प्रसंग बनता है। गैज़ानिक दृष्टि से भी यह निर्धारण रातंशा उनित रागय पर है—जिरा सम्य मनुष्य के उल्कास्त भाव भी वर्ष के वेग वाले नालों की तरह तीव्र गति से प्रगाहित हो सकते हैं। ऐसे पर्यूषण के पूरे सप्ताह में भी जो आत राघवा न ले राका हो, वह उ ज के दिन तो उराकी प्राण—प्राप्तेष्व कर ही जैं।

बीता अवसर फिर नहीं आएगा

संसार मे कमाई के कामों का मोह बहुत से व्यापारी, किसान अथवा उन्य भाई नहीं छोड़ सकते होंगे, फिर भी आज के दिन भी गिराने अपनी आत्मा की ओर लक्ष्य नहीं किया, उन्हें रोज लेना चाहिये कि बीता अवसर फिर नहीं आएगा।

इस राम्भन्दि में एक दृष्टान्त याद आ गया है। एक गाँणित ज्योतिष के विद्वान थे, किन्तु उनकी आर्थिक स्थिति बहुत कमज़ोर थी तथा उनकी पली हर समय उनको कोसा करती थी। एक दिन उन्होंने अपनी पली से कहा—मैंने एक ऐसे मुहूर्त की जान कारी खोज निकाली है कि उरा रागन आगर चाहे जितनी जवारी गरण पानी में डाल जौ जाए वह राब गोती बन जाएगी। पली जे पहले तो अश्रद्धा दृश्य, फिर सोचा कि शायद अध्ययन से जानकारी हुई हो। उसने पूछा वह मुहूर्त कह आएगा ? विद्वान् ने कहा तुम जवारी, गरम पानी बगैर तौयार कर लो, जब मैं अक्षरन की बीच हूं (हुंकार) कहूं तो तुम समझ लेना कि वह मुहूर्त अ गया है। जवारी पानी में डालने की तब एल पल भी ढील गा करा, वरना गुहूर्त निकल जाएगा।

पत्नी रत्नगल पड़ोसिन से बोस सेर जवारी मांगने निकल गई। पड़ोसिन ने कारण पूछा तो उसने सब बत—सच बता दी। पड़ोसिन ने उसे बीत सेर जवारी दे दी, किन्तु स्वयं से भी साफ जवारी व गरम पानी तैयार कर लिया तथा विद्वान के गकान की तरफ वाली दीवार पर कान लगाकर बैठ गई कि ज्यो—ही 'हूँ' का रांकेट होगा। वह भी जवारी गरम पानी में छाल देगी, क्योंकि मोती बनाने का मुहूर्त तो सबके लिये है।

मुहूर्त अते ही विद्वान ने 'हूँ' शब्द का उच्चारण किया। अरावद्धान पत्नी ने रांकेट को नहीं रागड़ा और पूछने लगी—या 'हूँ' विद्वान रोचने लगा कि रागथ कितन रुक्खा है और यह रगड़ा नहीं रही है। मैंने पहले ही बता दिया था कि बोलने और समझाने का समय नहीं रहेगा। खैर वह समय तो निकल नया। समय के बाद विद्वान् जी पत्नी ने जवारी गरण पानी ने डाली रो तो गूगरी बन गई। जब उराने देखा कि गोती नहीं है तो वह अतीत छुट्ट हो उठी।

उधार पड़ोसिन ने रांकेट का रावधानीपूर्वक ध्यान रखा। और 'हूँ' सुनते ही उराने जवारी गरण पानी गें छाल दी। जवारी मोती बन गई। उसने विद्वान महाशय के प्रति अपनी कृतज्ञता प्रकट करने के लिये मुहुरी गर मोती लेकर उन्हें बैठ करने के लिये लाई। विद्वान् को तो अपने राहीज्ञान की प्ररान्तता हुई, किन्तु वे गोती देखकर विद्वान् रो बोली— गेरे रो भूज हो गई, आब ऐरा ही गुहूर्त एकबार और निकाल दीजिये। विद्वान ने कहा बीत हुआ अवसर पिस लौटकर नहीं आया करता।। पल के साथ जो साध लिया, वह साध लिय वरन। वह पल किर आगे वाला नहीं।

यह मोती बनाने का बक्त है

यह रावतरारी गहापर्व का गुहूर्त आरावद्धाना के गोती बनाने का बक्त है। अगर विद्वान् की पत्नी की तरह असावधान रह गये तो टब्बा निकल जाएगा और सिर्फ पश्चाताप रह जाएगा। पड़ोसिन की तरह सावधनी रखेंगे तो बक्त के मोती बना सकेंगे।

पर्यूषण की दृष्टि से मैं कभी कभी गायन की कलियों के रूप में पर्व की महत्ता बताया करता हूँ—

पर्वराज ही है पर्वों में श्रेयकार।

पर्वराज जब यह आता, दुनिया में आनन्द छाजता।

शत्रु भी मिल बन जाता, करना जय जयकार॥

पर्वराज को जो अपनाता, आनन्द मंगल सब वह पाता।

प्रेम पात सब ही को पढ़ाता, करता शान्ति प्रसार॥

पर्यूषण पर्व की महत्ता ले लिये उसकी शब्द—व्युत्पत्ति का अर्थ रामज्ञाना होगा। परि +उप रगना रो गिलकर रह शब्द बना है। इराका भावार्थ है कि चारों ओर रो एक रथन पर विश्वा नित लेना। वह एक स्थान है आत्म अर्थात् आत्मा ने निवास करना। साथ्य है आत्मिक शक्तियों का सम्पूर्ण दर्शन करके उस दिव्य शक्ति में अपने दृश्य को अग्रिम्यक्त कर लेना। इसका साधन है—परि—उपसमना। विषय—विकार शान्त होते हैं तो जीवन की निर्गति। बड़ी है। कषय नष्ट होते हैं तो शत्रुओं को मिन्न बना लिया जाता है। और ऐसी साधना करने का आत्मनिक मुहूर्त यह पर्वराज का समय है। इस समय में आप सावधान बनो और अपने अन्तःकरण को शुद्ध बनाने के रुकूल्य गें लगें तो त्तरण रखिये, यह गोती बनाने का वक्त है और वक्त से आपने गोती बना लिये तो गहान् आण्डिक शृद्धि के रूपागी बन सकेंगे।

तपाराधन की क्रान्ति

इन दिनों ने तपरया के रंग जोर पकड़ रहा है और बहिनों का गुकाबला भाई नहीं कर पा रहे हैं। केरी भी क्षेत्र में हो, गाताओं की शब्दें कई क्रान्ति का स्वर पूँका करती हैं। शास्त्र में आपने श्रवण पिण्डा होगा कि काली आदि महारानियों ने किरानी कठोर तपश्चर्वा करके अपनी शरीर के विकारों को सुखाया और लिस प्रकार गावना शुद्धि करके आण्डिक जीवन को चागकाया। आरगा और शरीर—दोनों

के विकार उपाराधन से नष्ट होते हैं। इसी कारण इसके क्रान्तिकारी माना गया है।

आज शायद ही कोई उपचारा रो चित होगा। रांवरतरी के एक दिन तो रामी उपचारा रखते हैं। आप जानते हैं कि रांरार में अन्य पर्व पर भी माल मिथ्यान् खाया जाता है और इस पर्वराज पर अन्न त्याग किया जाता है। इस पर्व की यही विधि रखी गई है क्योंकि यह पर्व आत्मा की साधना, आराधना और अर्चना का है। उपचास ली स्थिति में मन के माध्यम से अपनी बुद्धि को स्थिर करके आत्मा में नियारा करना होता है। गन को रित्यर रखने के लिए चंचलता या त्याग भारती है। चंचलता धूर्ती है कथाय पर नियन्त्रण करने से, और जब विवार एवं विवेकपूर्वक उपचास होता है तो मनुष्य जाति नियन्त्रण द्वारा ध्यान की स्थिति को सुदृढ़ बना सकता है।

सारी विटेकपूर्ण विचारणा एवं साधना के बाद भी प्रतिक्रमण का प्रसंग आता है। जिस समय अपनी आलोचना करने के बाद जो एकाग्रता और शुद्धता की अवश्य अन्तर्गत बनती है, उसकी छार्दिकता रे शत्रु भी मित्र बन जाते हैं। क्षमाधारना की गृहुता ले पश्चात् शत्रु रह ही करो रात्मा है ?

विश्व-मैत्री का अवसर

सांवत्सरिक प्रतिक्रमण के पश्चात् विषय कथाय के विकास शान्त होने चाहिये। विकास शान्ति का ही फल होगा कि संसार के समस्त जीवों से धमायाचना की तीव्र आकांक्षा पैद छोरी और मुख्य रूप से उनसे क्षमाधारना का प्ररांग बनना। वाहिये जिनसे विगत वर्ष गे किरी - किरी प्रकार की कटुता, शिकाता या ले शत्रुता रही हो। जब शत्रुता नहीं रहेगी और गरपूर तौर पर हार्दिकता होगी तो उससे मित्रता ला ही निर्माण होगा। सारे संसार के साथ मित्रता को ही विश्वगैत्री कहा है। और जब मित्री गे रात्र भूएसु, तैरं गजङ्गं न केणैः का हग राकल्प लेते हैं तो रागाङ्गिये के यह रात्तरासी का गहान् पर्व विश्व-मैत्री स्थापित करने का किमान् सुन्दर अवसर है?

आप खमतखामना किस विधि से लैरो हैं ? एक रुढ़ी परीका तो है—‘खमाऊं सा, खमाऊं सा’ और आप चारों ओर घूम जाते हैं उनके पास जिनसे आपका कोई लड़ाई—झगड़ा नहीं हुआ हो। यह तो राहता औं देखाऊं खगतखागना है। र च्चा खगतखागना तो वह होना। कि वहाँ विद्वेष रहा है औंर क्षण। गांगने का वारतविक प्रसांग है, वहाँ पर नम्रतापूर्वक क्षमायावना लरें तथा आगे से किसी भी प्रकार ली कदुता नहीं रखने का संकल्प करें तब तो बातावरण में भी सुधार होता है और आत्मा का शी सुधार होता है। क्षगायाचना ल गुरुज्य रूप नप्रता और निर्गलता होना चाहिये।

राबरो क्षमायावना का हगारा क्षग अरिहन्त देव रो प्रारम्भ होता है। आप सोचेंगे कि अरिहन्त की असातना कैसे संभव है ? किन्तु वह संभव है और कई तरह से हो सकती है। आत्म साधना के रागबन्ध गं अरिहन्त देव ने जो निर्देश दिये हैं, चतुर्विध रांघ ला जो आचार बताया है, उरागें अरावधानी करें—उशद्धा लाएं अथगा छूट के र रुपो निकाले तो वह सब अरिहन्त की ही असात ना करते हैं। उस अवज्ञा की भी क्षमायावना का यह प्रसंग है। क्षमायावन। ऐसी नहीं हो कि आज क्षमा मांगी और कल से फिर वैसी ही असातना करनी शुरू कर दी। वह तो कंकड़ी मारते रहकर ‘मिक्कामि दुक्कक्षु,’ करते जाना होगा। ऐसी निर्लज्जा क्षग, क्षग नहीं बनती। इस प्रकार अपनी असातना के लिये अरिहन्त, आचार्य, रान्त ता दि राभी रो क्षग। गांगने का यह अवसर है।

उदायन महाराज का रूपक

शास्त्रों में सब्दी इमायावना के रूपक के रूप में उदायन महाराज की कथा आती है। उदायन राजा बाहर ग्रतधारी श्रावक थे। उनकी दासी स्याणीकुटिक को उज्जयिनी के राजा चंडग्रद्योत ने कृठिलतापूर्वक हरण करवा लिया। यह राजा के रूप में उदायन ला अपनान था। श्रावक होते हुए भी उन्होंने उच्चार के प्रतिकार के जिये चंडग्रद्योत को बन्दी बना लिया। जब उदायन वापिरा अपने राज्य की ओर सेना और बन्दी सहित लौट रहे थे तो नग में संकर्सरी के महापूर्व

का अवसर आ गया। अ ज जिसे मन्दसौर नगर कहते हैं यह वहाँ की धटना है।

उदायन राजा की उदारता इतनी थी कि हन्दी होने के बावजूद रामान की दृष्टि रो रोज चंडप्रद्योत को राश भोजन कराते थे। सांवत्सरी के पहले दिन उन्होंने चंडप्रद्योत का कहलाया कि कल उनका उपवास होगा, अतः वे अपना इक्षित भोजन बनवा लें। चंडप्रद्योत ने इसे कोई कूटनीतिक चाल समझी सो उसने भी कहला दिया कि वह भी उनके साथ उपवास करेगा। सांवत्सरिक प्रतिक्रमण करने के बाब ज्ञायचना का प्ररांग आया तो उदायन राज ने गुह्या को राखते हुए चंडप्रद्योत रो राव्ये हृपथ रो ज्ञायचना की। वे अपराधी को क्षमा भी करने को तैयार थे, बशते लि अपराधी अपना अपराध स्वीकार कर ले पंडप्रद्योत ने इसे छुटकारे का अवसर जान अपना अपराध स्वीकार कर दिया तो उदायन ने उरोक्षा करते हुए विजित राजा को लौटा दिया तथा एक राजकन्या का उराके राश वियाह करके उरा स्वार्गकुटिका दासी को भी उस उपलक्ष्मि में भेट कर दी।

‘क्षमा’ का ऐरा १००। और उन्होंने उदाहरण आज राबके लिये प्रेरणा का स्रोत बनना चाहिये। अन्तःकरण से यदि क्षमायाचना नहीं की तो वह कैसी क्षमायाचना है? मैं तो यहाँ तक कहूँगा कि उपवास, बेला, तेला, अठाई कर लैं किन्तु धैर-भाव को दियाने के लिए तैयार नहीं हों तो वैरा व्यक्ति रामाकृष्ण नहीं कहला राकेगा। लिहेष मिटाने के लिये आप सामने वाले का इनाजार वयों कःरो हैं? अपने आप को पवित्र बनाना है तो उस अवसर को हाथ से वर्णों नुमाएं? अगल आदमी क्षमायाचना करे या नहीं कर—जिसे अपनी आत्मा ला गान है, वह आगे बढ़कर पहले क्षमायाचना कर ले—यह गांधीजी है।

क्षमा-शान्ति की जननी है

‘क्षमा’ वीरों का भूषण है क्योंकि वीर जानता है कि उरारो शानि का प्रसार होगा। व्रत म्रहण नहीं करना कमज़ोरी है, पिर नी प्रतिक्रमण करना स्वर्या जयिता है लेकिन विधि से प्रारोक्षमण कर लेने

के बाद गन गें कृत्रिगता नहीं रहनी चाहिये। रवाभाविक रूप से गानव शुद्ध होनी चाहिये और उसके फलस्वरूप क्षमा की गंग बहनी चाहिये ऐसी अपूर्व क्षमा से ही शान्ति का स्थायित्व बनता है। सबसे सच्ची क्षमायाचना करने के बाद किसीसे मनुष्टाव रहेगा नहीं और क्षमायाचक साक्षात् रहता है तो भविष्य में मनुष्टाव होगा नहीं—फिर भला शान्ति क्यों नहीं रहेगी ?

राजनीतिक क्षेत्र में भी आपने अभी यह प्रयोग देखा है। इन्द्रियाजी ने जैत कर भी बंगलादेश वहों के लोगों को दे दिया था। आक्रमनके पार्केस्टान को भी विजेता भूमि लौटाने का 'नेश्वय कर शान्ति' का कदम उठाया है। शान्ति की दृष्टि से अपात्र को भी क्षमा करने का साहस तीर पुरुष ही कर सकते हैं। सबसे बज्जे हृदय से क्षमाय यना की जाए तो विश्वगैत्री और 'परम्पर्व कुण्डलकर्म' का उद्देश्य भी राफ़ख बनाया जा सकता है।

क्रान्ति की बात की जाती है। किन्तु मेरा कहना है कि केवल शब्दों की ही क्रान्ति न हो, वैवारिक एवं बौद्धिक क्रान्ति हो, सिर्क कथन की क्रान्ति न हो, आचरण की क्रान्ति हो। समतादर्शन के साथ सम्ग्र जीवन में यदि ऐसी क्रान्ति की गई तो आत्मशुद्धि और प्रगुदर्शन की स्थिति रसीप आ राखती है। पर्वराज संवत्सरी रो ऐरो हार्दिकपा ग्रहण करने की आवश्यकता है। जेरारो रात्ती दग॥ और रक्षायी शान्ति का वातावरण बन सके। इस अवसर पर सतर्कता के बाटजूद मैं नी सबसे अपनी हार्दिक क्षमायाचना प्रकट करता हूँ।

लाल भग्न

पप्प

